“MAA” OMWATI COLLEGE OF EDUCATION HASSANPUR (PALWAL)

AFFILIATED CRS UNIVERSITY, JIND

NOTES

B.P.Ed.- 2nd Sem
Yoga Education

1

योग का अर्थ तथा परिभाषा

(Meaning and Definition of Yoga)

प्रस्तावना

प्राचीन काल में मनुष्य के द्वारा विभिन्न प्रकार की शारीरिक क्रियाओं को किया जाता है। इन सभी क्रियाओं के आधार पर ही मनुष्य के द्वारा अपने शरीरा को पूर्ण रूप से स्वस्थ रखा जाता था। यह देखा जाता है कि मनुष्य के द्वारा की जाने वाली अनेक प्रकार की क्रियाओं का प्रभाव उसके शरीर पर देखा जाता है। यदि उसके द्वारा भली-भांति विभिन्न प्रकार की क्रियाओं को किया जाता है तो निश्चय ही इसके आधार पर वह भली-भांति अपना शारीरिक विकास कर पाता है। इसके अतिरिक्त यदि उसके द्वारा शारीरिक क्रियाओं के क्रियान्वयन की ओर बल नहीं दिया जाता है तो निश्चय ही इससे उसके द्वारा पूर्ण रूप से अपने व्यक्तित्व का विकास नहीं किया जा सकता। इसलिए यह अति आवश्यक माना जाता है कि व्यक्ति को विशेष रूप से विभिन्न प्रकार की क्रियाओं का ज्ञान प्रदान किया जाए।

योग को इसके लिए विशेष रूप से महत्वपूर्ण माना जाता है। योग का अर्थ है आन्तरिक अस्तित्व के साथ एक होना तथा उसके साथ सामंजस्य स्थापित करके उसका अनुभव करना। यह देखा जाता है कि योग की समस्त क्रियाओं के आधार पर मनुष्य को शारीरिक स्वस्थ्यता प्रदान की जाती है। इसके साथ ही यह उसकी आन्तरिक स्वस्थ्यता को बनाएं रखने में भी उसकी विशेष रूप से सहायता प्रदान करता है। इसलिए यह अति आवश्यक माना जाता है कि व्यक्ति के द्वारा विशेष रूप से योग की विभिन्न कलाओं का ज्ञान प्राप्त किया जाएं। जिससे उसके द्वारा भली-भांति उन्नति की ओर अग्रसित हुआ जा सकता है।

आज मनुष्य के द्वारा सभी क्षेत्रों में अत्यधिक उन्नति प्राप्त की है।

आधुनिक युग को विज्ञान का युग कहा जाता है। आज विज्ञान के आधार पर देश में इतनी अधिक तरक्की की जा रही है कि पूर्व की समस्त बातों को भुलाया जा रहा है तथा एक ऐसे नवीन समाज का निर्माण करने की ओर बल दिया जा रहा है। जिसमें पूर्ण रूप से नवीनता का समावेश विकसित हो। इसके आधार पर ही भली-भांति विभिन्न प्रकार की प्रक्रियाओं का लाभ प्राप्त करने की ओर भी बल दिया जा रहा है।

प्रदूषण को भी विज्ञान की देन ही कहा जा सकता है। विज्ञान के द्वारा प्रदान किए जाने वाले वाहनों तथा मशीनों के द्वारा आज देश में इतना अधिक प्रदूषण फैलाया जा रहा है कि इससे समस्त व्यक्ति का जीवन प्रभावित हो रहा है। आज लोगों को धन-सम्पत्ति की लालसा उत्पन्न हो रही है। वह अधिकाधिक अपना निजी स्वार्थ प्राप्त करने की ओर अग्रसित हो रहे हैं। जिससे उनके द्वारा भली-भांति स्वास्थ्य की ओर ध्यान नहीं दिया जा रहा है। आज के मनुष्य के द्वारा इतना अधिक तनाव उत्पन्न कर लिया गया है कि उसके पास अपने शारीरिक तथा मानसिक तनाव को कम करने हेतु भी समय नहीं है।

यह देखा जाता है कि आज देश में विभिन्न प्रकार की बीमारियों का समावेश पाया जाता है। ऐसी अनेक नवीन बीमारियाँ आज उत्पन्न हो चुकी हैं। जो पूर्व में नहीं थी। स्पष्ट है कि इन सभी प्रकार की बीमारियों का विकास हाल में ही हुआ है। इनका प्रभाव मनुष्य के शारीरिक तथा मानसिक विकास पर देखा जा सकता है। यह देखा जाता है कि मनुष्य के द्वारा आज शारीरिक तथा मानसिक रूप से विभिन्न बीमारियों का समावेश विकसित किया जा रहा है। जिससे आज वह भली-भांति उन्नति नहीं कर पा रहा है।

नवयुवकों के द्वारा भी शारीरिक श्रम की ओर बल नहीं दिया जा रहा है। उनके द्वारा बैठने वाले व्यवसाय को ही उपर्युक्त माना जाता है। परन्तु जब तक मनुष्य के द्वारा भली-भांति अपने शरीर को क्रियाशीलता प्रदान नहीं की जाती है। तब तक उसके द्वारा भली-भांति उन्नति की ओर अग्रसित नहीं हुआ जा सकता। इसलिए यह अति आवश्यक माना जाता है कि व्यक्ति

के द्वारा विशेष रूप से शारीरिक श्रम करने की ओर बल दिया जाएं। ऐसा करने के उपरान्त ही उसके द्वारा सम्पूर्ण रूप से अपने व्यक्तित्व का विकास भी किया जा सकता है। जिससे वह अधिकाधिक उन्नति की ओर अग्रसित हो सकता है। इसलिए यह अति आवश्यक माना जाता है कि व्यक्ति को आज शारीरिक कार्यों के प्रति रूचि विकसित करने की ओर अग्रसित किया जाए। ऐसा करने के उपरान्त ही व्यक्ति को शारीरिक तथा मानसिक स्वस्थ्यता की ओर अग्रसित किया जा सकता है। यह उसे पूर्ण रूप से विकसित होने की ओर विशेष रूप से प्रोत्साहित करने में भी सहायता प्रदान करती है।

योग का कार्य है व्यक्ति की कार्यक्षमता का विकास करना। यह देखा जाता है कि जिस समय व्यक्ति के द्वारा भली-भांति अपनी कार्यक्षमता का विकास किया जाता है। उस समय वह शारीरिक स्वास्थ्य प्राप्त करता है। शारीरिक क्रियाओं का अभ्यास करने से ही व्यक्ति के द्वारा भली-भांति अपनी शारीरिक क्षमताओं का विकास किया जा सकता है। जिससे वह अधिकाधिक उन्नति प्राप्त कर पाता है। योग की विभिन्न क्रियाओं के आधार पर ही मनुष्य के द्वारा कार्यक्षमता में विकास किया जा सकता है। जिससे उसे जीवन में सन्तुष्टि प्राप्त होती है। यह सन्तुष्टि ही उस पर पड़े सभी प्रकार के बोझ को कम करने में उसकी सहायता प्रदान करती है।

योग के द्वारा मनुष्य को एकाग्रचित्त करने में सहायता प्रदान की जाती है। यह देखा जाता है कि आज मनुष्य के द्वारा भली-भांति विभिन्न प्रकार के कार्यों तथा व्यवसायों को अपनाया जा रहा है। उसका मस्तिष्क इतना अधिक विभाजित हो चुका है कि उसके द्वारा स्वयं इस बात का पता नहीं लगाया जाता है कि वह किन कार्यों की ओर अग्रसित हो। यही सभी कारक उसमें मानसिक तनाव को उत्पन्न करने हेतु उत्तरदायी माने जाते हैं। इसलिए यह अति आवश्यक माना जाता है कि व्यक्ति में व्याप्त इन सभी प्रकार के तनावों को कम करने की ओर बल दिया जाएं। ऐसा केवल योग के आधार पर ही किया जा सकता है। जिसके आधार पर व्यक्ति के द्वारा भली-भांति

उन्नति की ओर अग्रसित हुआ जा सकता है। यह उसमें संपूर्णता को विकसित करने में भी विशेष रूप से लाभदायक माना जाता है। इसके द्वारा प्रदान की जाने वाली क्रियाओं को अपनाकर ही व्यक्ति के द्वारा भली-भांति अपने व्यक्तित्व का विकास किया जाता है। यह उसे शारीरिक विकास की ओर अग्रसित करने में सहायता प्रदान करते हैं। इसके साथ ही मानसिक विकास हेतु भी इन्हें विशेष रूप से लाभदायक माना जाता है।

योग को प्राचीन काल में भी अपनाया जाता था। इसके आधार पर ही गुरूओं के द्वारा अपने शिष्यों को विभिन्न प्रकार की शारीरिक क्रियाओं का ज्ञान प्रदान किया जाता है। जिससे उनके द्वारा संपूर्ण रूप से अपने व्यक्तित्व का विकास किया जाता है। महाभारत काल में भी अनेक प्रकार की योग कलाओं का समावेश स्पष्ट रूप से पढ़ने को मिलता है। शारीरिक रूप से स्वस्थ्यता की ओर ध्यान भारत में प्राचीन काल से ही विशेष रूप से दिया जाता था।

योग मनुष्य को उसकी आत्मा से मिलाने का कार्य भी करता है। यह देख जाता है कि जिस समय व्यक्ति के द्वारा अपने मन को एकाग्र किया जाता है। उस समय वह निश्चय ही आत्मा को पवित्रता प्रदान कर पाता है। उसके द्वारा की जाने वाली विभिन्न प्रकार की क्रियाओं के द्वारा ही वह भली-भांति पूर्णता की ओर अग्रसित हो पाता है। योग उसे उसकी आत्मा तथा शरीर के साथ सामंजस्य स्थापित करने को प्रोत्साहित करता है। जिससे व्यक्ति के द्वारा इन दोनों में सामंजस्य को स्थापित किया जाता है। ऐसा करना ही मनुष्य के लिए मोक्ष प्राप्ति मानी जाती है। जिसे योग के द्वारा ही भली-भांति प्राप्त किया जा सकता है। इसलिए योग को मनुष्य के लिए विशेष रूप से लाभदायक माना जाता है। यह उसे पूर्ण रूप से उन्नति की ओर अग्रसित करने में विशेष रूप से सहायता प्रदान करता है। उसके समक्ष उपस्थित होने वाली सभी प्रकार की समस्याओं का निराकरण करने में भी योग को ही लाभदायक माना जाता है।

योग का अर्थ
(Meaning of Yoga)

योग का शाब्दिक अर्थ बैल के कन्धों पर रखा जाने वाला योक माना जाता है। इसका व्यापक अर्थ ब्रह्मण्ड की शक्ति माना जाता है। ईश्वर के साथ जिस समय व्यक्ति के द्वारा गठबन्धन को व्याप्त किया जाता है। उस समय उसके द्वारा विशेष रूप से योग की विभिन्न क्रियाओं के प्रति अग्रसित हुआ जा सकता है। योग शब्द को संस्कृत के युज से शब्द से लिया गया है। जिसका अर्थ गठबन्धन या जोड़ना माना जाता है। यह देखा जाता है कि योग के द्वारा मनुष्य को ईश्वर के साथ जोड़ने का कार्य किया जाता है। जिससे मनुष्य के द्वारा भली-भांति उन्नति की ओर अग्रसित हुआ जा सकता है। यह उसके समक्ष उपस्थित होने वाली सभी प्रकार की समस्याओं का निराकरण करने में भी विशेष रूप से लाभदायक माना जाता है। यही कारण है कि आज योग की ओर विशेष रूप से बल दिया जा रहा है। यह व्यक्ति के जीवन को संपूर्णता प्रदान करने में विशेष रूप से लाभदायक माना जाता है।

मनुष्य के शरीर, मन तथा इच्छा के द्वारा ही मनुष्य के द्वारा विभिन्न प्रकार की क्रियाओं को किया जाता है। परन्तु यह देखा जाता है कि जब तक मनुष्य के द्वारा इन सभी में आपसी सामंजस्य को स्थापित नहीं किया जाता है। तब तक वह भली-भांति इन सभी प्रकार की क्रियाओं को नहीं कर पाता। इसलिए उसके द्वारा स्थापित किया जाने वाला सामंजस्य उसकी उन्नति हेतु लाभदायक माना जाता है। योग की विभिन्न क्रियाओं के आधार पर इस कार्य को सुचारू रूप से किया जा सकता है। जिससे व्यक्ति के द्वारा भली-भांति उन्नति की ओर अग्रसित हुआ जा सकता है। यही कारण है कि आज इस ओर विशेष रूप से बल दिया जा रहा है कि व्यक्ति को विशेष रूप से योग के सम्बन्ध में विभिन्न प्रकार की क्रियाओं का ज्ञान प्रदान किया जाएं। जिससे उसके द्वारा भली-भांति शारीरिक विकास किया जा सकता है।

भारतीय संस्कृति में चमत्कारी शक्तियों पर आज भी विश्वास रखा जाता है। यह देखा जाता है कि जिस समय मनुष्य के द्वारा भली-भांति योग की विभिन्न क्रियाओं को किया जाता है। उस समय उसके द्वारा अपनी कुंडलिनी जागृत्ति की जाती है। उसके द्वारा किया जाने वाला यह विकास उसके द्वारा चमत्कारी शक्तियों का उदय करना माना जाता है। व्यक्ति के शरीर में विभिन्न प्रकार की चमत्कारी शक्तियों का विकास इसके आधार पर ही भली-भांति हो पाता है। जिससे व्यक्ति के द्वारा भली-भांति उन्नति की ओर अग्रसित भी हुआ जाता है। यह उसके समक्ष उपस्थित होने वाली सभी प्रकार की समस्याओं का निराकरण करने हेतु भी विशेष रूप से लाभदायक मानी जाती है।

यह देखा जाता है कि मनुष्य के द्वारा अपनी आत्मा का ज्ञान प्राप्त करके ही पूर्ण रूप से विकसित हुआ जा सकता है। उसे उसकी आत्मा के द्वारा ही विभिन्न प्रकार की क्रियाओं के प्रति प्रोत्साहित किया जाता है। परन्तु बिना योग की क्रियाओं के उसके द्वारा अपनी आत्मा के साथ सामंजस्य स्थापित नहीं किया जा सकता। इसलिए यह अति आवश्यक माना जाता है कि व्यक्ति के द्वारा भली भांति अपने आत्मा के साथ सामंजस्य स्थापित करने को प्रोत्साहित हुआ जाए। जिससे वह भली-भांति उन्नति की ओर अग्रसित हो सकता है। उसके द्वारा किया जाने वाला यह कार्य ही उसे सम्पूर्णता की ओर अग्रसित करने में विशेष रूप से लाभदायक माना जाता है।

मनुष्य के इन्द्रियों के द्वारा ही उसमें विभिन्न प्रकार की क्रियाओं तथा इच्छाओं को उत्पन्न किया जाता है। इनके वशीभूत होकर ही व्यक्ति के द्वारा भली-भांति अपना विकास नहीं किया जाता है। इसलिए यह अति आवश्यक माना जाता है कि व्यक्ति के द्वारा विशेष रूप से अपनी इन्द्रियों को काबू करने हेतु योग किया जाएं। यह उसके मस्तिष्क को एकाग्रता प्रदान करने में विशेष रूप से लाभदायक मानी जाती है। जिससे व्यक्ति के द्वारा पूर्ण रूप से उन्नति प्राप्त की जा सकती है। यही कारण है कि आज योग को विशेष

रूप से महत्व प्रदान किया जा रहा है। इसके आधार पर ही मनुष्य के द्वारा पूर्णता की ओर विकसित भी हुआ जाता है। यह उसके समक्ष उन परिस्थितियों को उत्पन्न करने में सहायक मानी जाती है। जिन परिस्थितियों के आधार पर मनुष्य संपूर्ण विकास की ओर अग्रसित हो पाता है।

बुद्धि का विकास व्यक्ति के द्वारा उसी समय किया जाता है। जिस समय उसकी बुद्धि किसी एक स्थान पर स्थिर हो जाती है। यह देखा जाता है कि बौद्धिक स्थिरता ही मनुष्य को उन्नति की ओर अग्रसित करने में सहायता प्रदान करती है। इसलिए यह अति आवश्यक माना जाता है कि व्यक्ति के द्वारा भली-भांति अपनी बुद्धि को स्थिर रखने की ओर बल दिया जाए। उसके द्वारा ऐसा करके ही पूर्ण रूप से अपना विकास किया जा सकता है। ऐसा करने हेतु भी उसे योग के द्वारा ही विशेष रूप से सहायता प्रदान की जाती है। इसलिए मनुष्य के शारीरिक तथा मानसिक विकास के लिए योग को विशेष रूप से लाभदायक माना जाता है। जिसके आधार पर मनुष्य के द्वारा संपूर्ण रूप से अपने व्यक्तित्व का विकास किया जा सकता है।

कार्य को करना मात्र ही लाभदायक नहीं माना जाता है। कार्य को विवेकपूर्ण करना तथा उसे सफलतापूर्वक करना अति लाभदायक माना जाता है। इसमें भी व्यक्ति को कार्य के प्रति सक्रियता रखने की आवश्यकता रहती है। आज यह देखा जाता है कि व्यक्ति के द्वारा स्वयं ही विभिन्न प्रकार के दुःखों को उत्पन्न किया जाता है। जिनके परिणामस्वरूप उसके द्वारा भली भांति उन्नति की ओर अग्रसित नहीं हुआ जाता है। इसलिए यह अति आवश्यक माना जाता है कि व्यक्ति के द्वारा विशेष रूप से इस ओर बल दिया जाना चाहिए कि वह अधिकाधिक क्रियाओं का ज्ञान प्राप्त करें। ऐसा करने उपरान्त ही उसके द्वारा पूर्ण रूप से अनेक प्रकार की क्रियाओं का क्रियान्वयन भी किया जा सकता है। यही कारण है कि आज इस ओर विशेष रूप से बल दिया जा रहा है कि लोगों को विशेष रूप से विभिन्न प्रकार की योग क्रियाओं का ज्ञान प्रदान किया जाए। जिनके आधार पर वह

शारीरिक क्रियाओं के प्रति विशेष रूप से प्रोत्साहित किए जा सकते हैं। उनके द्वारा की जाने वाली यह सभी क्रियाएँ ही उन्हें सम्पूर्ण रूप से अपने व्यक्तित्व का विकास करने का अवसर प्रदान करने में सहायता प्रदान करती है।

योग को साधना करने हेतु भी लाभदायक माना जाता है। यह देखा जाता है कि साधना के आधार पर व्यक्ति के द्वारा कठिन-से-कठिन कार्यों को भी भली-भांति कर दिया जाता है। यह उसे अपने द्वारा किए जाने वाले विभिन्न कार्यों में सम्पूर्णता प्रदान करने हेतु विशेष रूप से लाभदायक मानी जाती है। जिस कार्य को करने हेतु व्यक्ति के द्वारा बहुत अधिक यत्न किए जाते हैं। उसके द्वारा उन कार्यों को प्रभावी ढंग से किया जा सकता है। इसलिए यह अति आवश्यक माना जाता है कि व्यक्ति के द्वारा विशेष रूप से विभिन्न प्रकार के कार्यों की ओर अग्रसित हुआ जाएं। यह ही उसे सम्पूर्णता की ओर अग्रसित करने में सहायता प्रदान करते हैं। योग के द्वारा व्यक्ति में साधना तथा ध्यान शक्ति का विकास किया जा सकता है। जिसके परिणामस्वरूप व्यक्ति के द्वारा सम्पूर्ण रूप से उन्नति की ओर अग्रसित हुआ जा सकता है। यह उसके समक्ष उपस्थित होने वाली सभी प्रकार की समस्याओं का निराकरण करने हेतु भी विशेष रूप से लाभदायक माना जाता है। यही कारण है कि आज योगासनों का व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास हेतु अत्यन्त आवश्यक माना जाता है। इनके आधार पर ही व्यक्ति के द्वारा बिना किसी बाधा के पूर्णता की ओर विकसित भी हुआ जा सकता है। यह उसके समक्ष उपस्थित होने वाली सभी प्रकार की समस्याओं का निराकरण करने में भी विशेष रूप से लाभदायक माना जाता है।

मनुष्य को जिस समय किसी कार्य में निराशा प्राप्त हो जाती है। उस समय उसके द्वारा उस कार्य के प्रति ध्यान नहीं दिया जाता है। यह असफलता ही उसमें दुःख तथा निराशा के भावों को उत्पन्न करती है। परन्तु यह देखा जाता है कि जिस समय मनुष्य के द्वारा अनेक प्रकार की शारीरिक तथा मानसिक क्रियाओं के प्रति अग्रसित हुआ जाता है। उस समय उसके

द्वारा विशेष रूप से सभी प्रकार की समस्याओं तथा तनावों को अपने मस्तिष्क से भली-भांति दूर किया जा सकता है। जिससे वह अधिकाधिक उन्नति की ओर अग्रसित हो पाता है। उसमें व्याप्त होने वाली यह भावना ही उसे सम्पूर्णता प्रदान करने हेतु लाभदायक मानी जाती है।

योग भारतवर्ष में व्यायाम की प्राचीन पद्धति तथा विधि रही है जिसे आज के आधुनिक युग में न केवल भारत में अपितु पूरे विश्व के अन्य विकसित राष्ट्रों में अपनाया जा रहा है। आजकल यह व्यायाम देश-विदेश में लोकप्रिय हो रहा है। इसका कारण इसकी उपयोगिता है। योग आत्मा को परमात्मा से मिलाने का महत्वपूर्ण साधन है। इस मधुर मिलन का माध्यम शरीर है। शक्तिशाली शरीर द्वारा ही परमात्मा के दर्शन हो सकते हैं। क्योंकि योग शरीर को शक्तिशाली बनाता है इसलिए यह आत्मा को परमात्मा से मिलाने का महत्वपूर्ण साधन है। ईश्वर अलौकिक गुण, कर्म तथा स्वभाव वाला विद्यायुक्त है। यह आकाश के समान व्यापक है। जीव सत्य तथा चित्त है अर्थात् उसका अस्तित्व है तथा उसमें चेतन तत्त्व है। मनुष्य कर्म करने के लिए स्वतन्त्र है।

वास्तव में जीव प्रकृति तथा ईश्वर में एक-दूसरे के साथ सम्बन्ध होना चाहिए तथा योग इन सम्बन्धों को बनाने में तथा दृढ़ करने में हमारा सहायक बनता है। योग शब्द संस्कृत भाषा के शब्द युज से लिया गया है जिसका अर्थ है। संयोग या मिलाप। इसलिए शरीर तथा मन के संयोग को योग कहते हैं।

योग मनुष्य के गुणों, ताकतों या शक्तियों का पारस्परिक मिलाप है। इसके द्वारा मनुष्य की छिपी हुई ताकतों का विकास किया जाता है। योग द्वारा मनुष्य को पूर्ण आत्म-विश्वास होता है। योग शब्द प्राचीन काल से प्रचलित है। भगवद् गीता में भी भगवान् कृष्ण ने योग का वर्णन किया है। रामायण तथा महाभारत काल में भी इस शब्द का पर्याप्त प्रयोग हुआ है। इन धार्मिक ग्रन्थों में योग द्वारा मोक्ष प्राप्त करने के बारे में विस्तारपूर्वक

लिखा गया है। इसके अतिरिक्त अनेकों विद्वानों ने भी योग विज्ञान के बारे लिखा है। इन विद्वानों में पातंजलि ने योग विज्ञान पर काफी कुछ लिखा है, परन्तु योग के अर्थों में समानता नहीं। पांतजति के अनुसार, चित्त की वृत्ति के निरोध का नाम योग है।

योग की परिभाषा

योग का अर्थ शरीर, मन, इच्छा, विचार की सभी शक्तियों का गठबन्धन ही योग की परिकल्पना है। इसका अर्थ है आत्मा का ठहराव जिसके द्वारा हम जीवन के सभी पक्षों को एक जैसा देख पाते है।

जब इन्द्रियां शांत हो जाएं जब शरीर विश्राम में हो तथा बुद्धि स्थिर हो जाती है, ज्ञानी इस स्थिति को सर्वोच्च अवस्था कहते हैं। मन तथा इन्द्रियों को सुरूचिपूर्ण नियंत्रण को योग कहते है। जो इस अवस्था को प्राप्त कर लेता है वह सभी आकर्षणों से मुक्ति पा लेता है।

—कठोपनिषद्

भगवद्गीता में मुख्य जोर कर्म योग (काम द्वारा योग) दिया गया है, "कर्म पर केवल तुम्हारा अधिकार है तथा उसके फल परनहीं, कर्म का फल तुम्हारा उद्देश्य कदापि नहीं होना चाहिए तथा कर्म करना बन्द नहीं करना चाहिए। सभी कार्य ईश्वर को समर्पित करके करें तथा लालची इच्छाओं का त्याग करें। विजय या पराजय से प्रभावित न हों। यह सम स्थिति ही योग है।"

भगवद्गीता में श्री कृष्ण अर्जुन को योग का अर्थ बताते हुए कहते हैं यह दु:ख और सुख से परे की स्थिति है। जब मनुष्य ईश्वर से मिलकर एकाकार हो जाता है जब उसका मन, विवेक और अस्तित्व उसके नियंत्रण में आ जाता है तथा बेचैन करने वाली इच्छाओं से स्वतंत्र हो जाता है तथा वे शरीर में इस तरह रहती है जिन्हें एक योगी ही काबू में रख सकता है जैसे एक दीया वहां नहीं फड़फ़ड़ाता जहां पर हवा नहीं चलती वैसे ही योगी मन, बुद्धि और स्वयं को काबू में रखता है। अपने आत्मिक बल से ही योगी

पूर्णता को प्राप्त करता है जबकि मन, बुद्धि और स्वयं अपनी बेचैनी को योग साधना से ही शांत कर सकता है। तब उसे उस शाश्वत आनन्द का आभास होता है जो इन्द्रियों द्वारा नहीं हो सकता। उसे यह खजाना सबसे बढ़िया लगता है। जिसे यह मिल गया वह विषमता दु:ख में भी विचलित नहीं होता। अत: हम कह सकते हैं कि योग की असली सार्थकता यहीं है कि वह हमें दु:ख और निराशा से मुक्त करता है।

विभिन्न पुराणों में तथा विद्वानों ने यौगिक क्रियाओं तथा योग का अर्थ स्पष्ट करने के लिए विभिन्न प्रकार से इसे परिभाषित किया है, जिनमें से मुख्य परिभाषाएँ इस प्रकार हैं-

मनुष्य तथा प्रकृति के पार्थक्य को स्थापित कर व्यक्ति के स्वरूप में अवस्थित होना ही योग कहलाता है। - सांख्य दर्शन

दु:ख-सुख, शत्रु-मित्र तथा लाभ-हानि आदि द्वन्द्वों में समभाव रखने को ही योग कहा जाता है। - भगवद्गीता।

वह साधन जिसकी सहायता से मनुष्य ईश्वर के साथ मिल जाता है, योग कहलाता है। - विष्णु पुराण।

वह सभी व्यवहार जो एक मनुष्य को मोक्ष के साथ जोड़ते हैं, योग कहलाते हैं। - आचार्य हरिभद्र।

कुशल चित्त की एकाग्रता को ही योग कहा जाता है। -बौद्ध।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कई पुराणों तथा विद्वानों ने योग को भिन्न-भिन्न तरीकों से परिभाषित किया हैं, परन्तु सभी परिभाषाओं से यही स्पष्ट होता है कि योग मनुष्य के केवल शरीर को ही प्रभावित नहीं करते, बल्कि वह उसकी आत्मा को भी विकसित करने में सहायता करते हैं।

योग का महत्त्व

योग शरीर का अरोग्य तथा शक्तिशाली बनाता है। योग व्यक्ति को सुयोग्य, गुणी तथा अरोग्य बनाता है। यह हमारे शरीर में शक्ति उत्पन्न करता है। योग केवल रोगी व्यक्तियों के लिए ही लाभकारी नहीं अपितु

स्वस्थ व्यक्ति भी इसके अभ्यास से लाभ उठा सकते है। विशेष रूप से 40 साल के ऊपर वाले व्यक्तियों के लिए योगाभ्यास अत्यन्त उपयोगी है।

योगाभ्यास द्वारा शरीर के सारे अंग अच्छी प्रकार से काम करने लग पड़ते हैं। योगाभ्यास द्वारा मांसपेशियां मज़बूत होती है, और मानसिक सन्तुलन बढ़ाता है। योग का महत्त्व इस बात से भी है कि देश-विदेशों में भी इसकी लोकप्रियता बढ़ रही है। देश-विदेश के डॉक्टरों तथा शारीरिक शिक्षा के अध्यापकों ने इसकी बहुत प्रशंसा की है। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि योग का आधुनिक मानवीय जीवन में विशेष महत्त्व है।

1. बुद्धि का तेज़ होना- प्राणायाम करने से स्वच्छ वायु फेफड़ों में पहुंचती है। प्राणायाम करने वाले व्यक्ति का दिमाग तीव्र काम करने लगता है। शरीर और मन में चुस्ती-फुर्ती आ जाती है। शीर्षासन भी बुद्धि को तीव्र करने तथा स्मरण शक्ति का बढ़ाने का काम करता है।

2. मानसिक अनुशासन- यम का पालन करने वाला व्यक्ति अहिंसा का पालन करता है और चोरी नहीं करता। यम व नियम का पालन करने वाला व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं, अनुचित इच्छाओं और मानवीय भावनाओं संवेग, विचार आदि पर नियन्त्रण रखता है।

3. शरीर में लय लाना- श्वास पर काबू रखने से सभी क्रियाएं धीरे-धीरे करने की आदत पड़ जाती है। शरीर में लय आ जाती है तथा व्यक्ति शारीरिक शक्ति को संयम से खर्च कर सकता है।

4. मानसिक संतुलन व खुशी प्राप्त करने का उचित साधन- पद्मासन में जब योगी बैठता है तो चेहरे का नूर उसकी आन्तरिक शांति तथा खुशी प्रकट करता है।

5. थकावट दूर करके तरो ताज़ा होना- जीवन के झमेलों को पूरा करते हुए यदि आप शारीरिक और मानसिक रूप से थक जाएं तो शव आसन करने से पुन: तरो ताज़ा हो सकते है।

6. रोगों की रोकथाम तथा उपचार- प्राणायाम करने से फेफड़ों के रोग नहीं लगते। मतशेदर आसन तथा वक्र आसन से मधुमेह का रोग ठीक होता है।

7. शरीर को अच्छी स्थिति में रखना- ये अच्छे व्यक्तित्व का गुण है। विक्रम आसन करने से घुटने आपस में नहीं टकराते। पदम आसन करने से न तो कन्धें में कुबड़ पड़ता है और न ही पेट आगे की ओर ढ़िलकता है।

8. शारीरिक प्रणालियों का उचित कार्य- आसन करने से शरीर की सभी प्रणालियां ठीक काम करना आरम्भ कर देती हैं क्योंकि शरीर के सारे अंग आसन करने से मज़बूत हो जाते हैं। प्राणायाम से श्वास प्रणाली का सारा काम ठीक हो जाता है। जैसे फेफेड़ों की कसरत होती है, पट्ठे मज़बूत होते हैं तथा अधिक से अधिक हवा फेफड़ों के अन्दर जाती है।

9. शारीरिक अंगों की मज़बूती और उनमें लचक लाना- योग द्वारा शारीरिक अंग सुदृढ़ होते हैं तथा आसनों द्वारा जोड़ों तथा हड्डियों का विकास भी होता है। रक्त चाप तीव्र हो जाता है। धर्नुआसन तथा हल आसन रीढ़ की लचक बढ़ाने में सहायक होते हैं जिससे मनुष्य में शीघ्र बुढ़ापा नहीं आता। मयूर आसन से कलाई मज़बूत होती है। इस प्रकार की क्रियाएं करने से शरीर में मज़बूती तथा अंगों में लचक आती है।

10. शरीर की आन्तरिक सफाई- योगाभ्यास करने से शरीर स्वस्थ रहता है एवं इसकी सफाई हो जाती है। जैसे कि धोती क्रिया से अमाशय की सफाई होती है और बस्ती क्रिया से आंतड़ियां साफ होती हैं। प्रत्याहार से दृढ़ता बढ़ती है।

12. मनुष्य की शारीरिक तथा मानसिक मूलभूत शक्तियों का विकास- सभी आसन व्यक्ति की बुनियादी शक्तियों का विकास करते हैं। योग, नियम तथा आसन व्यक्ति के शारीरिक तथा मानसिक विकास में सहायक होते हैं। आसनों द्वारा शारीरिक क्रियाएं करने से मानव के शरीर के सभी अंग हरकत में आ जाते हैं। इस प्रकार उनका विकास होता है। शारीरिक

विकास के साथ मानसिक विकास भी होता है। जैसे प्राणायाम द्वारा फेफड़ों के रोग दूर होते हैं।

उपरोक्त विवरण से यह विचार पूर्ण रूप से स्पष्ट है कि योग-ज्ञान मनुष्य के व्यक्तित्व के समपूर्ण विकास के लिए विशेष महत्त्व रखता है।

योग का अर्थ है जोड़ना। अब प्रश्न होता है कि किसे किससे जोड़ना? उत्तर है- स्वयं से जोड़ना, जिससे हम समस्त से जुड़ने में सक्षम हो सकें। आदमी अपने से ही नहीं जुड़ा हैं। जब तक वह अपने से जुड़ा नहीं है, दूसरी से जुड़ ही नहीं सकता। जुड़ने की इस कला का नाम योग है। आदमी का मन बाहर घूमता रहता है। वह बाहर अपनी इच्छित वस्तु व्यक्ति और परिस्थिति की तलाश करता रहता है। उसकी मान्यता है कि इनसे जुड़कर ही वह अपनी वांछा पूरी कर सकेगा और सुखी रह सकेगा। यह आशा ही उसे बाहर घुमाती रहती है। वह स्वयं से पलायन किये रहता है। बाहर वह चुने हुए, सीमित सम्बन्ध स्थापित करता है। सीमित सम्बन्ध राग, आशक्ति पैदा करते हैं तथा उसे शेष संसार से अलग कर देते हैं। इसकी सीमित सम्बन्ध-भावना उसे सर्व-सत्ता में फैले आनन्द से वंचित कर देती है। आदमी सीमित सम्बन्धों का चुल्लू भर जल से तृप्त नहीं हो सकता, उसे चाहिए अथाह, विस्तृत आनन्द समुद्र। सीमित सम्बन्धों में उसकी चाह न पूरी होने पर वह एक सम्बन्ध से दूसरे सम्बन्धों से बंधता, छोड़ता चलता है। इस पकड़-छोड़ से उसमें अशांति और तनाव आता है और अन्ततः सम्बन्धों को वह दुःख का कारण समझ बैठता है। योग जुड़ने की प्रक्रिया बताता है, योग बताता है कि किससे जुड़ना है, जिससे आदमी की चाह पूरी तरह तृप्त हो जाये।

अपने से जुड़ने को कौन राजी होता है- योग का कहना है कि बिना जुड़ने के राजीनामे के तुम अपने से जुड़ न सकोगे। दूसरे से जुड़ जाना बहुत सरल है, क्योंकि स्वार्थ, आकर्षण तुम्हे बड़ी जल्दी दूसरे से चिपका देता है। पर संसार में सबसे कठिन है अपने से जुड़ना। योग कहता है कि एक समय

तुम एक ही से जुड़ सकते हो। एक साथ दो से जुड़ने का मतलब है- जुड़ने का अभिनय। जुड़ने का मतलब है समरस हो जाना, खो जाना। ऐसा जूड़ो कि न तुम रहो, न वह रहे, एक तीसरी चीज प्रकट हो जाये, ब्रह्म प्रकट हो जाए। योग की शर्तों से कौन राजी होता है, जो सीमित सम्बन्धों और एंकाकी घुटन की पीड़ा से छटपटाने लगता है। पीड़ा ही दवा खोजती है। ऐसे लोग ही गुरू खोजते हैं और योग साधना के लिए हृदय से राजी होते हैं। संवेदनशील लोग ही योग साधना में लगते हैं, क्योंकि मोटी चमड़ी, बहया लोग सौ-सौ जूता खायें, तमाशा घुसकर देखें। कितनी मार, डांट पड़ रही है पर लोग मैदान नहीं छोड़ते। या तो स्वयं की, या पर की पीड़ा की तीव्र अनुभूति ही आदमी का अर्न्तयात्रा पर ले जाती है।

द्वैत, अद्वैत एवं त्रैत- जोड़ के हिसाब से अद्वैत, द्वैत एवं त्रेत शब्द रचे गए है। अद्वैत माने दो नहीं एक। अहंकारी या सीमित सम्बन्ध बनाने वाला कहेगा- कोई किसी का नहीं है- अर्थात् मैं अकेला हूँ। इस अकेले होने की अनुभूति उसे सम्बन्धों के धोखे से उत्पन्न हुई है, क्योंकि सीमित सम्बन्ध स्वार्थ के लिए किये जाते है। स्वार्थ के सम्बन्ध टूटेंगे ही, क्योंकि परस्पर स्वार्थ-पूर्ति से टकराहट होगी ही और फिर यही अनुभव होगा कि कोई किसी का नहीं, आदमी अकेला है। इस अकेलेपन की मान्यता से आदमी अपने को इस संसार में अजनबी, अपरिचित और स्नेह-रहित मानने लगता है जिससे उसमें ऊब नीरसता तथा निराशा आ जाती है। धर्म अद्वैत को भिन्न अर्थों में परिभाषित करता है। उसके एक का मतलब है मुझसे कोई भिन्न नहीं है, एक एक है। योग सबसे जुड़कर एक की घोषणा करता है। आदिगुरू शंकराचार्य ने कहा, बह्म सत्य है, जगत् झूठा है। धर्म संसार को इस अर्थ में धोखा कहता है, वैसे जगत् परमात्मा है। अद्वैत एक तत्व का ही स्वीकारता है। उसके हिसाब से परमात्मा, परमात्मा को पैदा करता है। परमात्मा, परमात्मा को पालता है और परमात्मा, परमात्मा को खा जाता है। सृजन, पालन, संहार उसी एक का काम है- केवल एक ब्रह्म का। द्वैत माने दो। बिना दो के जुड़ने की बात ही नहीं आती। मैं हूँ और शेष सृष्टि। दो

के जुड़ने से ही अद्वैत एक बनेगा। चीनी, पानी जुडेंगे तो शर्बत बनेगा। चीनी-पानी दो हैं, जुड़े तो शर्बत- एक रूप हो गए। द्वैत से ही अद्वैत उपलब्ध होता है। त्रेत शब्द का अर्थ है तीन। यह गणना के लिए है। जोड़ में तीन सम्मिलित हैं- दो जुड़ने वाले और एक दोनों से जुड़कर बनने वाला। पानी एक, चीनी दो-शर्बत-तीन। योग का कार्य है दो को जोड़कर, तीसरी चीज पैदा कर देना। यही तीसरी चीज परमात्मा है, ब्रह्म है,य सतचित-आन्नद रूप है। यही मानव जीवन का लक्ष्य है।

योग की अनिवार्य शर्तें

योग की अनिवार्य शर्त है कि पहले अपने से जुड़े, तभी जुड़ने की कला आयेगी, फिर सीमित से नहीं, सबसे जुड़ सकोगे। सीमित सम्बन्ध तो तुम कर लेते हो, पर असीम से जुड़ने की सामर्थ्य तभी आयेगी जब तुम स्वयं से जुड़ जाओगे।

असंभव का पाखंड और योग- आंतकवादी प्रवृत्तियों से लोगों को विश्वस्त कर बहुत से तथा कथित योगी असंभव कार्यों का प्रदर्शन कर अपना प्रभाव जमाकर लोगों में पूज्य बनते हैं और उनका शोषण करते है। ये लोगों को ऐसे उपदेश देते हैं जिन पर चलना असंभव है जिन पर चलना असंभव है तथा जो स्वाभाविक और प्राकृतिक नहीं होता। ये लोग एक पैर खड़े रहते हैं, कांटों पर सोते है, कठोर व्रत करते हैं, राख-पात खाते हैं, अपने शरीर को सताते है, कहीं जीभ काटते हैं, कहीं आंख फोड़ते हैं आदि-आदि। यहां यह भली-भांति समझ लेना आवश्यक है कि प्रकृति ने जो भी दिया है, उसका समयपूर्वक उपयोग करना ही साधना का लक्ष्य है। काम-क्रोध, लोभ आदि विकार भी उचित समय, स्थान और पात्र के संयोग नैतिक परिणाम रदेते हैं। अतः हमें संतुलित जीवन व्यतीत करना चाहिए। वीणा के तार न ढीले हो, न कसे, सम पर रहें, तब रागिनी निनादित होती है। भगवान् बुद्ध ने, कृष्ण ने अतिवादी जीवन का विरोध कर मध्यमवर्गीय जीवन जीने की शिक्षा दी है। अतः हमसे जो स्वाभाविक रूप सध जाये,

उतना साधते हुए आत्मा के अनुसंधान में लगना चाहिए। ब्रह्मचार्य साधना के सम्बन्ध में भी हमें संयमित विचार रखना चाहिए। इसी प्रकार अन्य विकारों का त्याग या ग्रहण उचित-अनुचित को ध्यान में रखकर करन चाहिए। सब उपयोगी हैं, बस हमें उनका समय, स्थान तथा पात्र देखकर सदुपयोग करना चाहिए। यही संयम है, यही नैतिक जीवन है।

व्यस्त जीवन-कर्म और ध्यान- यह जीवन ही परमात्मा है, सर्वसत्ता ही परमात्मा है, इसलिए योग का सम्बन्ध पूरी जीवन-चर्या से है। योगी का मन जहां भी जुड़ेगा, उसे आनन्द की प्राप्ति होगी। आनन्दघन आत्मा के दिव्य प्रकाश में सभी चेजें अपनी लघुता का परित्याग कर दिव्य हो जाती है। योगी की दृष्टि जिस चीज पर एकाग्र होती है वह पवित्र हो जाता है, संसारी की दृष्टि जहां एकाग्र होगी वहां मोह पैदा होगा, पागलपन पैदा होग। अहंकारियों के लिए मन एकाका चंचल होना बहुत फायदेमंद हैं, क्योंकि उनकी स्वार्थपरक, मोहान्ध दृष्टि जहां पड़ेगी, उन्हें भी पागल बनायेगी और स्वयं को भी पागल बनायेगी। योग जुड़ने की कला बताकर कर्म का कौशल प्रदान करता है। भगवान्कृष्ण ने तो योग की परिभाषा ही कर डाली है- कि योग कमकौशल है, योग सम्तबुद्धि हे। रूप, रस, स्पर्श, गंध, शब्द तथा प्रत्येक कर्म से योगी उसी प्रकार जुड़ता है, जैसे संसारी, पर अनासक्त एकाग्र हो, पूर्ण तल्लीनता के साथ निर्विचार चित्त से जुड़ता है, इस तरह जुड़ने से हर जोड़ ब्रह्मनन्द बन जाता हैं। इस रहस्य को जानने वाले नासमझ अपने और योगियों में कोई अन्तर नहीं देख पाते। योगी पूरा जुड़ता है और पूरा छूट जाता है। जल में जैसे कमल। योगी स्वाभाविक रूप से चरित्रवान होता है। उसके चरित्र के मानदण्ड सच्चे होते है, इसलिए कभी-कभी झूठे समाज की सच्चरित्रता उसके विरोध में खड़ी हो जाती है। योगी की आंख तुरन्त ताड़ जाती हैं कि क्या बुरा, क्या भला। वे प्रज्ञावान् होते हैं उनकी तीसरी आंख से कुछ छिपा नहीं रहा। वे आर-पार देखती है। वे वही करते है, जो ठीक हो, आनन्दायी हो। वे कमल की खेती करते है, कांटो की नहीं जो कमल का रस चख चुका है, वह कांटों में क्यों जायेगा? योगी ही पूर्ण

नैतिक होता है।

आसन-प्राणायाम- आसन और प्राणायाम को हम अकारण बहुत महत्व देते हैं। आसनों से योग साधना का कोई सरोकार नहीं है। ये पुराने साधन थे, जब योग स्थूल-साधनाओं, कृत्रिम साधनाओं को स्वीकार कर चलता था। योग का सम्बन्ध सीधे मन से है। यह एक मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है, शारीरिक नहीं। आसन बनाये गये थे, चक्रों के गति देने के लिए। इसका प्रभाव पड़ता है, पर इससे हानियां भी हैं। एक तो यह कृत्रिम साधन है, दूसरे कष्ट साध्य। चक्रों को गति देने का सबसे सरल ढंग है नृत्य, ट्विस्ट करना, खेलना। चलने, उठने, बैठने, सबसे नाड़ी- जालों में खिंचाव, तनाव, गति आती है। आसन माने शरीर जिसे मुद्रा में रहना पसंद करे, उस मुद्रा में उसे रखो। इससे मन शरीर के चक्कर में रहकर आंतरिक चक्रों पर एकाग्र रहेगा, अन्यथा वह आसनों के दबाव के प्रति सजग और एकाग्र रहेगा। इसी प्रकार प्राणायाम है। यह भी श्वांस की अस्वाभाविक प्रक्रिया है। इससे भी लाभ और हानि दोनों होते है। थोड़े से लाभ के पीछे हानि कौन चाहेगा? फिर आज किसको फुरसत है कि नाक दबाता बैठा रहे। आसनों तथा प्राणायाम से रोगों से छुटकारा मिलता है, शरीर स्वस्थ रहता है और आंशिक रूप से ध्यान में भी सहयोग मिलता है। बहुत-सी ऐसी संस्थायें हैं जो योग के नाम पर आसनों का व्यापार कर रहे हैं। डॉक्टर बन गये हैं, जिन्हें कोई विशेष व्याधि हो, वे भले ही इस चक्कर में पड़ें, वैसे योग या ध्यान से इनका विशेष सरोकार नहीं हैं बल्कि अस्वाभाविक होन के कारण ये अवरोध अधिक उत्पन्न करते है।

योग के आयाम का विस्तार- पहले योग मूलतः स्वयं से स्वयं की संतुष्टि को ही सब कुछ मानता था। आत्मा को रमा करो, बाहर से संसर्ग न करो, नहीं तो बाहर न जाने कब तुम्हें भ्रष्ट कर दे। इस भय से योगी एकांत की तलाश करते थे, समाज से सरोकार नहीं रखते थे। भगवान् कृष्ण ने योग को कर्म से जोड़ने का स्तुत्य प्रयास किया। उन्होंने कहा मुझे स्मरण कर युद्ध कर। मुझे माने अपने आत्म-केन्द्र का स्मरण और कर्म एक साथ

करो। वास्तव मे हमारा ध्यान अन्दर भी जाता है, बाहर भी। हमें बाहर के कर्म-जगत से डरना नहीं चाहिए। बाहर से प्रत्येक कर्म में पूर्ण एकाग्रता और तल्लीनता वही परिणाम लाती है जो आन्तरिक केन्द्र की एकाग्रता और तल्लीनता लाती हैं। आगे चलकर भगवान् महावीर ने तथा इस युग में जे. कृष्णमूर्ति भगवान् रजनीश, महिर्ष महेश आदि ने ध्यान को पूरी जीवन-चर्या से जोड़ने का प्रयास किया। इन सबका कहना है कि हर क्रिया को एकाग्रता, सृजगता, जागरूकता से करने, से उससे जुड़ने से ध्यान का आनन्द आयेगा। कहीं भी जुड़ों, सब योग है, सब आनन्दयुक्त है। इस प्रकार आज योग जीवन को खंडित न कर अखण्ड रूप स्वीकार कर सर्वत्र परमात्मा की छवि और छाप का आनन्द लेने को कहता है।

योग पूर्णतः असाम्प्रदायिक है- योग न किसी देश का है, न धर्म या जाति या सम्प्रदाय का है। यह आंतरिक साधना है। ध्यान एक विज्ञान है, योग एक विज्ञान है। इसका सम्बन्ध रूढ़िवादिता से नहीं जोड़ना चाहिए। यह धर्म का विश्वसनीय रूप है। धर्मो और सयम्प्रदायों को योग के मंच पर एक किया जा सकता है। आधुनिक युग की धर्म की साधना का यही वैज्ञानिक, सरल, सुगम और उपयोगी रूप है।

योग उपदेश नहीं, उपचार है- योग साधना में चित्त को शून्य, मौन करना होता है, इसलिए इसका सम्बन्ध शास्त्र, प्रवचन, उपदेश, कर्मकाण्ड आदि से नहीं है। योग साधक इससे जितना बचके रहेगा, उसे उतनी सफलता मिलेगी। योग में, करके जानने की प्रक्रिया अपनाता है। करते जाओ स्वयं जानते जाओ। इससे बाहा विधि-विधान अवरोध उत्पन्न करते है। सबको छोड़कर शांत बैठने का अभ्यासी मन क्यों इन कचड़ों को अपने अन्दर इकठ्ठा करेगा? कहां तो यहां तक गया है कि ध्यान के पथ पर यदि कोई चित्रवत् परमात्मा भी आता है तो उसे हटा दो। योग मानता है कि जिसे ईश्वर कहते है, वह अनुभूति है, न कि किसी देवी-देवता, गुरू या कल्पित ईश्वर का रूप। ये.सब हमारे अवचेतन मन में छिपे रूप हैं, जो ध्यान के समय दिखाई पड़ते है। ध्यान है शून्य आकाश का पा लोना। हमारे मन में

जब कुछ नहीं होता, तब मन घुल जाता है, इस सअमन स्थिति में आत्मा झलक जाती है।

अपने से जुड़ने की कला- योग स्वयं को जुड़ने के लिए सबसे पहले आदमी को उसके सीमित-सम्बन्धों से विरत करने का उपदेश करता है। बिना सम्बन्धों के सांसारिक कार्य सम्पादित नहीं हो सकते, इसलिए योग कहता है कि कर्त्तव्य-पालन करो, पर मोह न करो, आसक्त न हो। योग की यह महत्वपूर्ण कुंजी है व्यवहार करो, पर स्मृति, कल्पना, विचार में किसी को न पकड़ो। काम से कम और जैराम। कर्तव्य से नहीं चूकना हैं, नहीं तो मन में अंकित ग्लानियुक्त हो जायेगा और अपराधी भाव से भर जायेगा। मन को कैमरे की तरह न प्रयोग करो, वह दर्पणवत रहे। जो भी देखो उसकी फोटो मन में अंकित न हो। दर्पण, जब तक वस्तु सामने रहती है, तब तक उसकी छवि अंकित किये रहता है, वस्तु हटी, कि दर्पण स्वच्छ। ऐसा चित हो जाये तो सफलता तुरन्त मिल जाये। चित का शून्य होना ही सत्य में प्रवेश कर जाता है। इसी में साधकों को काफी समय लग जाता है। आसक्ति या मोह के जाल से निकलना बड़ा कठिन है, परसंस्कारी, समझदार इसमें शीघ्र सफलता भी प्राप्त कर लेते हैं।

2

योग के उद्देश्य और लक्ष्य

(Aims and Objectives of Yoga)

योग के द्वारा मनुष्य में व्याप्त सभी प्रकार की शक्तियों का विकास करना माना जाता है। यह देखा जाता है कि मनुष्य में कुछ गुप्त शक्तियों का समावेश होता है। इन सभी प्रकार की शक्तियों का विकास करने के उपरान्त ही व्यक्ति के द्वारा सम्पूर्ण रूप से अपना विकास किया जा सकता है। इसलिए यह अति आवश्यक माना जाता है कि व्यक्ति को विशेष रूप से उन्नति की ओर अग्रसित करने हेतु उसे योगासनों का ज्ञान प्रदान किया जाएं। मनुष्य के द्वारा जिस समय अपनी आन्तरिक शक्तियों का ज्ञान प्राप्त किया जाता है। उस समय ही उसके द्वारा पूर्ण रूप से उन्नति की ओर अग्रसित हुआ जा सकता है। उसके द्वारा प्राप्त किया जाने वाला यह ज्ञान ही उसे अपने समक्ष उपस्थित होने वाली सभी प्रकार की समस्याओं का निराकरण करने हेतु विशेष रूप से अग्रसित भी करती है। यही कारण है कि योग को व्यक्तित्व के विकास हेतु अति लाभदायक माना जाता है।

योग पर चलने हेतु बहुत से कारणों को माना जाता है। एक सामान्य व्यक्ति के द्वारा योग के आधार पर शारीरिक स्वास्थ्य को प्राप्त करने की कल्पना की जाती है। जिसकी प्राप्ति के लिए उसके द्वारा विभिन्न प्रकार की शारीरिक क्रियाओं को भी किया जाता है। उसके द्वारा की जाने वाली विभिन्न प्रकार की क्रियाएँ ही उसे पूर्ण रूप से अपने व्यक्तित्व का विकास करने का अवसर भी प्रदान करती है। इसलिए सामान्य व्यक्ति के द्वारा योग को शारीरिक स्वास्थ्य तक ही सीमित रखा जाता है। इसके अतिरिक्त मन की शांति प्राप्त करने हेतु भी उसके द्वारा विभिन्न प्रकार की योग क्रियाओं को किया जाता है।

इसके पश्चात् एक योगी के द्वारा योगासनों को इसलिए अपनाया जाता है ताकि वह अपने मन को एकाग्रता प्रदान कर सकं। इनके आधार पर ही योगी के द्वारा वासनाओं तथा अन्य प्रकार की अस्थिरताओं से दूर हुआ जाता है। जिससे वह अपनी इन्द्रियों पर पूर्ण रूप से नियंत्रण भी स्थापित कर पाता है। उसके द्वारा स्थापित किया जाने वाला यह नियंत्रण ही उसे पूर्ण रूप से योगसाधना की ओर अग्रसित करने में सहायता प्रदान करता है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि एक योगी के द्वारा विशेष रूप से योगासनों को इसलिए अपनाया जाता है क्योंकि वह इनके आधार पर भली-भांति अपने मन को एकाग्रता प्रदान करता है। जिससे उसके द्वारा उन्नति प्राप्त की जाती है।

मनुष्य का मन बड़ा ही चंचल होता है। उसे एक विषय पर स्थिर किया जाना केवल कल्पना मात्र ही माना जाता है। मनुष्य के मस्तिष्क तथा उसकी इन्द्रियों का प्रत्यक्ष सम्बन्ध उसके मन से माना जाता है। मनुष्य के द्वारा अपनी इन्द्रियों तथा मस्तिष्क पर उसी समय पूर्ण रूप से नियंत्रण स्थापित किया जा सकता है। जिस समय उसके द्वारा भली-भांति मन पर काबू किया जाता है। इसके लिए मनुष्य के द्वारा विभिन्न प्रकार की क्रियाओं का क्रियान्यन करने की ओर बल दिया जाना चाहिए। जब तक वह योग से सम्बन्धित अनेक प्रकार की क्रियाओं को नहीं करता है। तब तक उसके द्वारा भली-भांति पूर्णता को प्राप्त नहीं किया जा सकता। इसलिए योग को उसके मन पर काबू पाने हेतु भी लाभदायक माना जाता है।

शरीर, मन तथा आत्मा की शुद्धि करना ही योग का उद्देश्य माना जाता है। जिस समय व्यक्ति के द्वारा इन तीनों में उन्नति प्राप्त की जाती है। उस समय उनके द्वारा योग के उद्देश्यों को विशेष रूप से प्राप्त किया जाता है। योग में शरीर, मन तथा आत्मा की शुद्धि के लिए आठ चरणों को प्रदान किया गया है। इनका विवेचन निम्नलिखित रूप से किया जा सकता है:-

(क) यम - यम को योग में विशेष स्थान प्रदान किया जाता है। इसके आधार पर ही व्यक्ति में सामाजिक अनुशासन को उत्पन्न किया जाता

है। इसका अर्थ परहेज से माना जाता है। जिस समय व्यक्ति के द्वारा विभिन्न प्रकार की हानिकारक क्रियाओं से परहेज रखा जाता है। उस समय उसके द्वारा भली भांति यम को पूर्ण किया जा रहा होता है। इसके अन्तर्गत निम्नलिखित को प्रस्तुत किया जा सकता है:-

1. **ब्रह्मचर्य** - यौन सम्बन्धों पर नियंत्रण स्थापित करना ब्रह्मचर्य की प्रथम शर्त मानी जाती है। जिस व्यक्ति के द्वारा इस ओर बल दिया जाता है तथा उन्नति प्राप्त की जाती है। उस व्यक्ति के द्वारा विशेष रूप से ब्रह्मचर्य को प्राप्त किया जाता है। इसके अन्तर्गत व्यक्ति को उम्र भर अविवाहित रहने की ओर प्रोत्साहित किया जाता है। उसके द्वारा किसी भी प्रकार के यौन सम्बन्धों की ओर ध्यान नहीं दिया जाता है। इसलिए यह अति कठिन स्थिति मानी जाती है। जो एक मनुष्य के द्वारा की जानी बहुत-ही मुश्किल मानी जाती है।

2. **अस्तेय** - इसका अर्थ यह माना जाता है कि मन तथा कर्म में भी किसी दूसरी वस्तु की चाह की लालसा को उत्पन्न न किया जाना। यह देखा जाता है कि जिस समय व्यक्ति के द्वारा इस भावना का विकास अपने मन में किया जाता है। उस समय उसके द्वारा भली-भांति उन्नति की ओर अग्रसित हुआ जा सकता है। इसे मनुष्य के चारित्रिक विकास हेतु भी विशेष रूप से लाभदायक माना जाता है।

3. **अपरिग्रह** - इसका यह अर्थ माना जाता है कि व्यक्ति के द्वारा उन सभी प्रकार के कार्यों का त्याग किया जाना। जो उसकी इन्द्रियों को खुश करने में सहायता प्रदान करते हैं। इस प्रकार इन्द्रियों की लालसा को उत्पन्न न होने देना ही अपरिग्रह माना जाता है।

4. **सत्य** - सदा सत्य वचन बोलना जिससे मन को तथा वाणी को शुद्धता एवं स्पष्टता प्रदान की जा सके। यह देखा जाता है कि यह स्थिति भी मनुष्य के लिए बहुत कठिन होती है। आज मनुष्य के द्वारा नित दिन अपने कार्यों को भली-भांति बनाने हेतु असत्य वचनों का उपयोग किया जा

रहा है। जिसके परिणामस्वरूप यह कहा जा सकता है कि यह व्यक्ति को पूर्ण रूप से उन्नति की ओर अग्रसित करने में बहुत सी बाधाओं को उत्पन्न कर रहा है। इसलिए असत्य का त्याग किया जाना तथा सत्य वचन को बोलना ही सत्य में सम्मिलित किया जाता है।

5. **अहिंसा** - अहिंसा को अपनाना। जिसके परिणामस्वरूप संसार में रहने वाले सभी प्राणियों पर किसी प्रकार की अहिंसा को नहीं किया जाएं। किसी को कटु वचन न कहना। जिससे उसके द्वारा शारीरिक अथवा मानसिक रूप से किसी प्रकार का तनाव अथवा चोट प्राप्त की जाएं। इसमें इस बात की ओर विशेष ध्यान दिया जाता है।

(ख) नियम - नियमों के आधार पर ही व्यक्ति के द्वारा भली-भांति विभिन्न प्रकार के कार्यों के प्रति विकसित हुआ जाता है। यह देखा जाता है कि जिस समय व्यक्ति के द्वारा अनेक प्रकार की कार्यों को किया जाता है। उस समय वह विशेष रूप से विभिन्न प्रकार के नियमों का पालन करता है। उसके द्वारा किए जाने वाले इन कार्यों के आधार पर ही उसके द्वारा सम्पूर्ण रूप से विकसित हुआ जा सकता है। नियम के अन्तर्गत व्यक्ति के स्वयं के लिए किए जाने वाले कामों को माना जाता है। इनका वर्णन निम्नलिखित रूप से किया जा सकता है:-

1. **स्वच्छता** - इसका अर्थ व्यक्ति के द्वारा अपने मन तथा शरीर की स्वच्छता रखी जानी चाहिए। यह देखा जाता है कि जिस समय व्यक्ति के द्वारा भली भांति अपने शरीर की स्वच्छता की ओर बल दिया जाता है। उस समय वह निश्चय ही उन्नति प्राप्त कंर पाता है। इसी प्रकार यदि उसके द्वारा अपने शरीर की स्वच्छता की ओर बल दिया जाता है तो निश्चय ही वह इसके आधार पर पूर्ण रूप से अपने व्यक्तित्व का विकास कर पाता है। इसलिए शरीर की आन्तरिक तथा बाह्य सफाई की ओर विशेष रूप से बल दिया जाना इसमें सम्मिलित किया जाता है।

2. **संतोष** - संतोष का अर्थ व्यक्ति के द्वारा मानसिक तथा शारीरिक

सुखों के प्रति पूर्णता रखने की भावना मानी जाती है। यह देखा जाता है कि जिस समय व्यक्ति के द्वारा विशेष रूप से आन्तरिक तथा बाह्य रूप से संतोष रखा जाता है। उस समय उसके द्वारा भली-भांति उन्नति की ओर अग्रसित हुआ जा सकता है। इसलिए संतोष को भी व्यक्ति के लिए विशेष रूप से लाभदायक माना जाता है।

3. तप - मन, वचन और कर्म से पवित्रता का अभ्यास करते हुए सभी प्रकार की इच्छाओं तथा इन्द्रियों पर विजय प्राप्त की जानी ही तप माना जाता है। तप के आधार पर ही व्यक्ति के द्वारा भली-भांति पूर्ण रूप से अपने व्यक्तित्व का विकास किया है। यह उसमें व्याप्त सभी प्रकार की इच्छाओं को दूर करने हेतु भी विशेष रूप से लाभदायक माना जाता है।

4. स्वाध्याय- स्वाध्याय के आधार पर ही व्यक्ति के द्वारा अपने मस्तिष्क में विभिन्न प्रकार के पवित्र विचारों को उत्पन्न करने की ओर बल दिया जाता है। यह देखा जाता है कि उसके द्वारा अपने विचारों का आदान-प्रदान करके ही विशेष रूप से स्वाध्याय को पूर्णता प्रदान की जा सकती है।

5. ईश्वर को समर्पण - ईश्वर को समर्पण किया जाना उसी समय पूर्ण माना जाता है। जिस समय व्यक्ति के द्वारा भली-भांति पूर्ण रूप से शारीरिक तथा मानसिक रूप से ईश्वर के प्रति आस्था को उत्पन्न किया जाता है। उसमें व्याप्त यहीं भाव उसे ईश्वर के प्रति समर्पण करने में सहायता प्रदान करते हैं।

(ग) आसन - आसन के आधार पर ही शरीर को किसी एक स्थिति में रहने की आदत डाली जाती है। यह देखा जाता है कि जिस समय मनुष्य के द्वारा भली-भांति अपने शरीर को एकाग्र किया जाता है। उस समय उसके द्वारा भली-भांति अपने मन को भी एकाग्रता प्रदान की जा सकती है।

(घ) प्राणायाम - प्राणायाम के आधार पर व्यक्ति के द्वारा अपने शरीर में साँस को रोकने का प्रयास किया जाता है। यह उसके शरीर में

अत्यधिक ऊर्जा को व्याप्त करने में लाभदायक मानी जाती है। यह देखा जाता है कि जिस समय व्यक्ति के द्वारा अपने शरीर में ऊर्जा का व्याप्त किया जाता है। उस समय उसके द्वारा निश्चय ही एकाग्रता को स्थापित किया जा सकता है। यह उसे संपूर्णता प्रदान करने हेतु भी विशेष रूप से लाभदायक मानी जाती है। इसलिए प्राणायाम को व्यक्तित्व के विकास हेतु अत्यधिक लाभदायक माना जाता है।

(ङ) प्रत्याहार - प्रत्याहार के आधार पर व्यक्ति के द्वारा भली-भांति अपनी इन्द्रियों पर अनुशासन रखा जाता है। यह देखा जाता है कि जिस समय व्यक्ति के द्वारा भली-भांति अपनी इन्द्रियों पर नियंत्रण स्थापित किया जाता है। उस समय उसके द्वारा पूर्ण रूप से अपना विकास किया जा सकता है। इस हेतु प्रत्याहार को लाभदायक माना जाता है।

(च) धारणा - अपने ईश्वर की प्राप्ति हेतु एकाग्रता को उत्पन्न किया जाना ही धारणा मानी जाती है। यह देखा जाता है कि जिस समय व्यक्ति के द्वारा भली-भांति धारणा का विकास करने की ओर बल दिया जाता है। उस समय वह विशेष रूप से उन्नति की ओर अग्रसित हो सकता है। धारणा के आधार पर ही उसके द्वारा एकाग्रता को भी विशेष रूप से प्राप्त किया जा सकता है।

(छ) ध्यान - व्यक्ति के द्वारा किसी एक विषय पर अपना ध्यान एकाग्र करना। मन तथा आंखों में इस प्रकार का समन्वय स्थापित किया जाना। जिसे आधार पर उस विषय के सिवा अन्य किसी विषय पर ध्यान नहीं दिया जाता।

(झ) समाधि - समाधि व्यक्ति की वह स्थिति मानी जाती है। जिसमें उसके द्वारा अपनी पहचान को ही समाप्त कर दिया जाता है। यह उसे स्वयं से ही परिचित नहीं रहने देती। जिसके परिणामस्वरूप यह कहा जा सकता है कि व्यक्ति के द्वारा समाधि के आधार पर ही पूर्ण रूप से अपने व्यक्तित्व का विकास किया जा सकता है।

इस प्रकार उपरोक्त विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि व्यक्ति के द्वारा योग के आधार पर भली भांति अपने व्यक्तित्व का विकास किया जाता है। योग में वर्णित इन आठों चरणों के आधार पर ही व्यक्ति के द्वारा सम्पूर्ण रूप से अपने व्यक्तित्व का विकास किया जा सकता है। जिससे वह अत्यधिक उन्नति की ओर अग्रसित हो पाता है। यह उसके समक्ष उपस्थित होने वाली सभी प्रकार की समस्याओं का निराकरण करने हेतु भी विशेष रूप से लाभदायक मानी जाती है।

योग की अनिवार्य शर्तें

योग की अनिवार्य शर्त है कि पहले अपने से जुड़े, तभी जुड़ने की कला आयेगी, फिर सीमित से नहीं, सबसे जुड़ सकोगे। सीमित सम्बन्ध तो तुम कर लेते हो, पर असीम से जुड़ने की सामर्थ्य तभी आयेगी जब तुम स्वयं से जुड़ जाओगे।

असंभव का पाखंड और योग- आंतकवादी प्रवृत्तियों से लोगों को विश्वस्त कर बहुत से तथा कथित योगी असंभव कार्यों का प्रदर्शन कर अपना प्रभाव जमाकर लोगों में पूज्य बनते हैं और उनका शोषण करते है। ये लोगों को ऐसे उपदेश देते हैं जिन पर चलना असंभव है जिन पर चलना असंभव है तथा जो स्वाभाविक और प्राकृतिक नहीं होता। ये लोग एक पैर खड़े रहते हैं, कांटों पर सोते है, कठोर व्रत करते हैं, राख-पात खाते हैं, अपने शरीर को सताते है, कहीं जीभ काटते हैं, कहीं आंख फोड़ते हैं आदि-आदि। यहां यह भली-भांति समझ लेना आवश्यक है कि प्रकृति ने जो भी दिया है, उसका समयपूर्वक उपयोग करना ही साधना का लक्ष्य है। काम-क्रोध, लोभ आदि विकार भी उचित समय, स्थान और पात्र के संयोग नैतिक परिणाम रदेते हैं। अत: हमें संतुलित जीवन व्यतीत करना चाहिए। वीणा के तार न ढीले हो, न कसे, सम पर रहें, तब रागिनी निनादित होती है। भगवान् बुद्ध ने, कृष्ण ने अतिवादी जीवन का विरोध कर मध्यमवर्गीय जीवन जीने की शिक्षा दी है। अत: हमसे जो स्वाभाविक रूप सध जाये, उतना साधते हुए आत्मा के अनुसंधान में लगना चाहिए। ब्रह्मचार्य साधना के

सम्बन्ध में भी हमें संयमित विचार रखना चाहिए। इसी प्रकार अन्य विकारों का त्याग या ग्रहण उचित-अनुचित को ध्यान में रखकर करन चाहिए। सब उपयोगी हैं, बस हमें उनका समय, स्थान तथा पात्र देखकर सदुपयोग करना चाहिए। यही संयम है, यही नैतिक जीवन है।

व्यस्त जीवन-कर्म और ध्यान- यह जीवन ही परमात्मा है, सर्वसत्ता ही परमात्मा है, इसलिए योग का सम्बन्ध पूरी जीवन-चर्या से है। योगी का मन जहां भी जुड़ेगा, उसे आनन्द की प्राप्ति होगी। आनन्दघन आत्मा के दिव्य प्रकाश में सभी चेजें अपनी लघुता का परित्याग कर दिव्य हो जाती है। योगी की दृष्टि जिस चीज पर एकाग्र होती है वह पवित्र हो जाता है, संसारी की दृष्टि जहां एकाग्र होगी वहां मोह पैदा होगा, पागलपन पैदा होग। अहंकारियों के लिए मन एकाका चंचल होना बहुत फायदेमंद हैं, क्योंकि उनकी स्वार्थपरक, मोहान्ध दृष्टि जहां पड़ेगी, उन्हें भी पागल बनायेगी और स्वयं को भी पागल बनायेगी। योग जुड़ने की कला बताकर कर्म का कौशल प्रदान करता है। भगवान्कृष्ण ने तो योग की परिभाषा ही कर डाली है- कि योग कमकौशल है, योग सम्तबुद्धि हे। रूप, रस, स्पर्श, गंध, शब्द तथा प्रत्येक कर्म से योगी उसी प्रकार जुड़ता है, जैसे संसारी, पर अनासक्त एकाग्र हो, पूर्ण तल्लीनता के साथ निर्विचार चित्त से जुड़ता है, इस तरह जुड़ने से हर जोड़ ब्रह्मनन्द बन जाता हैं। इस रहस्य को जानने वाले नासमझ अपने और योगियों में कोई अन्तर नहीं देख पाते। योगी पूरा जुड़ता है और पूरा छूट जाता है। जल में जैसे कमल। योगी स्वाभाविक रूप से चरित्रवान होता है। उसके चरित्र के मानदण्ड सच्चे होते है, इसलिए कभी-कभी झूठे समाज की सच्चरित्रता उसके विरोध में खड़ी हो जाती है। योगी की आंखें तुरन्त ताड़ जाती हैं कि क्या बुरा, क्या भला। वे प्रज्ञावान् होते हैं उनकी तीसरी आंख से कुछ छिपा नहीं रहा। वे आर-पार देखती है। वे वही करते है, जो ठीक हो, आनन्दायी हो। वे कमल की खेती करते है, कांटो की नहीं। जो कमल का रस चख चुका है, वह कांटों में क्यों जायेगा? योगी ही पूर्ण नैतिक होता है।

आसन-प्राणायाम- आसन और प्राणायाम को हम अकारण बहुत महत्व देते हैं। आसनों से योग साधना का कोई सरोकार नहीं है। ये पुराने साधन थे, जब योग स्थूल-साधनाओं, कृत्रिम साधनाओं को स्वीकार कर चलता था। योग का सम्बन्ध सीधे मन से है। यह एक मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है, शारीरिक नहीं। आसन बनाये गये थे, चक्रों के गति देने के लिए। इसका प्रभाव पड़ता है, पर इससे हानियां भी हैं। एक तो यह कृत्रिम साधन है, दूसरे कष्ट साध्य। चक्रों को गति देने का सबसे सरल ढंग है नृत्य, ट्विस्ट करना, खेलना। चलने, उठने, बैठने, सबसे नाड़ी- जालों में खिंचाव, तनाव, गति आती है। आसन माने शरीर जिसे मुद्रा में रहना पसंद करे, उस मुद्रा में उसे रखो। इससे मन शरीर के चक्कर में रहकर आंतरिक चक्रों पर एकाग्र रहेगा, अन्यथा वह आसनों के दबाव के प्रति सजग और एकाग्र रहेगा। इसी प्रकार प्राणायाम है। यह भी श्वांस की अस्वाभाविक प्रक्रिया है। इससे भी लाभ और हानि दोनों होते है। थोड़े से लाभ के पीछे हानि कौन चाहेगा? फिर आज किसको फुरसत है कि नाक दबाता बैठा रहे। आसनों तथा प्राणायाम से रोगों से छुटकारा मिलता है, शरीर स्वस्थ रहता है और आंशिक रूप से ध्यान में भी सहयोग मिलता है। बहुत-सी ऐसी संस्थायें हैं जो योग के नाम पर आसनों का व्यापार कर रहे हैं। डॉक्टर बन गये हैं, जिन्हें कोई विशेष व्याधि हो, वे भले ही इस चक्कर में पड़ें, वैसे योग या ध्यान से इनका विशेष सरोकार नहीं हैं बल्कि अस्वाभाविक होन के कारण ये अवरोध अधिक उत्पन्न करते है।

योग के आयाम का विस्तार- पहले योग मूलतः स्वयं से स्वयं की संतुष्टि को ही सब कुछ मानता था। आत्मा को रमा करो, बाहर से संसर्ग न करो, नहीं तो बाहर न जाने कब तुम्हें भ्रष्ट कर दे। इस भय से योगी एकांत की तलाश करते थे, समाज से सरोकार नहीं रखते थे। भगवान् कृष्ण ने योग को कर्म से जोड़ने का स्तुत्य प्रयास किया। उन्होंने कहा मुझे स्मरण कर युद्ध कर। मुझे माने अपने आत्म-केन्द्र का स्मरण और कर्म एक साथ करो। वास्तव मे हमारा ध्यान अन्दर भी जाता है, बाहर भी। हमें बाहर के

कर्म-जगत से डरना नहीं चाहिए। बाहर से प्रत्येक कर्म में पूर्ण एकाग्रता और तल्लीनता वही परिणाम लाती है जो आन्तरिक केन्द्र की एकाग्रता और तल्लीनता लाती हैं। आगे चलकर भगवान् महावीर ने तथा इस युग में जे. कृष्णमूर्ति भगवान् रजनीश, महिर्ष महेश आदि ने ध्यान को पूरी जीवन-चर्या से जोड़ने का प्रयास किया। इन सबका कहना है कि हर क्रिया को एकाग्रता, सृजगता, जागरूकता से करने, से उससे जुड़ने से ध्यान का आनन्द आयेगा। कहीं भी जुड़ों, सब योग है, सब आनन्दयुक्त है। इस प्रकार आज योग जीवन को खंडित न कर अखण्ड रूप स्वीकार कर सर्वत्र परमात्मा की छवि और छाप का आनन्द लेने को कहता है।

योग पूर्णतः असाम्प्रदायिक है- योग न किसी देश का है, न धर्म या जाति या सम्प्रदाय का है। यह आंतरिक साधना है। ध्यान एक विज्ञान है, योग एक विज्ञान है। इसका सम्बन्ध रूढ़िवादिता से नहीं जोड़ना चाहिए। यह धर्म का विश्वसनीय रूप है। धर्मों और सयम्प्रदायों को योग के मंच पर एक किया जा सकता है। आधुनिक युग की धर्म की साधना का यही वैज्ञानिक, सरल, सुगम और उपयोगी रूप है।

योग उपदेश नहीं, उपचार है- योग साधना में चित्त को शून्य, मौन करना होता है, इसलिए इसका सम्बन्ध शास्त्र, प्रवचन, उपदेश, कर्मकाण्ड आदि से नहीं है। योग साधक इससे जितना बचके रहेगा, उसे उतनी सफलता मिलेगी। योग में, करके जानने की प्रक्रिया अपनाता है। करते जाओ स्वयं जानते जाओ। इससे बाह्य विधि-विधान अवरोध उत्पन्न करते है। सबको छोड़कर शांत बैठने का अभ्यासी मन क्यों इन कचड़ों को अपने अन्दर इकठ्ठा करेगा? कहा तो यहां तक गया है कि ध्यान के पथ पर यदि कोई चित्रवत् परमात्मा भी आता है तो उसे हटा दो। योग मानता है कि जिसे ईश्वर कहते है, वह अनुभूति है, न कि किसी देवी-देवता, गुरू या कल्पित ईश्वर का रूप। ये सब हमारे अवचेतन मन में छिपे रूप हैं, जो ध्यान के समय दिखाई पड़ते है। ध्यान है शून्य आकाश का पा लोना। हमारे मन में जब कुछ नहीं होता, तब मन घुल जाता है, इस सअमन स्थिति में आत्मा

झलक जाती है।

अपने से जुड़ने की कला- योग स्वयं को जुड़ने के लिए सबसे पहले आदमी को उसके सीमित-सम्बन्धों से विरत करने का उपदेश करता है। बिना सम्बन्धों के सांसारिक कार्य सम्पादित नहीं हो सकते, इसलिए योग कहता है कि कर्त्तव्य-पालन करो, पर मोह न करो, आसक्त न हो। योग की यह महत्वपूर्ण कुंजी है व्यवहार करो, पर स्मृति, कल्पना, विचार में किसी को न पकड़ो। काम से कम और जैराम। कर्तव्य से नहीं चूकना हैं, नहीं तो मन में अंकित ग्लानियुक्त हो जायेगा और अपराधी भाव से भर जायेगा। मन को कैमरे की तरह न प्रयोग करो, वह दर्पणवत रहे। जो भी देखो उसकी फोटो मन में अंकित न हो। दर्पण, जब तक वस्तु सामने रहती है, तब तक उसकी छवि अंकित किये रहता है, वस्तु हटी, कि दर्पण स्वच्छ। ऐसा चित हो जाये तो सफलता तुरन्त मिल जाये। चित का शून्य होना ही सत्य में प्रवेश कर जाता है। इसी में साधकों को काफी समय लग जाता है। आसक्ति या मोह के जाल से निकलना बड़ा कठिन है, परसंस्कारी, समझदार इसमें शीघ्र सफलता भी प्राप्त कर लेते हैं।

3

प्रारंभिक उपनिषदों में योग
(Yoga in Early Upanisads)

योग भारतवर्ष में व्यायाम की प्राचीन पद्धति तथा विधि रही है जिसे आज के आधुनिक युग में न केवल भारत में अपितु पूरे विश्व के अन्य विकसित राष्ट्रों में अपनाया जा रहा है। आजकल यह व्यायाम देश-विदेश में लोकप्रिय हो रहा है। इसका कारण इसकी उपयोगिता है। योग आत्मा को परमात्मा से मिलाने का महत्वपूर्ण साधन है। इस मधुर मिलन का माध्यम शरीर है। शक्तिशाली शरीर द्वारा ही परमात्मा के दर्शन हो सकते हैं। क्योंकि योग शरीर को शक्तिशाली बनाता है इसलिए यह आत्मा को परमात्मा से मिलाने का महत्वपूर्ण साधन है। ईश्वर अलौकिक गुण, कर्म तथा स्वभाव वाला विद्यायुक्त है। यह आकाश के समान व्यापक है। जीव सत्य तथा चित्त है अर्थात् उसका अस्तित्व है तथा उसमें चेतन तत्त्व है। मनुष्य कर्म करने के लिए स्वतन्त्र है।

वास्तव में जीव प्रकृति तथा ईश्वर में एक-दूसरे के साथ सम्बन्ध होना चाहिए तथा योग इन सम्बन्धों को बनाने में तथा दृढ़ करने में हमारा सहायक बनता है। योग शब्द संस्कृत भाषा के शब्द युज से लिया गया है जिसका अर्थ है। संयोग या मिलाप। इसलिए शरीर तथा मन के संयोग को योग कहते हैं।

योग मनुष्य के गुणों, ताकतों या शक्तियों का पारस्परिक मिलाप है। इसके द्वारा मनुष्य की छिपी हुई ताकतों का विकास किया जाता है। योग द्वारा मनुष्य को पूर्ण आत्म-विश्वास होता है। योग शब्द प्राचीन काल से प्रचलित है। भगवद् गीता में भी भगवान् कृष्ण ने योग का वर्णन किया है। रामायण तथा महाभारत काल में भी इस शब्द का पर्याप्त प्रयोग हुआ है। इन धार्मिक ग्रन्थों में योग द्वारा मोक्ष प्राप्त करने के बारे में विस्तारपूर्वक

लिखा गया है। इसके अतिरिक्त अनेकों विद्वानों ने भी योग विज्ञान के बारे लिखा है। इन विद्वानों में पातंजलि ने योग विज्ञान पर काफी कुछ लिखा है, परन्तु योग के अर्थों में समानता नहीं। पांतजति के अनुसार, चित्त की वृत्ति के निरोध का नाम योग है।

भारत में प्राचीन काल से ही योग पद्धतियाँ प्रचलित हैं। उनकी दार्शनिक एवं धार्मिक परम्पराएं भिन्न-भिन्न है। वर्तमान युग में कोई इन परम्पराओं से अंशतः या पूर्णतः सहमत हो या न भी हो पर उसकी व्यवहारिक उपयोगिता निर्विवाद रूप से उभरकर सामने आई है। इनकी बढ़ती उपयोगिता के कारण वैज्ञानिक व जनसामान्य दोनों की इस विषय में रूचि बढ़ती जा रही है। आज जहां व्यक्ति के समग्र व्यक्तित्व विकास की अपेक्षा की जाती है, तो उस संदर्भ में आमतौर पर यह कहा जा रहा है कि योग के समग्र अभ्यास से व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक विकास में अत्यधिक सहायता मिलती हैं।

भारतवर्ष में योग का उद्भव हजारों वर्ष पहले हुआ। यहाँ तब से आज तक इसका न्यूनाधिक अभ्यास अनवरत चला आ रहा है। पश्चिम में कुछ दर्शक पहले तक इस योग-विज्ञान को कोई महत्व नहीं दिया जाता था। भौतिकता के बढ़ते आकर्षण ने ढेरों शारीरिक, मानसिक और सामाजिक समस्याएं पैदा कर दी। उसके समाधान के लिए योग विज्ञान के प्रति जन सामान्य और वैज्ञानिकों की भी रूचि बढ़ी। वैचारिक मन्थन प्रारम्भ हुआ कि जीवन में शान्ति कैसे मिले? इसके लिए योग का उपयोग किया गया। अनुसंधान हुए और सार्थक परिणाम आए। आशा की एक किरण नजर आई। लगने लगा कि जीवन में शान्ति पथ है योग। यह जीवन विज्ञान भी है जीवन शैली भी है और जीने की कला भी है।

वर्तमान समय में इसके अधिकाधिक उपयोगितावादी दृष्टिकोण अपनाया जा रहा है। स्वास्थ्य उन्नयन तथा परिक्षण के साथ-साथ रूग्णों के रोग-निवारण हेतु भी योगाभ्यास का प्रयोग बहुत हो रहा है। समाज के प्रायः सभी वर्गों ने योग के अध्ययन तथा अभ्यास में रूचि लेने एवं विचार करने

से योग के स्वरूप में अनेक नये आयाम जुड़े हैं। परिणामतः इसका स्वरूप भारतीय से अन्तर्राष्ट्रीयता की ओर, व्यक्तिगत साधना से समाज परक उपयोगता की ओर तथा अध्यात्मिक अभ्यास से वैज्ञानिक परीक्षण की ओर अग्रसर हुआ है।

इस लाभकारी परिवर्तन के साथ अनेक नई चुनौतियां उभरी हैं। आज का बहुचर्चित योग अपने प्राचीन स्वरूप से हटकर भौतिकता की ओर झुका रहा है। अपनी समग्रता को पीछे कर एक पक्षीय आसन तक सीमित होता जा रहा है। आज आसनों का अभ्यास योग का पर्यायवाची बन गया है। योग के मूल लक्ष्य पर अपने मूल लक्ष्य को लोग भूलते जा रहे हैं। यह सत्य है कि योग पूरे विश्व पर छा गया है। पर अपने मूल लक्ष्य से भटककर। योग की मूलधारा आध्यात्मिक है। यम, नियम, सदाचार इसकी नींव है। यह तत्व ज्ञान या तत्वानुभूति का विज्ञान है। सत्य कि खोज का उपाय हैं इसको मूल से जोड़े रखना आज की सबसे बड़ी चुनौती है। योग में शरीर व मन को प्रशिक्षित करने की बेजोड़ क्षमता है, जो आज के विज्ञान में नहीं है। पर यहीं तक रूकना योग की मूल अवधारणा के अनुरूप नहीं है। योग के समग्र रूप के विकास से व्यक्ति और समाज को लाभान्वित करना आवश्यक है।

प्राचीन विज्ञान के पुनर्निर्माण तथा उसके भावी दिशा निर्धारण के लिए मौलिक स्वरूप, उद्देश्य, और उपयोगिता को जानना अति आवश्यक है। समुचित ज्ञान के बिना विकास की भावी नीति अपूर्ण होगी। उसमें अनुचित आशायें जागेगी। अवांछित दिशाओं में विकास होगा। नव-निर्माण में समुचित सफलता नहीं मिलेगी। अतः अपेक्षित है कि योग की सम्पूर्ण जानकारी के लिए पुराने ग्रंथों का गहन अध्ययन किया जाए एवं उसका अभ्यास समग्रता से हो।

यहाँ भारत में भी योग विषय में व्यापक रूचि के पुनर्जागरण का हेतु पाश्चात्य जगत् ही है। पश्चिम में इसके साधना पक्ष व परीक्षणों के जोर पकड़ने पर आम भारतीयों का ध्यान भी उधर गया है। हम अपनी ही विद्या को भूलने लग गये थे। पर अब भारत में भी योग विज्ञान के नव निर्माण

के लिए प्रयत्न हो रहे हैं। पश्चिम की तर्ज पर यहां पर भी शोध कार्य होने लगा है पर यह कार्य अत्यन्त धीमी गति से हो रहा हैं

योग विद्या सम्पूर्ण जीवन दर्शन हैं वह एक ओर जीवन के आदि मध्य और अन्त को प्रकाशित करता है, वहीं दूसरीं ओर इसका मार्ग भी प्रस्तुत करता है। अत: यह जीवन भी है। तथा कथित केवल आसनाभ्यास वाला योग समग्रता को प्रस्तुति नहीं दे पा रहा हैं योग विषय के नवनिर्माण के लिए यह एकम विचारणीय बिन्दु है। इसका उद्देश्य शारीरिक स्वास्थ्य मात्र न होकर परम तत्त्व की अनुभूति सर्वांगीण व्यक्तित्व का विकास, संयमित, शान्त व संतुलित जीवन तथा स्वस्थ समाज का निर्माण है। इस परिप्रेक्ष्य में इसके भविष्य पर विचार अपेक्षित हैं।

योग शब्द की उत्पति संस्कृत भाषा के युजिर धातु से हुई है, जिसका अर्थ है-बाँधना, युक्त करना, जोड़ना, सम्मिलित होना, एक होना। योग का अर्थ संयोग या मिलन भी है। महादेव देसाई ने योग को स्पष्ट करते हुए लिखा है-शरीर मन और आत्मा की समग्र शक्तियों को परमात्मा से संयोजित करना योग है। योग शास्त्र में विभिन्न प्रकार की विधियों, मार्गों तथा अभ्यासों का वर्णन है, जिसके द्वारा साधक को अपने अन्तिम तथा मध्य के लक्ष्यों की प्राप्ति होती है।

इस प्रकार योग-विज्ञान मनुष्य की गम्भीरता का विज्ञान है, मनुष्य चेतना के विकास का विज्ञान है अथवा मनुष्य की सम्भवनाओं का विज्ञान है। यह एक विशिष्ट प्रकार का विज्ञान है जो पदार्थ, जीवन तथा चेतना को एक साथ लेकर चलता है तथा विज्ञान और आध्यात्मक की खाई पर बाँध का कार्य करता है।

कठोपनिषद् में योग की परिभाषा इस प्रकार की गई है-जब कि चेतना निश्चेष्ट हो जाती है, मन शान्त हो जाता है, जब कि बुद्धि अचंचल हो जाती है तब ज्ञान उसे सवोच्य पद प्राप्त हुआ मानते हैं चेतना और मन के इस दृढ़ निग्रह को ही योग की संज्ञा दी गयी है। जो इसे प्राप्त करता है वह बन्धनमुक्त है।

पातंजलि के योग का अर्थ "चितवृतिनिरोध" या संयमित मन मस्तिष्क है। योग का शाब्दिक अर्थ है-जुड़ना, आत्मा और परमात्मा का एकीकरण या सीमित का असीमित से मिलना। योग बीज के अनुसार प्राण और अपान या स्व के रज और रेतस् या सूर्य तथा चन्द्रमा या जीवात्मा और परमात्मा आदि विरूद्ध युग्मों के एकीकरण को योग कहते हैं। यह योग की वैचारिक पृष्ठभूमि हैं योग का और अधिक विस्तृत अध्ययन करने से स्पष्ट होता है कि योग मानसिक, शारीरिक और आधत्मिक विकास का क्रम है। योग का लक्ष्य शरीर को मानसिक प्रापति हेतु तैयार करना है, जो कि परब्रह्म प्राप्ति के लिये आवश्यक है।

भारत में प्राचीन काल से ही योग पद्धतियाँ प्रचलित है। उनकी दार्शनिक एवं धार्मिक परम्पराएँ भिन्न-भिन्न है। वर्तमान युग में कोई इन परम्पराओं से अंशत: या पूर्णत: सहमत हो या न भी हो पर उसकी व्यवहारिक उपयोगिता निर्विवाद रूप से उभरकर सामने आई है। इनकी बढ़ती उपयोगिता के कारण वैज्ञानिक व जनसामान्य, दोनों की इस विषय में रूचि बढ़ती जा रही है। आज जहाँ व्यक्ति के समग्र व्यक्तित्व विकास की अपेक्षा की जाती है, तो उस संदर्भ में आमतौर पर यह कहा जा रहा है कि योग के समग्र अभ्यास से व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक विकास में अत्यधिक सहायता मिलती है।

भारतवर्ष में योग का उद्भव हजारों वर्ष पहले हुआ। यहाँ तब से आज तक इसका न्यूनाधिक अभ्यास अनवरत चला आ रहा है। पश्चिम में कुछ दशक पहले तक इस योग-विज्ञान को कोई महत्त्व नहीं दिया जाता था। भौतिकता के बढ़ते आकर्षण ने ढेरों शारीरिक, मानसिक और सामाजिक समस्याएँ पैदा कर दी। उसके समाधान के लिए योग विज्ञान के प्रति जन सामान्य और वैज्ञानिकों की भी रूचि बढ़ी। वैचारिक मन्थन प्रारम्भ हुआ कि जीवन में शान्ति कैसे मिले? इसके लिए योग का उपयोग किया गया। अनुसंधान हुए और सार्थक परिणाम आएं। आशा की एक किरण नजर आई। लगने लगाा कि जीवन में शान्ति-पथ है-योग । यह जीवन विज्ञान भी

है जीवन शैली भी है और जीने की कला भी है।

वर्तमान में इसके प्रति अधिकाधिक उपयोगितावादी दृष्टिकोण अपनाया जा रहा है। स्वास्थ्य उन्नयन तथा परिरक्षण के साथ-साथ रूग्णों के रोग-निवारण हेतु भी योगाभ्यास का प्रयोग बहुत हो रहा है। समाज के प्राय: सभी वर्गों ने योग के अधययन तथा अभ्यास में रूचि लेने एवं विचार करने से योग के स्वरूप में अनेक नये आयाम जुड़े है। परिणामत: इसका स्वरूप भारतीय से अन्तर्राष्ट्रीयता की ओर, व्यक्तिगत साधना से समाज परक उपयोगता की ओर तथा आध्यात्मिक अभ्यास से वैज्ञानिक परीक्षण की ओर अग्रसर हुआ है ।

इस लाभकारी परिवर्तन के साथ अनेक नई चुनौतियां उभरी है। आज का बहुचर्चित योग अपने प्राचीन स्वरूप से हटकर भौतिकता की ओर झुक रहा है। अपनी समग्रता को पीछे कर एक पक्षीय आसन तक सीमित होता जा रहा है। आज आसनों का अभ्यास 'योग' का पर्यायवाची बन गया है। योग के मूल लक्ष्य को लोग भूलते जा रहे है। यह सत्य है कि योग आज पूरे विश्व पर छा गया है पर अपने मूल लक्ष्य से भटककर। योग की मूलधारा आध्यात्मिक है। यम, नियम, सदाचार इसकी नींव है। यह तत्व ज्ञान या तत्त्वानुभूति का विज्ञान है। सत्य की खोज का उपाय है। इसको मूल से जोड़े रखना आज की सबसे बड़ी चुनौती है। योग में शरीर व मन को प्रशिक्षित करने की बेजोड़ क्षमता है, जो आज के विज्ञान में नहीं है। पर यहीं तक रूकना योग की मूल अवधारणा के अनुरूप नहीं है। योग के समग्र रूप के विकास से व्यक्ति और समाज को लाभान्वित करना आवश्यक है।

प्राचीन विज्ञान के पुनर्निर्माण तथ उसके भावी दिशा निर्धारण के लिए मौलिक स्वरूप, उद्देश्य और उपयोगिता को जानना अति आवश्यक है। समुचित ज्ञान के बिना विकास की भावी नीति अपूर्ण होगी। उसमें अनुचित आशायें जगेगी। अवांछित दिशाओं में विकास होगा। नव निर्माण में समुचित सफलता नहीं मिलेगी। अत: अपेक्षित है कि योग की सम्पूर्ण जानकारी के लिए पुराने ग्रंथों का गहन अध्ययन किया जाएं एवं उसका अभ्यास समग्रता

से हो।

यहां भारत में भी योग विषय में व्यापक रूचि के पूनर्जागरण का हेतु पाश्चात्य जगत् ही है। पश्चिम में इसके साधना पक्ष व परीक्षणों के जोर पकड़ने पर आम भारतीयों का ध्यान भी उधर गया है। हम अपनी ही विद्या को भूलने लग गये थे। पर अब भारत में भी योग विज्ञान के नव-निर्माण के लिए प्रयत्न हो रहे है। पश्चिम की तर्ज पर यहां पर भी शोध कार्य होने लगा है पर यह कार्य अत्यन्त धीमी गति से हो रहा है।

योगविद्या सम्पूर्ण जीवन दर्शन है। वह एक ओर जीवन के आदि, मध्य और अन्त को प्रकाशित करता है, वहीं दूसरी ओर इसका मार्ग भी प्रस्तुत करता है । अत: यह जीवन विज्ञान भी है। तथाकथित केवल आसनाभ्यास वाला 'योग' समग्रता को प्रस्तुति नहीं दे पा रहा है। योग विषय के नव-निर्माण के लिए यह एक विचारणीय बिन्दु है। इसका उद्देश्य शारीरिक स्वास्थ्य मात्र न होकर परम तत्त्व की अनुभूति, सर्वांगीण व्यक्तित्व का विकास, संयमित, शान्त व संतुलित जीवन तथा स्वस्थ समाज का निर्माण है। इस परिप्रेक्ष्य में इसके भविष्य पर विचार अपेक्षित है।

योग शब्द की उत्पत्ति संस्कृत भाषा के 'युजिर्' धाातु से हुई है, जिसका अर्थ है - बाँधना, युक्त करना, जोड़ना, सम्मिलित होना, एक होना। योग का अर्थ संयोग या मिलन भी है। महादेव देसाई ने योग को स्पष्ट करते हुए लिखा है - "शरीर, मन और आत्मा की समग्र शक्तियों को परमात्मा से संयोजित करना योग है ।"

योग शास्त्र में विभिन्न प्रकार की विधियों, मार्गों तथा अभ्यासों का वर्णन है, जिनके द्वारा साधक को अपने अन्तिम तथा मध्य के लक्ष्यों की प्राप्ति होती है। इस प्रकार योग-विज्ञान मनुष्य की गम्भीरता का विज्ञान है, मनुष्य की चेतना के विकास का विज्ञान है अथवा मनुष्य की सम्भावनाओं का विज्ञान है। यह एक विशिष्ट प्रकार का विज्ञान है जो पदार्थ, जीव तथा चेतना को एक साथ लेकर चलता है तथा विज्ञान और आध्यात्मक की खाई पर बाँध का कार्य करता है।

कठोपनिषद् में योग की परिभाषा इस प्रकार की गई है - "जब कि चेतना निश्चेष्ट हो जाती है, मन शान्त हो जाता है, जबकि बुद्धि अचंचल (स्थिर) हो जाती है तब ज्ञान उसे सर्वोच्च पद प्राप्त हुआ मानते है चेतना और मन के इस दृढ़ निग्रह को ही योग की संज्ञा दी गयी है। जो इसे प्राप्त करता है वह बन्धनमुक्त है।"

जो योग मार्ग का साधन करता है वह योगी या योगिन् है। भगवत् गीता के छठे अध्याय में, जो कि योग दर्शन का अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रमाण है, श्रीकृष्ण अर्जुन को योग का अर्थ वेदना और दुःख के सम्बन्ध में मुक्ति बतलाते है। उन्होंने कहा है- "जब मन, बुद्धि और अहंकार वश में होते है और वे चंचल इच्छाओं से रहित होते है जिसमें वे आत्म-स्थित रह सके, तब पुरूष "युक्त" होता है। वहां वायु नहीं बहती है, वहां दीपक काँपता नहीं है, वहीं स्थिति योगी की है (जो अपनी आत्मा में लीन होकर मन, बुद्धि और अहंकार को वश में करता है। योगाभ्यास द्वारा मन, बुद्धि और अहंकार की चंचलता को शांत एवं स्थिर कर दिया जाता है, तब योगी परमात्मा के अनुग्रह से अपने में पूर्ण आनन्द का अनुभव प्राप्त होता है। तब उसे आन्तरिक आनन्द की अनुभूति होती है जो अतीन्दिय है, जिसे बुद्धि ग्रहण नहीं कर सकती। वह इस अनुभूति में स्थिर रहता है और उससे विचलित नहीं होता। उसे वह निधि प्राप्त होती है जो सर्वोपरि है। इससे और कुछ महान् नहीं है। जिसने इसे प्राप्त किया है, उसे महान् से महान् दुःख विचलित नहीं कर सकेगा। योग का सही अर्थ यही है..... "वेदना और दुःख के संसर्ग से मुक्ति।"

पांतञ्जलि के योग का अर्थ "चितवृतिनिरोधा" या संयमित मन मस्तिष्क है। योग का शाब्दिक अर्थ है - जुड़ना, आत्मा और परमात्मा का एकीकरण या सीमित का असीमित से मिलना। योग बीज के अनुसार प्राण और अपान या स्व के रज और रेतस् या सूर्य तथा चन्द्रमा या जीवात्मा और परमात्मा आदि विरूद्ध युग्मों के एकीकरण को योग कहते है। यह योग की वैचारिक पृष्ठभूमि है। योग का और अधिक विस्तृत अध्ययन करने से स्पष्ट

होता है कि योग मानसिक, शारीरिक और आध्यात्मिक विकास का क्रम है। योग का लक्ष्य शरीर को मानसिक प्राप्ति हेतु तैयार करना है, जो कि परब्रह्म प्राप्ति के लिये आवश्यक है।

योग की व्याख्याएँ

विभिन्न भारतीय परम्पराओं में हमें योग की विभिन्न परिभाषाएँ मिलती है, जो निम्न है:

1. योगश्चित्तवृतिनिरोधः । तदा द्रष्टु स्वरूपंऽवस्थानम। पांतञ्जल योग सूत्र के अनुसार अभ्यास एवं वैराग्य द्वारा चित्त वृत्तियों को ब्राह्य समस्त विषयों से निरूद्ध कर अपने मूल स्वरूप में शाश्वत रूप से असम्प्रज्ञात समाधि की स्थिति में अवस्थित होना योग है।

2. पुं प्रकृत्योर्वियोगऽपि योगइत्यभिधीयते।। सांख्य दर्शन के अनुसार पुरूष एवं प्रकृति के पार्थक्य को स्थापित कर पुरूष का स्वरूप में अवस्थित होना ही योग है।

3. योगः संयोग इत्युक्तः जीवात्मपरमात्मनो।। विष्णु पुराण के अनुसार जीवात्मा तथा परमात्मा का पूर्णतया मिलन ही योग है।

4. सिद्धयसिद्धयोः समोभूत्वा समत्वं योग उच्चते।। भगवद्गीता के अनुसार दुःख-सुख, लाभ-अलाभ, शत्रु-मित्र, शीत और उष्ण आदि द्वन्द्वों में सर्वत्र समभाव रखना योग है।

5. तस्माद्योगाययुज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम्।। भगवद्गीता के अनुसार कर्त्तव्य कर्म बन्धक न हो इसलिए निष्काम भावना से अनुप्रेरित होकर कर्त्तव्य करने का कौशल योग है।

6. तं विद्यात् दुःख संयोग वियोगं योग संज्ञितम्।। भागवद्गीता में कहा गया है समस्त दुःखों के आत्यंतिक निवृत्ति तथा उसके साधनों को भी योग कहा जाता है।

7. मोक्खेण जोयणाओं सव्वो वि ववहारो जोगो। आचार्य हरिभद्र के

अनुसार मोक्ष से जोड़ने वाले सभी व्यवहार योग है। आचार्य हेमचन्द्र ने मोक्ष के उपाय रूप को ज्ञान और चरित्रात्मक कहा है।

8. कुशल चितेकग्गता योग। बौद्धों के अनुसार कुशल चित्त की एकाग्रता योग है।

9. डॉ॰ राधाकृष्णन् के अनुसार योग का अर्थ है- अपनी आध्यात्मिक शक्तियों को एक जगह इकट्ठा करना, उन्हे संतुलित करना और बढ़ाना।

10. प्रो॰ रामहर्ष सिंह के अनुसार योग का अर्थ मनुष्य के व्यक्तित्व के शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक तथा आध्यात्मिक पक्षों का एकीकरण है साथ ही मनुष्य का उसके द्वारा समन्वय योग है।

योग के प्रकार

योग परम तत्त्व की प्राप्ति है। उसके लिये अनेक साधनों का उपयोग किया जाता है। उन साधनों को भी योग कहा जाता है। उनका कोई सर्वसम्मत एवं वर्गीकरण प्राप्त नहीं होता है। वे साधन एक दूसरे से जुड़े हुए होते है। परम्परागत सभी योग पद्धतियों में अनेक योग विधियों का प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में उपयोग किया जाता है। व्यक्ति, समय व क्षेत्र की आवश्यकता अनुसार कभी किसी एक विधा पर बल देना भी पड़ता है पर जब वह रूढ़ तथा व्यापक परम्परा या संस्था बन जाती है तो अनेक समस्यायें खड़ी हो जाती है। आग्रह और विग्रह पैदा हो जाते है। अत: युगपुरूष, युगद्रष्टा उसका नवीनीकरण करते है। जैसा कि देखते है वर्तमान युग में स्वामी विवेकानन्द, महर्षि अरविन्द तथा आचार्य श्री महाप्रज्ञ ने सभी योगों के संश्लेषण पर बल दिया है मुख्य भारतीय योग विधाओं को इस रूप में समझा जा सकता है ।

वैदिक योग, जैन योग, बौद्ध योग आदि पारम्परिक भेदों के साथ ही योग के कई प्रकार से भेद किये जाते है जैसे :

1. ज्ञान योग 2. कर्म योग 3. भक्ति योग
4. मन्त्र योग 5. लय योग 6. हठ योग

7. राज योग 8. तन्त्र योग 9. यंत्र योग

1. ज्ञान योग :

यह आध्यात्मिक ज्ञान व प्रज्ञा का मार्ग है। प्रबुद्ध जन अविद्या मिथ्यात्व व अज्ञान के अंधकार को भेदकर 'स्व' विशुद्ध चेतना या परम तत्त्व का बोध करते है। ज्ञान योग की साधना स्वाध्याय और ध्यान के मार्ग द्वारा सम्पन्न होती है। कहा भी गया है कि ''ऋते ज्ञानान्नमुक्ति:'' तत्त्व ज्ञान के बिना मुक्ति सम्भव नहीं है। तत्त्व ज्ञान की प्राप्ति मानसिक व भावनात्मक विकास तथा उसकी शुद्धि से प्राप्त होती है। श्रवण, मनन और निदिध्यासन इसके प्रमुख साधन है। प्राय: ज्ञान योग को वे ही लोग अपनाते है जिसकी बुद्धि तीक्ष्ण होती है तथा केवल जिज्ञासु ही ज्ञान मार्ग में तत्पर हो सकते है। ज्ञान योग में अज्ञान को सभी दु:खों का कारण माना जाता है। दु:ख के कारण पर मनन करना, परम सच्चाई को प्राप्त करना, परमार्थिक तत्त्व का ज्ञान होना ही सच्चा ज्ञान है। ज्ञानयोग स्वानुभूति या स्वं का ज्ञान है।

2. भक्ति योग:

यह योग भक्ति, श्रद्धा व समर्पण पर आधारित होता है। इसमें परम तत्त्व के साथ एकाकार होने का लक्ष्य व भावना प्रबल होती है। एक भक्त अपने किसी एक इष्ट या गुरू पर अपने आप को समर्पित कर उसी की अर्चना या पूजा करता है। भक्ति से सराबोर होकर एकात्मकता की अनुभूति करता है अर्थात् सर्वस्व परमात्मा पर ही न्यौछावर कर देना ही भक्ति मार्ग का द्वार है। अधिकांश भारतीय एवं सामान्यजन इसी मार्ग का अनुकरण करते देखे जाते है। यह भावना प्रधान साधना है। भक्ति योग में यह माना जाता है कि भक्त जो कुछ करता है उसके द्वारा नहीं अपितु ईश्वर द्वारा ही किया जाता है ।

3. कर्म योग :

आज जिस अर्थ में कर्म योग प्रचलित है वह निष्कामकर्म व सेवा का मार्ग है। साधक निष्पृह होकर स्व या स्व के साथ सर्व आत्म कल्याण के

लिये कार्य करता है। इस युग में महात्मा गाँधी, आचार्य श्री तुलसी, विनोबा भावे इसके अप्रतिम उदाहरण है यह पुरूषार्थ, स्वतंत्रता व स्वावलम्बन का मार्ग है गीता के अनुसार कर्म फल पर व्यक्ति को अपना अधिकार नहीं करना चाहिए। प्रतिफल पर स्वयं के अधिकार की इच्छा किये बिना कर्म के लिये तत्पर रहना ही निष्काम कर्म है। यही कर्म योग है। यह भक्ति योग के विपरीत योग है। इसकी भी अपनी सीमाएं है। इसमें व्यक्ति कर्म करता है तो उसमें अहंकार की भावना उत्पन्न होने की सम्भावना है। इसमें व्यक्ति का पुरूषार्थ प्रबल है पर अहंकार की समस्या जुड़ी है। इससे निपटने के लिये अनासक्त भाव से कर्म करना चाहिए। यह योग हर कोई नहीं कर सकता क्योंकि फल नहीं मिलेगा तो व्यक्ति में निराशा आयेगी।

4. मंत्र योग :

मंत्र की साधना चेतना को परिष्कृत करती है। इसमें किसी बीजाक्षर, मंत्र या वाक्य का बार-बार पुनरावर्तन किया जाता है। विधिवत लयबद्ध पुनरावर्तन को जाप कहते है। इसमें ध्वनि के उच्चारण पर विशेष ध्यान दिया जाता है। चित्त की सूक्ष्मतम तरंगे धवनि की तरंगें है। मंत्र की साधना से पहले अन्दर की सफाई होती है। अन्त में व्यक्ति उसी में एकाग्र हो जाता है। उसका मन स्थिर होने लगता है। वैदिक साधना पद्धति में ऊँ बौद्धों में ऊँ मणि पद्मेऽहं, जैनों में नमस्कार महामंत्र, अर्हम् आदि ध्वनियों के उदाहरण है। उन ध्वनियों का उपयोग करना चाहिए जिनसे मन परमात्मा में लयलीन हो जाये। एक ही ध्वनि को लम्बे समय तक उपयोग की सलाह दी जाती है।

तस्य वाचकः प्रणवः । तज्जपस्तदर्थभावनम् ॥

(पांतञ्जल योग सूत्र)

पांतञ्जल योग सूत्र के अनुसार ईश्वर का वाचक प्रणव है। ओंकार है। इसका जप करते हुये अन्त में इसके अर्थ अर्थात् परमात्म रूप हो जाना मंत्र का प्रमुख उद्देश्य है। मंत्र के जप के साथ उसके अर्थ, छन्द, ऋषि या

देवता का अधिकाधिक रूप में मनन किया जाता है। तब वह शीघ्र सिद्ध होता है। मंत्र सिद्धि के द्वारा मन, मंत्र तथा आराध्य देव की पृथकता का बोध साधक को नहीं होता है। तीनों एक दूसरे में लीन हो जाते है। ध्याता, ध्यान और ध्येय रूपी त्रिपुटी का लय हो जाता है। इसके फलस्वरूप साधक सिद्धि प्राप्त करता है ।

योगशास्त्र में 'मन्त्रयोग' शब्द यद्यपि विभिन्न स्थानों में विभिन्न अर्थों में प्रयुक्त हुआ है, फिर भी यदि हम मन्त्र-योग का मुख्य अर्थ मन्त्र के आश्रय से जीवात्मा और परमात्मा का सम्मिलन मान लें तो इसमें कोई आपत्ति न होगी। शब्दात्मक मन्त्र चेतन होने पर उसी की सहायता से जीव क्रमशः ऊपर गमन करते-करते शब्द से अतीत परमानन्दधाम तक पहुँच सकता है। वैखरी शब्द से क्रमशः मध्यमा अवस्था को भेदकर पश्यन्ती में प्रवेश करना ही मन्त्र योग का प्रधान उद्देश्य है। पश्यन्ती शब्द स्वप्रकाशमान चिदानन्दमय है - चिदात्मक पुरूष की वहीं अक्षय और अमर षोडशी कला है। वही आत्मज्ञान, इष्ट देवता के साक्षात्कार अथवा शब्दचैतन्य का प्रकृष्ट फल है। इस अवस्था में पहुँचने पर जीव कृतकृत्य हो सकता है। इसके बाद अवयक्त भाव अपने आप उदित होता है। वहीं शब्द की तुरीय अवस्था है। मूलाधार से निरन्तर शब्द-स्रोत ऊपर की ओर उठ रहा है, यही शब्द समस्त जगत के केन्द्र में नित्य विद्यमान है। बहिर्मुख जीव इन्द्रियों के अधीन होकर विषयों की ओर दौड़ रहा है, इसी से उसे इसका पता नहीं लगता। जब किसी क्रिया-कौशल से अथवा अन्य किसी उपाय से इन्द्रियों की बहिर्गति रूद्ध हो जाती है और प्राण तथा मन स्तम्भित-से हो जाते है, तब साधक इस चेतन शब्द को सुनने के अधिकारी होते है । षण्मुखी मुद्रा द्वारा कृत्रिम उपाय से नाद के अनुसंधान की चेष्टा की जाती है। नोदन अथवा अभिधातजनित शब्द को अनाहद नाद में लीन न कर सकने पर मन्त्र अक्षरसमष्टि ही रह जाता है। उसका सामर्थ्य और प्रकाश अनुभवगोचर नहीं होता। इडा-पिंगला की गति रूककर प्राण और मन के सुषुम्ना के अन्दर प्रविष्ट होने पर यह नित्य सारस्वत स्रोत अनुभूत होता है। यहीं क्रमशः

साधक को आज्ञा चक्र में ले जाता है और वहाँ से बिन्दुस्थान भेदकर क्रमशः सहस्त्रार के केन्द्र में महाबिन्दुपर्यन्त पहुँचा देता है। हंस-मंत्र, जिसका जीव निरन्तर श्वास-प्रश्वास के साथ जप करता है, गुरू कृपा से प्राण विपरीतभावापन्न अवस्था में सोऽहं-मंत्र रूप में परिणत हो जाता है।

5. लय योग

इस सिद्धान्त के अनुसार मानव पिण्ड के मूलाधार स्थित चतुर्दल पद्म चक्र में कुंडलिनी नामक शक्ति सुप्तावस्था में रहती है। अविद्या के प्रभाव से यह सुप्त शक्ति अर्द्धजागृत होकर अधोमुखी होती है तथा विषय वासनाओं को तीव्र रूप से उत्तेजित करती है। इसके विपरीत साधना की परिपक्व दशा में मानव पिण्ड के मूलाधार में स्थित यहीं कुण्डलिनी शक्ति मेरूदण्ड के अन्तर में स्थित ब्रह्मनाड़ी से होती हुई षट्चक्रों को भेद कर मस्तिष्क में स्थित सहस्त्र दल कमल में अवस्थित परंब्रह्म शिव तत्त्व में लीन हो जाती है। इस प्रकार शिव में शक्ति का लय कर मुक्ति प्राप्त करने की विस्तृत यौगिक साधना को 'लय योग' कहते है। इसमें शरीर व मन पर कठोर अनुशासन किया जाता है। इसका अभ्यास परिपक्व व योग्य साधक के नेतृत्व में ही उपयोगी रहता है अन्यथा यह साधना शरीर व मन को व्याधिग्रस्त व विक्षप्त भी कर सकती है। मुख्यतः इसमें ऊर्जा का ऊर्ध्वारोहण किया जाता है। कुण्डलिनी (लय) योग तन्त्र का ही एक महत्वपूर्ण पक्ष है। जब ऊर्जा के ऊर्ध्वारोहण से स्थूल व सूक्ष्म शरीर तनाव मुक्त हो जाता है तो चित्त शारीरिक चेतना से होकर परम चेतना में विलीन हो जाता है।

6. हठ योग

हमारे भारतवर्षीय आचार्यों का यह सिद्धान्त है कि सभी शास्त्रों की प्रथम प्रवृत्ति परमेश्वर से ही होती है। इस कारण हठ योग भी ईश्वरप्रोक्त कहा जाता है। हठयोगी कहा करते है कि आदिनाथ श्रीशिवजी ही हठयोग के प्रवर्तक है। जिस विचित्र उपाय से मत्स्येन्द्रनाथ ने इस विद्या को प्राप्त किया था। उसका ऐतिहासिक महत्व कितना है, यह नहीं कहा जा सकता। मत्स्येन्द्रनाथ की तरह गोरखनाथ, चर्पटि, जलन्धर, कनेड़ी, चतुरंगी, विचारनाथ

आदि नाथ-सम्प्रदाय के आचार्यों ने हठयोग में निष्णात होकर संसार में इसका प्रचार किया था। गोरक्षशतक, गोरक्षसंहिता, सिद्ध-सिद्धान्तपद्धति, सिद्ध-सिद्धान्तसंग्रह, गोरक्षसिद्धान्त संग्रह, अमनस्क, योगबीज, हठयोगप्रदीपिका, हठतत्त्वकौमुदी, घेरण्डसंहिता, निरन्जनपुराण इत्यादि बहुत-से ग्रन्थ आज भी मिलते है।

मत्स्येन्द्रनाथ और गोरखनाथ के पूर्व ही हठयोग का प्रचलन था, इसमें सन्देह नहीं। कहा जाता है कि प्राचीन काल में मार्कण्डेय मुनि इस योग के साधक थे। गोरक्षोपदिष्ट हठयोग के छः अंग है- उसमें यम और नियम ग्रहण नहीं किये जाते। परन्तु मार्कण्डेय अष्टांग हठयोग के पक्षपाती थे। योगतत्त्व-उपनिषद् में भी हठयोग के आठ प्रकार के अंग बतलाये गये है।

पातञ्जलदर्शन में असम्प्रज्ञात समाधि के नाम से इसी का वर्णन किया गया है। हठयोग की निमित साधना के द्वारा राजयोग की सिद्धि होती है, हठयोगप्रदीपिकाके मतानुसार समाधि, उन्मनी, मनोन्मनी, अमरत्व, लय, तत्त्व, परमपद, अमनस्क, अद्वैत, निरालम्ब, निरञ्जन, जीवन्मुक्ति, सहज, तुरीय- ये सब राजयोग के नामान्तर है।

देहशुद्धि हठयोग का अव्यवहित उद्देश्य है। योगियों की पारिभाषिक भाषा में यह घटशुद्धि के नाम से विख्यात है। घेरण्डसंहिता का मत है कि हठशास्त्रेक्त धौति, बस्ति, नेति, त्राटक, नौलि एवं कपालभाति-इस षट्कर्मद्वारा देह की शुद्धि होती है। देहकी दृढ़ता और स्थिरता आसन और मुद्रा का अभ्यास करने से सिद्ध होती है तथा प्रत्याहार, प्राणायाम, ध्यान और समाधि के द्वारा क्रमशः दैहित धीरता, लधुता, आत्मप्रत्यक्ष और निर्लेपता सुसम्पन्न होती है। अनेक आचार्य आसन, प्राणायाम अथवा कुम्भक, मुद्रा या करण तथा नादानुसन्धान- इन चार को हठयोग का प्रधान प्रतिपाद्य विषय कहते है।

हठ योग में शरीर को साधने पर अधिक बल दिया जाता है। इसके अन्तर्गत सूर्य स्वर (दायां) ओर चन्द्र स्वर (बायां) दोनों के सन्तुलन की साधना की जाती है। हमारे भीतर बहने वाली प्राणधारा जो दाईं नासिका में प्रवाहित होती है वह सूर्य स्वर है और जो बायीं नासिका में प्रवाहित होती

है वह चन्द्र स्वर है। इन दोनों के सन्तुलन की साधना हठ योग है। 'हठ' शब्द का अर्थ 'बलपूर्वक' भी किया जाता है । पर यह अर्थ इसके मूल हार्द से मेल नहीं खाता है। इसमें आसन, प्राणायाम और शुद्धि क्रियाओं पर विशेष बल देते हुए शरीर को मानसिक ध्यान (राज योग) के लिए साधा जाता है। इसका अभ्यास जन साधारण में विशेष रूप से लोकप्रिय होता जा रहा है। इसके अभ्यास से स्वास्थ्य चिर यौवन और दीर्घायु की कामना मुख्य है। इसे आज की भाषा में 'स्वास्थ्य विज्ञान' भी कहा जाता है। क्योंकि इससे हमारे शरीर की नाड़ी तंत्र संतुलित होता है अर्थात् प्राणधारा का संतुलन। इसकी सीमा यह है कि इसकी साधना का सम्बन्ध स्थूल शरीर के अन्नमय कोश व प्राणमय कोश से सर्वाधिक होता है। साधक का हठ योग तक ही रूक जाना आध्यात्मिक विकास में बाधा होती है। अतः हठ योग को राज योग के पूर्वांग के रूप में स्वीकार कर राज योग के अभ्यास से इसकी सीमाओं को विस्तृत किया जाता है।

7. राज योग

राज योग सबसे उत्तम कोटि का योग माना जाता है। इसमें चित्त को स्थिर किया जाता है। इसका उद्देश्य चित्त वृत्तियों के निरोध द्वारा अपने स्वरूप में स्थिर होना है। यह चित्त वृत्तियों के निरोध का अभ्यास है। यह मनोमय कोष पर सीधा कार्य करता है। इससे एकाग्रता व समाधि की उपलब्धि होती है। सीधा चित्त को स्थिर करना सभी के लिये सम्भव नहीं होता तथा शरीर को भी साधनानुकूल बनाना आवश्यक होता है। अतः राज योग के पूर्व हठ योग का अभ्यास प्राप्त होता है। पांतञ्जल योग सूत्र में राज योग का व्यवस्थित प्रतिपादन हुआ है। आसन और प्राणायाम योग के आठ अंगो में समाहित है। 'हठ योग प्रदीपिका', 'घेरण्ड संहिता' और 'शिव संहिता' हठ योग को राज योग की पूर्व तैयारी के रूप में, शरीर को साधनानुकल बनाने की साधना के रूप में देखते है। चैतसिक स्थिरता के साथ शरीर-शुद्धि व उसकी क्षमता के विकास पर भी बल दिया गया है।

योग, चाहे वह किसी भी प्रकार का हो, चित्तवृत्ति के निरोध से ही

सम्बन्ध रखता है -

योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः।

साधारण अवस्था में चित्तवृत्ति प्रतिपल परिवर्तित होती रहती है। किन्तु समाधि-अवस्था में चित्तवृत्ति एकाकार हो जाती है। चित्तवृत्ति बदलते रहने के दो मुख्य कारण है। पहला तो यह कि हम मन, इन्द्रियों द्वारा बहिर्मुख होकर, बाह्य विषयों में आसक्त रहता है। दूसरे, यदि इन्द्रियों को बन्द करके, मन को बाह्य विषयों से खींच भी लिया जाय तो भी अन्तःकरण की क्रियाएँ बन्द नहीं हो जातीं - वे बराबर चलती ही रहती है । जैसे जाग्रदवस्था में तो मन बहिर्मुख-सा व्यवहार किया ही करता है (पर शब्दादि से दूर, किसी बन्द कमरे में, आँखें बन्द करके बैठ जाने पर भी साधारण जनका-और स्वप्नावस्था में सभी प्राणियों का - अन्तःकरण जाग्रदवस्था के समान ही सब क्रियाएँ करता रहता है। योगाभ्यासियों को अन्तःकरण की पूरी अनुशासना करनी पड़ती है - 'चित्त की वृत्तियों का संयम करना पड़ता है। इन दोनों ही अवस्थाओं (जाग्रत और स्वप्न) में चित्तकी वृत्तियों पर सम्यक् नियन्त्रण रखने में सफलता प्राप्त होने पर ही 'मन' का निरोध सम्भव है।

पर चित्त की वृत्तियों का निरोध किया कैसे जाये? इसके दो प्रकार है। यह बतलाने की आवश्यकता नहीं कि मन का और प्राण का पारस्परिक सम्बन्ध अटूट है, अविच्छेद्य है। मन के निरोध से प्राण-स्पन्द रूक जाता है और प्राण-स्पन्द की शिथिलता मन को एकाग्र बना देती है। इसलिये, मन के निरोधा के लिये प्राण-स्पन्द की गति-विधि पर सम्यक् अनुशासन रखना नितान्त आवश्यक है। प्राण-स्पन्द का सम्बन्ध श्वास-निःश्वास से है (अर्थात् जितनी ही तीव्रता से साँस चलेगी, प्राण-स्पन्द में भी उतनी ही अधिक गतिशीलता आयेगी और साँस जितनी ही धीरे-धीरे चलेगी, 'प्राण-स्पन्द' में भी उतनी ही अधिक शिथिलता आयेगी। अतएव मनोनिरोध के लिये 'प्राण-स्पन्द' को वशीभूत करना पड़ता है और इसके लिये 'अष्टांगयोग-साधना' से - और उनमें भी विशेषकर प्राणायाम से - काम लेना पड़ता है। 'अष्टांग योग-साधना' से प्राण-स्पन्द रूक जाता है और उसी अवस्था में

4

योग सूत्रः सामान्य विचार

(The Yoga Sutra: General Consideration)

पांतञ्जल योग सूत्र के अनुसार ईश्वर का वाचक प्रणव है। ओंकार है। इसका जप करते हुये अन्त में इसके अर्थ अर्थात् परमात्म रूप हो जाना मंत्र का प्रमुख उद्देश्य है। मंत्र के जप के साथ उसके अर्थ, छन्द, ऋषि या देवता का अधिकाधिक रूप में मनन किया जाता है। तब वह शीघ्र सिद्ध होता है। मंत्र सिद्धि के द्वारा मन, मंत्र तथा आराधय देव की पृथकता का बोध साधक को नहीं होता है। तीनों एक दूसरे में लीन हो जाते है। ध्याता, ध्यान और ध्येय रूपी त्रिपुटी का लय हो जाता है। इसके फलस्वरूप साधक सिद्धि प्राप्त करता है।

योगशास्त्र में 'मन्त्र योग' शब्द यद्यपि विभिन्न स्थानों में विभिन्न अर्थों में प्रयुक्त हुआ है, फिर भी यदि हम मन्त्र-योग का मुख्य अर्थ मन्त्र के आश्रय से जीवात्मा और परमात्मा का सम्मिलन मान लें तो इसमें कोई आपत्ति न होगी। शब्दात्मक मन्त्र चेतन होने पर उसी की सहायता से जीव क्रमशः ऊपर गमन करते-करते शब्द से अतीत परमानन्दधाम तक पहुँच सकता है। वैखरी शब्द से क्रमशः मध्यमा अवस्था को भेदकर पश्यन्ती में प्रवेश करना ही मन्त्र योग का प्रधान उद्देश्य है। पश्यन्ती शब्द स्वप्रकाशमान चिदानन्दमय है - चिदात्मक पुरूष की वहीं अक्षय और अमर षोडशी कला है। वही आत्मज्ञान, इष्टदेवता के साक्षात्कार अथवा शब्दचैतन्य का प्रकृष्ट फल है। इस अवस्था में पहुँचने पर जीव कृतकृत्य हो सकता है। इसके बाद अवयक्त भाव अपने आप उदित होता है। वहीं शब्द की तुरीय अवस्था है। मूलाधार से निरन्तर शब्द-स्रोत ऊपर की ओर उठ रहा है, यहीं शब्द समस्त जगत के केन्द्र में नित्य विद्यमान है। बहिर्मुख जीव इन्द्रियों के अधीन होकर विषयों की ओर दौड़ रहा है, इसी से उसे इसका पता नहीं लगता। जब

किसी क्रिया-कौशल से अथवा अन्य किसी उपाय से इन्द्रियों की बहिर्गति रूद्ध हो जाती है और प्राण तथा मन स्तंभित-से हो जाते है, तब साधक इस चेतन शब्द को सुनने के अधिकारी होते है। षण्मुखी मुद्रा द्वारा कृत्रिम उपाय से नाद के अनुसन्धान की चेष्टा की जाती है। नोदन अथवा अभिधातजनित शब्द को अनाहद नाद में लीन न कर सकने पर मन्त्र अक्षरसमष्टि ही रह जाता है। उसका सामर्थ्य और प्रकाश अनुभव गोचर नहीं होता। इडा-पिंगलाकी गति रूककर प्राण और मन के सुषुम्ना के अन्दर प्रविष्ट होने पर यह नित्य सारस्वत स्रोत अनुभूत होता है। यहीं क्रमशः साधक को आज्ञा चक्र में ले जाता है और वहाँ से बिन्दु स्थान भेदकर क्रमशः सहस्त्रर के केन्द्र में महाबिन्दु पर्यन्त पहुँचा देता है। हंस-मंत्र, जिसका जीव निरन्तर श्वास-प्रश्वास के साथ जप करता है, गुरू कृपा से प्राण विपरीत भावापन्न अवस्था में सोऽहं-मंत्र रूप में परिणत हो जाता है।

महर्षि पंतजलि का योगसूत्र सांख्य दर्शन के व्यावहारिक एवं प्रायोगिक पक्ष को प्रस्तुत करता है। विवेक बुद्धि को कैसे प्राप्त किया जाए? यह योग दर्शन से ज्ञात होता है। योगसूत्र चार खण्ड़ों में बंटा हुआ है। इसमें समाधि, साधन, विभूति और कैवल्य नामक चार पाद और कुल एक सौ पच्चासी सूत्र हैं। प्रथम समाधि पाद में योग के लक्षण ओर स्वरूप का वर्णन हैं द्वितीय साधन में दुःख के कारण और निवारण के उपाय पर प्रकाश डाला गया है। तृतीय विभूति पाद में धारणा, ध्यान और समधि संयम और उससे परिणत होने वाली सिद्धियों का वर्णन हैं अन्तिम पाद कैवल्य पाद है। इसमें चित के स्वरूप का प्रतिपादन है।

पांतञ्जल योग दर्शन

600 ईसा पूर्व के युग को आगम युग या श्रद्धा का युग कहा जाता है। उस समय भगवान् महावीर और महात्मा बुद्ध जन-जागरण में लगे हुए थे। उन्होंने शांति और दुःख से मुक्ति के लिए सदाचार, योग, ध्यान और समाधिक की बात लोगों तक पहुँचाई। जन भाषा में प्रवचन किया। इसके बाद लोक-साहित्य पुराणों का निर्माण काल है, उसमें भी योग की यंत्र-तंत्र

प्रचुर सामग्री विस्तार से प्राप्त होती है। इसके बाद दर्शन युग का प्रारम्भ होता है। इस युग में दार्शनिक विचारों को व्यवस्थित एवं तर्कसंगत ढंग से श्रृंखलाबद्ध रूप से सूत्र शैली में प्रस्तुत किया जाने लगा। दर्शन युग में ध्यान, समाधि, तप एवं योग को भी व्यवस्थित ढंग से प्रस्तुत करने की अपेक्षा रही होगी। उस अपेक्षा की पूर्ति महर्षि पंतजलि के योग-दर्शन से होती है।

पांतञ्जल योग (200 ईसा-पूर्व)

भारतीय अधयात्म व योग में सर्वाधिक लोकप्रिय ग्रंथ महर्षि पंतजलि का योग सूत्र है। उससे पूर्व की योग परम्पराओं एवं आध्यात्मिक साधनाओं का उल्लेख एवं विवेचन वेद, उपनिषद्, जैन, बौद्ध, महाभरत, गीता एवं पुराणों में उपलब्ध होता है, पर उनका संक्षिप्त, सूत्रबद्ध, व्यवस्थित, तार्किक एवं दार्शनिक ढंग से विवेचन महर्षि पंतजलि के योग सूत्र से मिलता है। उन्होंने अपने योग सूत्र में अतीत की साधना पद्धतियों एवं वैचारिक सरणियों का सुन्दर समाहार एवं समन्वय किया। पंतजलि केवल थोड़े से शब्दों के माध्यम से पूरे योग मार्ग का विकास दर्शन करवा देते है।

दार्शनिक आधार

पंतजलि के योग सूत्र का दार्शनिक आधार सांख्य सिद्धान्त है। सांख्यकार के जीवन और जगत की व्याख्या का दृष्टिकोण आत्मनिष्ठा रहा है। उनके दृष्टिकोण में जीवन और जगत् का विस्तार पुरूष के सम्पर्क में प्रकृति के आने से होता है। तदन्तर उत्पन्न 23 तत्त्वों के सांख्यकार जीवन और जगत् की व्याख्या करते है। इस विस्तार का मूल कारण अविद्या या विवेक ख्याति का अभाव है। चित्त की अस्थिरता के कारण प्रज्ञा या विवेक-ख्याति सम्भव नहीं हो पाती। विवेक ख्याति होने से प्रकृति और उसके सारे विकारों से पुरूष अलग हो जाता है। इस अवस्था में पुरूष दुःखमय जगत् से दूर हो जाता है। सांख्य दर्शन कैवल्य की साक्षात् प्राप्ति कराने वाले अपरोक्षानुभव की सिद्धि के उपाय के बारे में प्रायः मौन है।

इसके विपरीत योग का मुख्य विषय ही इस उपाय के बारे में विस्तार से विचार करना है। सांख्य के मूल ग्रंथ (कारिका 6) में केवल इतना उल्लेख मिलता है कि प्रकृति और पुरूष के परस्पर, भिन्न होने का ध्यान करना चाहिए। योग-दर्शन प्रज्ञा व विवेक ख्याति की प्राप्ति के लिए चित्त की स्थिरता पर ध्यान केन्द्रित होता है।

सांख्य एवं योग

इन दोनों में अन्तर बहुत थोड़ा है। इनके दो प्रधान मतभेद है- पहला तो यह कि पंतजलि आदि गुरू के रूप में एक सगुण ईश्वर की सत्ता स्वीकार करते है जबकि सांख्य का ईश्वर लगभग पूर्णता प्राप्त एक व्यक्ति मात्र है (और दूसरा यह कि योगीगण आत्मा या पुरूष के समान मन को भी सर्वव्यापी मानते है (पर सांख्य मतवाले नहीं। फिर भी सांख्य और योग में तात्विक एकता हैं सांख्य यदि समष्टि का निरूपण करता है तो योग व्यक्ति का। दोनों एक दूसरे के पूरक है। सांख्य जिन सिद्धान्तों का निरूपण करता है योग उन्हें व्यावहारिक रूप प्रदान करता है।

सांख्य दर्शन में 25 तत्त्वों का निरूपण है। इन्हीं 25 तत्त्वों से समस्त सृष्टि की रचना की गई है। अतः परम तत्त्व की प्राप्ति के लिए इन तत्त्वों का ज्ञान अपेक्षित माना गया है।

योग के अंग

महर्षि पातंजलि ने योग के निम्नलिखित आठ अंग बताए हैं:-

1. यमः इसमें मानव चित से सम्बन्धित अनुशासन के साधन सम्मिलित हैं। इसका अभ्यासी अहिंसा, सत्य, चोरी न करना, पवित्रता और त्याग सीखता है।

2. धारणाः चित को किसी इच्छित विषय से लगाना ही धारणा कहलाती है। एकाग्रता से मानव चित में एक महान शक्ति पैदा होती है जिस से इच्छा पूर्ण होती है।

3. समाधिः इस में मानव आत्मा परमात्मा में लीन हो जाता है। यह योग का अंतिम चरण माना गया हैं।

4. ध्यानः यह धारणा से उच्चावस्था है इस में मानव लौकिक झंझटों से ऊपर उठ कर स्वयं अन्तर्ध्यान हो जाता है।

5. प्रत्याहारः चित एवं इंद्रियों को उन से सम्बन्धित क्रिया को हटा कर परमात्मा की ओर लगाना ही प्रत्याहार कहलाता है।

6. आसनः मानव देह को अधिक-से-अधिक समय के लिए किसी विशेष स्थिति में रखना उदाहरणतः इस में बैठने की स्थिति में धड़ को पश्वों की ओर खींचना अर्द्धमत्सयेन्द्रासन कहलाता हैं।

7. प्राणायामः बैठकर निश्चित अवधि के लिए बारी-बारी श्वास को अन्दर की ओर खींचना ठोढ़ी की मदद से श्वास को रोकना और बाहर निकालना क्रिया ही प्राणायाम कहलाती है।

8. नियमः इस में मानव देह से सम्बधित अनुशासन के साधन सम्मिलित हैं अर्थात देह व मन की शुद्धि सन्तोष, दृढ़ता और ईश्वरध ना देह की स्वच्छता हेतु नेति, धोति और बस्ति का प्रयोग किया जाता हैं।

योगदर्शन में कुण्डली उन आध्यात्मिक शब्दों में से एक है जिसकी प्रायः गलत व्याख्या की जाती है और दुरूपयोग भी। यह सामान्य रूप में अलौकिक अथवा ब्रह्म-सम्बन्धी शक्तियाँ सूचित करता है। योग के मार्ग पर चलने के लिए बहुत सारे वर्षों के लिए शक्तिदायक तथा संकटमय संयम में रहने की आवश्यकता है। कुण्डलिनी का आरम्भ देखने के लिए हमें प्राचीन भूत तक जाना पड़ेगा। कुण्डलिनी एक ऐसा विषय है जो चमत्कारों से पूर्ण है परन्तु वे चमत्कार रहस्यमय संसार के सरकस के जैसे शक्ति प्रदर्शन नहीं है। कुण्डलिनी के चमत्कारों में यह देखना आवश्यक नहीं कि कोई चीज क्या हो सकती है। परन्तु यह देखना आवश्यक नहीं कि कोई चीज क्या है। कुण्डलिनी का अर्थ है लपेटा हुआ जैसा कि एक सांप नींद में अपने आपको लपेटता है। कुण्डलिनी शरीर की उन गुप्त शक्तियों

की ओर संकेत करता है। जो शक्तियां पीठ की रीढ़ में लपेटी हुई अवस्था में हैं। कुण्डलिनी को जागृत करने की विधियां संयुक्त तथा भयावह है और यह काम किसी गुरू या विशेषज्ञ के निरीक्षण में ही किया जा सकता है। प्राचीन भारतीय देवता सम्बन्धी मन्दिर विभिन्न प्रकारों, आकृतियां तथा चिन्हों से पूर्ण है। इनमें से कुछ चिन्हों तथा आकृतियों को आधुनिक योगियों के मन में कई सिद्धान्तों तथा प्रश्नो को जन्म दिया है। कहा जाता है कि सत्य या जीवन को तीन भागों में बांटा जा सकता है- उत्पत्ति, पालन और विनाश। वस्तुएं उतपन्न होती है, कुछ समय के लिए रहती हैं और तब या तो नष्ट हो जाती हैं या रूप परिवर्तन करती है। हिन्दुओं के मन्दिरों में इन भागों को ब्रह्म, विष्णु तथा शिव के रूप में जीवधारी ठहराया गया है। ब्रह्म जीवन की उत्पत्ति करता है, विष्णु उसका पालन और शिवा उसका नाश। हाल में धर्मों में यह त्रिमूर्ति विभिन्न आकृतियों तथा भाषाओं में दिखाई गई है। अन्तिम शक्ति अथवा यथार्थ को लक्ष्य कहा गया है। अनन्त आत्मा को आत्मन् कहा गया है और स्थूल विश्व को प्रकृति कहा गया है। सुरमय धड़कन जो जीवन का निर्माण करती है, प्राण कहलाते है और स्थूल शरीर से जिस प्रकार का जीवन प्रकट किया जाता है उसी प्रकार कुण्डलिनी बन जाती है कुछ योगियों का विचार है कि कुण्डलिनी को देवी से सम्बन्धित रखा जाए। वह उन प्राणों की साथी है जिनसे उसको लम्बी नींद के उपरान्त जागृत होना है। पूर्वी तथा पश्चिमी दोनों दिशाओं के वैज्ञानिकों ने बतलाया है कि प्राण और कुण्डलिनी दोनों प्राकृतिक शक्तियाँ मानी जा सकती है। कुण्डलिनी बिजली की शक्ति जैसी है। कुण्डलिनी किसी अंग के स्थान पर शक्ति का प्रतिनिधित्व करती है। यद्यपि यह शक्ति शारीरिक अंगों से ही नियंत्रित है। सांप का चिन्ह कुण्डलिनी का प्रतिनिधित्व करता है। मानव शरीर में कुण्डलिनी पीठ की रीढ़ के आरम्भ में लपेटी हुई अवस्था में हुआ करती है। उसकों यदि मनुष्य के जीवन में स्वर्ग जैसी प्रसन्नता का कारण बनाना है तो उसको फिर से जगाना है। कुण्डलिनी का प्रयोग उस परम शक्ति के लिए होता है जिससे मनुष्य वंचित हुआ होता है। और इस प्रकार

सकता है। परन्तु कभी-कभी तीर्थ-यात्री कुण्डलिनी के मार्ग पर यात्रा करते हुए नए चमत्कारों से आकर्षित हो जाता है और वह आध्यात्मिक उद्देश्य को भूल जाता है। हम कई ऐसे लोगों को जानते है जो कुछ आश्रमों से सम्बन्धित हैं जो ब्रह्म-सम्बन्धी शक्तियों के प्रलोभन में आकर इधर-उधर भटक गए और इस प्रकार उनको दु:खान्त दण्ड भोगना पड़ा। एक युवक कुण्डलिनी की बताई गई विधियों से कई वर्ष अभ्यास करके पागल हुआ और उसको बहुत-ही बुरे और करूणाजनक दिन देखने पड़े। दूसरा व्यक्ति जो एक वीर युवक और शरीर से बहुत-ही शक्तिशाली था, कुण्डलिनी चक्र से सम्बन्धित प्राणायाम छ: महीने करता रहा और उसके पश्चात् उसकी नाड़ियों की शक्ति नष्ट हुई और उसकी कहानी भी एक दु:खी की कहानी बन गई। उसने बराबर एक वर्ष तपस्या और प्राणायाम का अभ्यास किया। वह इस अभ्यास को कई ध्वंसों तथा अवरोधों के कारण जारी न रख सका। एक दिन उसे रक्त की उल्टी कर दी इस प्रकार ट्यूबरक्लोसिज् का शिकार हुआ। उसको डर के मारे सच्चे आध्यात्मिक मार्ग का अनुसरण छोड़ना पड़ा। किसी वृद्ध व्यक्ति को किसी ने प्राणायाम और तपस्या करने का परामर्श दिया। एक आज्ञाकारी तथा सच्चे शिष्य की तरह महाशय ने पूरे एक वर्ष के लिए उन सभी विधियों का अभ्यास किया जो उसके शिक्षक ने उसको बताई। परिणाम यह हुआ कि महाशय का शरीर अंगीठी हुआ और इसी प्रकार नष्ट हुआ। इसका अर्थ यह नहीं कि कुण्डलिनी की तीर्थ-यात्रा नहीं की जा सकती या नहीं करनी चाहिए। बात केवल इतनी-सी है कि यह आध्यात्मिक कार्य अच्छी प्रकार किसी गुणशाली तथा कुशल गुरू के मार्ग-दर्शन के अनुसार करना चाहिए। जिसका मन स्वच्छ होता है उसके लिए कुण्डलिनी का मार्ग वास्तविक मार्ग होता है और वह ब्रह्म-सम्बन्धी शक्तियों के प्रलोभन से दूर रहता है। योग में आपत्तियाँ केवल उन लोगों को आती है जो सनसनी खोज बातों के शिकारी होते है। प्रसिद्ध कहावत है जब चेला तैयार होता है तो गुरू उपस्थित हो जाता है। का अनर्थ किया गया है। यह कहावत अच्छी प्रकार समझी जा सकती है यदि इसके साथ इसका सहायक अंग शिष्य को वहीं गुरू मिलता है जो उसके योग्य होता है, हो।

दोनों कहावतें सच्ची हैं। परन्तु वह व्यक्ति जो पहली कहावत दूसरी कहावत के बिना उद्धृत करता है, चेले के साथ अन्याय करता है। एक अच्छा शिक्षक मिलना भी एक आसान बात नहीं हैं। भारत में आश्रमों, स्कूलों, संस्थानों तथा क्लबों की कमी नहीं है। किसी भी व्यक्ति को योग से सम्बन्धित भाषण तथा व्यावहारिक प्रदर्शन मिल सकता है। इन आश्रमों तथा स्कूलों के सम्बन्ध में बड़े आराम के साथ कहा जा सकता है कि जब एक विशेष शिष्य तैयार होता हे तो विशेष गुरू भी तैयार हो जाता है। नि:सन्देह यह बात सभी आश्रमों तथा स्कूलों में सच नहीं है। कुछ संस्थान नि:सन्देह ऐसे हैं जो वास्तविक रूप में योग की सेवा करते है।

अष्टांग योग

योग की पूर्ण साधना के लिए योग के आठ अंगों की पालना की जानी आवश्यक है। अनेक व्यक्ति केवल नियमों का पालन करते हैं। यमों का नहीं, उनसे नियमों का पालन भी अच्छी प्रकार नहीं हो सकता।

"बुद्धिमान पुरूष नित्य निरन्तर यमों का पालन करता हुआ ही नियमों का पालन करें, केवल नियमों का नही: जो यमों का पालन न करके केवल नियमो का पालन करता है वह साधन पथ से गिर जाता है।"

योग की साधना के लिए आठ अंगों का क्रमश: अभ्यास आवश्यक है। ये आठ निम्न है:- 1. यम 2. नियम 3. आसन 4. प्राणयाम 5. प्रत्याहार 6. धारणा 7. ध्यान तथा 8. समाधि

इन अष्टांगों में से प्रथम दो प्रधानता: आचार सम्बन्धित अभ्यास है, उसके बाद दो शरीर को भौतिक रूप से योगाभ्यास योग्य बनाने के उपाय है। पांचवां प्रत्याहार प्रधानत: इन्द्रिय निग्रह का उपाय है और उसके बाद की प्रक्रियाएं पूर्ण रूप से मानसिक तथा आध्यात्मिक चिंयमन की साधनाएं है। पांतजलि ने यम, नियम, आसन, प्राणायाम तथा प्रत्याहार को बहिरंग योग कहा है और इसके विपरीत धारणा ध्यान और समाधि को अन्तरंग योग कहा हैं। इन तीनों को संयुक्त रूप से संयम कहते हैं।

यम अहिंसा, सत्य, अस्तेय ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह इन पांचों का नाम यम है।

यम पांतजल अष्टांग योग का प्रथम अंग है। कुछ उपनिषदों में दशविधयमों का उल्लेख हैं

1. किसी भूतप्रार्ण को या अपने को भी मन, वाणी, शरीर द्वारा किभी किसी प्रकार किंचित मात्र भी कष्ट न पहुंचाने का नाम अहिंसा है।

2. अन्त:करण और इन्द्रियों द्वारा जैसा निश्चय किया गया हित की भावना से, कपट रहित प्रिय शब्दों में वैसा का वैसा ही प्रकट करने का नाम सत्य है।

3. मन, वाणी, शरीर द्वारा किसी प्रकार के भी किसी के स्वत्य को न चुराना न लेना और न छीनना अस्तेप है।

4. मन इन्द्रियां और शरीर द्वारा होने वाले काम, विकार के सर्वथा अभाव का नाम ब्रह्मचर्य हैं।

5. शब्द स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, आदि किसी भी भाग सामग्री का संग्रह न करना अपरिग्रह हैं

इन पांचों यमों का सब जाति सब देश और सब काल में पालन होने से एवं किसी भी निमित से इनके विपरीत हिंसादि दोषों के न घटने से इनकी संज्ञा महाव्रत हो जाती है।

नियम: पवित्रता संतोष तप स्वाध्याय और ईश्वर-प्रणिधान ये पांच नियम है।

1. पवित्रता दो प्रकार की होती है बाहरी और भीतरी। जल-मिट्टी से शरीर की, स्वार्थ त्यागने से व्यवहार और आचरण की तथा न्यायोपार्जित द्रव्य से प्राप्त सात्विक पदार्थों के पवित्रतापूर्वक सेवन से आहार की यह बाहरी पवित्रता है। अहंता, ममता, रोग, द्वेष, ईर्ष्या, भय और काम-क्रोधादि भीतरी दुर्गुणों के त्याग से भीतरी पवित्रता होती है।

2. सुख-दुख, लाभ-हानि, यश-अपयश, सिद्धि-असिद्धि, अनुकूलता-प्रतिकूलता आदि के प्राप्त होने पर सदा-सर्वदा सन्तुष्ट-प्रसन्नचित

रहने का नाम सन्तोष है।

3. मन और इन्द्रियों के संयम रूप धर्म पालन करने के लिये कष्ट सहने का और तितिक्षा एवं व्रतदिका नाम तप है।

4. कल्याणप्रद शास्त्रों का अध्ययन और इष्टदेव के नाम का जप तथा स्तोत्रादि पठन-पाठन एवं गुणानुवाद करने का नाम स्वाध्याय है।

5. ईश्वर की भक्ति अर्थात मन-वाणी और शरीर-द्वारा ईश्वर के लिए ईश्वर के अनुकूल ही चेष्टा करने का नाम ईश्वरप्रणिधान है।

उपर्युक्त यम और नियमों के पालन में वाधक हिंसा आदि विपरीत वृतियों के नाश के लिये महर्षि पांतजलि उपाय बतलाते हैं।

हिंसादि दोष अनन्त दुख और अनन्त अज्ञानरूप फल के देने वाले है: इस प्रकार की बारम्बार भावना करने का नाम प्रतिपक्ष भावना है।

हिंसा असत्य चोरी, व्यभिचार, भोगपदार्थों का संग्रह अपवित्रता और असन्तोष की वृति एवं तप स्वाध्याय तथा ईश्वर प्रणिधान के विरोध की वृति इनका नाम विर्तक हैं।

उपर्युक्त हिंसादि को पुन: वाणी शरीर द्वारा स्वयं करने का नाम कृत दूसरों के द्वारा करवाने का नाम कारित और अन्यों द्वारा किये जाने वाले हिंसादि दोषों के समर्थन अनुमोदन या उनमें सम्मति का नाम अनुमोदित हैं उपयुक्त तीनों प्रकार के हिंसादि समस्त दोषों के होने में लोभ, क्रोध, और मोह ये तीनों हेतु है। तीनों प्रकार के दोष, तीन हेतुओं से करने वाले होने के कारण नौ तरह के हो जाते हैं। आसक्ति या कामना से उत्पन्न होने वाले हिंसा असत्यादि दोषों में लोभ, ईर्ष्या, द्वेष, वैरादि से उत्पन्न होने वाले दोषों, में मोह हेतु होता है। ये नौ प्रकार के दोष मृदु मध्य और अधिमात्र भेद से सताईस प्रकार के हो जाते हैं। अत्यन्त अल्प का नाम मृदु, बीच की मात्रा मध्य और अधिक मात्रा में यानी पूर्ण रूप से होने वाले हिंसादि दोष का स्वरूप अधिमात्र क़हा जाता है।

यह नियम पालन करने पर साधक को निम्न फल प्राप्त होते है:

1. अहिंसा रूपी महाव्रत के पूर्ण पालन होने पर उस योगी के समीप

दूसरे प्राणी भी वैर का अर्थात हिंसावृति का त्याग कर देते हैं।

2. सत्य के अच्छी प्रकार पालन से उस सत्यवादी की वाणी सफल हो जाती है, अथवा वह जो कुछ कहता है वही सत्य हो जाता है।

3. चोरी की वृति का सर्वथा त्याग हो जाने पर उसे सब रत्नों की उपस्थिति हो जाती है, अर्थात् समस्त रत्न उसके दृष्टिगोचर हो जाते हैं और समस्त जनता उसका पूर्णरूप से विश्वास करने लग जाती है।

4. ब्रह्मचर्य का अच्छी प्रकार से पालन होने पर शरीर मन और इन्द्रियों में अत्यन्त सामर्थ्य की प्राप्ति हो जाती है।

5. अपरिग्रह के स्थिर होने पर यानी विषय-भोग पदार्थों के संग्रह का भली-भांति त्याग होने पर, वैराग्य और उपरति होकर मन का संयम होता है और मन:संयम से भूत भविष्यत् वर्तमान जन्मों का और उनके कारणों का ज्ञान हो जाता है।

6. पूर्णतया बाहर की पवित्रता से अपने अंगों में घृणा और अन्य मनुष्यों के संसर्ग का अभाव हो जाता है। क्योंकि दूसरे शरीरों में अरूचि हो जाने से उनका संसर्ग नहीं किया जाता।

7. अन्त:करण की पवित्रता से मन की प्रसन्नता और एकाग्रस्ता, इन्द्रियों पर विजय, और आत्मा के साक्षत् दर्शन करने की योग्यता प्राप्त हो जाती है।

8. संतोष से सर्वोत्तम सुख प्राप्ति होती है।

9. तप से मलदोष अर्थात पापों का नाश हो जाने पर, अणिमादि अष्टकाया की सिद्धियाँ और दूसरे देखना-सुनना आदि इन्द्रियों की सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती है।

10. अपने इष्टदेव के नाम का जप एवं स्वरूप, गुण, प्रभाव और महिमा आदि के पठन, पाठन, श्रवण, मननरूप, स्वाध्याय से इष्टदेव का साक्षात् दर्शन हो जाता हैं।

11. ईश्वरप्राणिधान से समाधि की सिद्धि होती हैं।

पातञ्जल योग सूत्रों में जिस विषय का मुख्यतया प्रतिपादन किया गया है वह है 'चित्तवृत्तिनिरोध' अर्थात् अन्य विषयों से चित्त को खींचकर एक

ही विषय में एकाग्र करना। मन को एकाग्र करने की शक्ति निरन्तर अभ्यास और सांसारिक भोगों से मुँह मोड़ने से प्राप्त होती है। सूत्र 23 और 39 में पांतञ्जलि मुनि कहते हैं कि ईश्वर प्रणिधान से अथवा जिस विषय में अपनी रूचि हो उसी पर ध्यान जमाने से ('यथाभिमतध्यानाद्वा') चित्त को स्थिर करने की शक्ति प्राप्त होती है। ईश्वर का इस रूप में ध्यान किया जा सकता है कि वह सर्वज्ञा सर्वशक्तिमान् सर्वव्यापी सगुण परमेश्वर है अथवा इस रूप में भी ध्यान किया जा सकता है कि वह निर्गुण निरंजन परब्रह्म है जिनमें प्रेम, द्वेष, दया, सृष्टि, स्थिति, संहार आदि कोई गुण नहीं है। योग दर्शन ईश्वर के विषय में इतना-ही कहता है कि वह कोई ऐसे पुरूष हैं जो क्लैश, कर्म, विपाक और आशय से नित्यमुक्त है। (यो॰सू॰1/24) ईश्वर को प्रसन्न करने के लिये कोई यज्ञ-याग या तप-अनुष्ठान को सूत्रों में नहीं बताया गया है। यदि कोई धर्मसम्प्रदाय अपने अनुयायियों को ऐसी कोई बात बतलाता है तो योग सूत्र में उसका कोई विरोध भी नहीं है। पर योग सूत्र यह अवश्य कहते है कि तुम जो कुछ करो उसे सच्चे हृदय से और तन्मय होकर करो। योग सूत्र तथा तथा अद्धैतप्रतिपादक उपनिषद् ही ऐसे ग्रन्थ हैं जिनमें कोई साम्प्रदायिकपन नहीं हैं। इसलिये कोई ईसाई हो, मुसलमान हो, जैन हो, बौद्ध हो या किसी भी मत का मानने वाला हो, इसकी कोई परवाह नहीं। यदि वह अपने धर्म का पालन करने में यदि योग सूत्रों की शिक्षा से काम लेता है तो इसमें उसका बड़ा लाभ है। यही नहीं, बल्कि योग शिक्षा से अर्थकारी विद्या के अध्ययन में, कृषि और उद्योग धन्धों में, सामरिक शिक्षा में, युद्ध, व्यापार और राज्यशासन में भी काम लिया जाये तो इन क्षेत्रों में भी सफलता निश्चित है। यहीं तो बात है जिससे योग मन को हर लेता है।

इसमें सन्देह नहीं कि योग सूत्रों में जो लक्ष्य सामने रखा गया है वह द्रष्टाका अर्थात् आत्मा का अपने स्वरूप में अवस्थापन है। इसका यह मतलब है कि योग सूत्रों के सिद्धान्तों का निरन्तर आचरण करने से चित्त सांसारिक भोगों से विरत होकर निज स्वरूप में स्थिर हो जाता है।

5

शारीरिक शिक्षा तथा खेलों में योग की आवश्यकता तथा महत्त्व

(Need and Importance of Yoga in Physical Education and Sports)

योग एक मानसशास्त्र है जिसमें मन को संयत करना और पाशविक वृत्तियों से खींचना सिखाया जाता है। जीवन की सफलता, किसी भी क्षेत्र में, संयत मन पर ही निर्भर करती है। मनः संयम का अभिप्राय है किसी एक समय मे किसी एक ही वस्तु पर चित्त का एकाग्र होना। दीर्घकाल तक अभ्यास करने से मन का ऐसा स्वभाव बन जाता है। किसी विषय को खींचते या किसी काम को करते हुए मन उस पर एकाग्र रहे, ऐसा अभ्यास करना आरम्भ में तो बड़ा कठिन होता है, पर जब अभ्यास करते-करते वैसा स्वभाव बन जाता है तब उससे बड़ा सुख प्राप्त होता है।

ठीक-ठीक और सुसंगत रीति से न सोच सकना या अच्छे ढंग से कोई काम न कर सकना, विचार और काम में उनकी चंचलता से ही होता है। विद्यार्थी जानते हैं कि मन स्थिर न हो तो कोई बात सीखी नहीं जा सकती, और मजदूर जानते है कि अस्थिर मन से कोई काम नहीं हो सकता। बहुत से विद्यार्थी तो प्रतिवर्ष विश्वविद्यालय की परक्षाओं में फेल हुआ करते है, इसका कारण यही है कि अध्ययन में मन को एकाग्र करने की शक्ति ही उनमें नहीं होती। यही बात सांसारिक विषयों में होने वाली विफलताओं की है। जब तक मनुष्य अपने विचारणीय विषय या करणीय कार्य में तन्मय नहीं होता तब तक उसे उस में सफलता मिल ही नहीं सकती।

मन के इस विशिष्ट धर्म से योग शास्त्र के प्रणेता ने धार्मिक क्षेत्र में भी काम लिया है। योग स्वयं कोई धर्म सम्प्रदाय या धर्म विषयक तत्त्वज्ञान

नहीं है, प्रत्युत यह संसार के सभी धर्मों और तत्त्व ज्ञानी का सहायक है। इसे किसी धार्मिक सिद्धान्त का प्रचार नहीं करना है। संसार के सभी धर्मवालों को इसके द्वारा यह शिक्षा मिलती है कि किस प्रकार अपनी-अपनी धर्म विषयक बातों में मन को एकाग्र करने से शान्ति और आनन्द प्राप्त होता है।

योग शरीर का अरोग्य तथा शक्तिशाली बनाता है। योग व्यक्ति को सुयोग्य, गुणी तथा अरोग्य बनाता है। यह हमारे शरीर में शक्ति उत्पन्न करता है। योग केवल रोगी व्यक्तियों के लिए ही लाभकारी नहीं अपितु स्वस्थ व्यक्ति भी इसके अभ्यास से लाभ उठा सकते है। विशेष रूप से 40 साल के ऊपर वाले व्यक्तियों के लिए योगाभ्यास अत्यन्त उपयोगी है।

योगाभ्यास द्वारा शरीर के सारे अंग अच्छी प्रकार से काम करने लग पड़ते हैं। योगाभ्यास द्वारा मांसपेशियाँ मज़बूत होती है, और मानसिक सन्तुलन बढ़ाता है। योग का महत्त्व इस बात से भी है कि देश-विदेशों में भी इसकी लोकप्रियता बढ़ रही है। देश-विदेश के डॉक्टरों तथा शारीरिक शिक्षा के अध्यापकों ने इसकी बहुत प्रशंसा की है। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि योग का आधुनिक मानवीय जीवन में विशेष महत्त्व है।

1. बुद्धि का तेज़ होना- प्राणायाम करने से स्वच्छ वायु फेफड़ों में पहुंचती है। प्राणायाम करने वाले व्यक्ति का दिमाग तीव्र काम करने लगता है। शरीर और मन में चुस्ती-फुर्ती आ जाती है। शीर्षासन भी बुद्धि को तीव्र करने तथा स्मरण शक्ति का बढ़ाने का काम करता है।

2. मानसिक अनुशासन- यम का पालन करने वाला व्यक्ति अहिंसा का पालन करता है और चोरी नहीं करता। यम व नियम का पालन करने वाला व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं, अनुचित इच्छाओं और मानवीय भावनाओं संवेग, विचार आदि पर नियन्त्रण रखता है।

3. शरीर में लय लाना- श्वास पर काबू रखने से सभी क्रियाएं धीरे-धीरे करने की आदत पड़ जाती है। शरीर में लय आ जाती है तथा

व्यक्ति शारीरिक शक्ति को संयम से खर्च कर सकता है।

4. मानसिक संतुलन व खुशी प्राप्त करने का उचित साधन- पद्मासन में जब योगी बैठता है तो चेहरे का नूर उसकी आन्तरिक शांति तथा खुशी प्रकट करता है।

5. थकावट दूर करके तरो-ताज़ा होना- जीवन के झमेलों को पूरा करते हुए यदि आप शारीरिक और मानसिक रूप से थक जाएं तो शव आसन करने से पुनः तरो ताज़ा हो सकते है।

6. रोगों की रोकथाम तथा उपचार- प्राणायाम करने से फेफड़ों के रोग नहीं लगते। मतशेदर आसन तथा वक्र आसन से मधुमेह का रोग ठीक होता है।

7. शरीर को अच्छी स्थिति में रखना- ये अच्छे व्यक्तित्व का गुण है। विक्रम आसन करने से घुटने आपस में नहीं टकराते। पदम आसन करने से न तो कन्धों में कुबड़ पड़ता है और न ही पेट आगे की ओर ढ़िलकता है।

8. शारीरिक प्रणालियों का उचित कार्य- आसन करने से शरीर की सभी प्रणालियां ठीक काम करना आरम्भ कर देती हैं क्योंकि शरीर के सारे अंग आसन करने से मज़बूत हो जाते हैं। प्राणायाम से श्वास प्रणाली का सारा काम ठीक हो जाता है। जैसे फेफेड़ों की कसरत होती है, पट्ठे मज़बूत होते हैं तथा अधिक-से-अधिक हवा फेफड़ों के अन्दर जाती है।

9. शारीरिक अंगों की मज़बूती और उनमें लचक लाना- योग द्वारा शारीरिक अंग सुदृढ़ होते हैं तथा आसनों द्वारा जोड़ों तथा हड्डियों का विकास भी होता है। रक्त चाप तीव्र हो जाता है। धनुर्आसन तथा हल आसन रीढ़ की लचक बढ़ाने में सहायक होते हैं जिससे मनुष्य में शीघ्र बुढ़ापा नहीं आता। मयूर आसन से कलाई मज़बूत होती है। इस प्रकार की क्रियाएं करने से शरीर में मज़बूती तथा अंगों में लचक आती है।

10. शरीर की आन्तरिक सफाई- योगाभ्यास करने से शरीर स्वस्थ रहता है एवं इसकी सफाई हो जाती है। जैसे कि धोती क्रिया से अमाशय की सफाई होती है और बस्ती क्रिया से आंतड़ियां साफ होती हैं। प्रत्याहार से दृढ़ता बढ़ती है।

12. मनुष्य की शारीरिक तथा मानसिक मूलभूत शक्तियों का विकास- सभी आसन व्यक्ति की बुनियादी शक्तियों का विकास करते हैं। योग, नियम तथा आसन व्यक्ति के शारीरिक तथा मानसिक विकास में सहायक होते हैं। आसनों द्वारा शारीरिक क्रियाएं करने से मानव के शरीर के सभी अंग हरकत में आ जाते हैं। इस प्रकार उनका विकास होता है। शारीरिक विकास के साथ मानसिक विकास भी होता है। जैसे प्राणायाम द्वारा फेफड़ों के रोग दूर होते हैं।

उपरोक्त विवरण से यह विचार पूर्ण रूप से स्पष्ट है कि योग-ज्ञान मनुष्य के व्यक्तित्व के समपूर्ण विकास के लिए विशेष महत्त्व रखता है।

आधुनिक युग में योग का प्रभाव

प्राचीन काल में केवल ऋषि-मुनि ही योग के बारे में जानते थे। परन्तु आधुनिक युग में लगभग प्रत्येक व्यक्ति को योग विज्ञान अपनी ओर आकर्षित कर रहा है। लेकिन लोग योग का प्रयोग केवल अपने शरीर को सुन्दर बनाने के लिए करते हैं। आज का युग मशीनी युग है। जहां सभी कार्य मशीनों द्वारा संभव हैं। अतः मनुष्य को शारीरिक श्रम कम तथा मानसिक श्रम अधिक करना पड़ता है। जिससे उसका शारीरिक सन्तुलन बिगड़ जाता है और वह कई बीमारियों से ग्रस्त हो जाता है जैसे– रक्तचाप, मधुमेह, कब्ज, हृदयरोग, जोड़ों का दर्द, गठिया, मोटापा, दिल घबराना, कमर दर्द, सरवाइकल, अजीर्ण, पैरों का दर्द, हाथ-पैर सुन होना, अनिमीया आदि।

इन सभी रोगों का उपचार योग द्वारा संभव है। आधुनिक युग में इन रोगों से मुक्ति पाने के लिए मनुष्य को योगासनों का सहारा लेना ही पड़ेगा। योग द्वारा शरीर के प्रत्येक अंग से काम लिया जाता है। शरीर के अंगों तथा उनकी बनावट को ध्यान में रख कर ही अनेक योगासन बनाये गए हैं।

6

अष्टांग योग- यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान तथा समाधि

(The Astanga Yoga: Yama, Niyama, Asana, Pranayama, Pratyahara, Dharana, Dhyana and Samadhi)

मनुष्य अपने शरीर द्वारा ही सभी क्रिया कलापों को पूर्ण करता है। तन को स्वस्थ, निरोगी, स्वच्छ और निर्मल रखते हुए वह आध्यात्मिक मार्ग में आगे बढ़ सकता है तथा आध्यात्मिक उन्नति कर सकता है। अष्टांग योग में योग के आठ अंगों का वर्णन किया गया है। जिससे परमात्मा प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त होता है तथा चित्त की वृत्तियों का निरोध हो जाता है। योग के आठ अंग निम्न प्रकार से हैं–

1. यम
2. नियम
3. आसन
4. प्राणायाम
5. प्रत्याहार
6. धारणा
7. ध्यान
8. समाधि

पहले चार अर्थात् यम, नियम, आसन व प्राणायाम की साधना का उल्लेख हठयोग में भी समान रूप से मिलता है। यम-नियमों में सदाचार

संबंधी सारे नियमों का समावेश हो गया है। आगे के साधनों का अभ्यास करने के लिए यह आवश्यक है कि यम-नियम का पूरी तरह से पालन किया जाए। बुद्ध, महावीर, ईसा तथा संसार के अन्यान्य सभी धर्माचार्यों के प्रधान उपदेश तथा मूल सिद्धान्त यम और नियम के अन्तर्गत आ जाते हैं। योग के सर्वोच्च आदर्श परमानन्द की अनुभूति पाने के लिए यह आवश्यक है कि साधक का मन एकाग्र व दृढ़ संकल्प से युक्त हो।

यम

अपने व्यवहारिक जीवन को सात्त्विक एवं दिव्य बनाने के लिए यम का प्रयोग किया जाता है। या दूसरे शब्दों में वह बातें जिनका पालन करने से व्यक्ति सुखी जीवन व्यतीत करता है यम कहलाती हैं। अच्छे और बुरे कार्यों में अन्तर समझते हुए जो पुरुष अच्छे कार्यों को करने की ओर प्रेरित रहता है, बुरे कार्यों से मन को हटाता है, वह यम पालन की क्रिया का ज्ञान रखता है। यम के पांच भेद हैं–

1. अहिंसा
2. सत्य
3. अस्तेय
4. ब्रह्मचर्य
5. अपरिग्रह

अहिंसा

हिंसा का विपरीत शब्द है अहिंसा। मन, कर्म, वचन से किसी का जी ना दुखाना, किसी को कष्ट न पहुंचाना अहिंसा कहलाता है। प्रत्येक जीव को अपने समान समझना भी अहिंसा कहलाता है। जो व्यक्ति अहिंसा के मार्ग पर चलता है यदि उसके सामने हिंसक व्यक्ति आ जाए तो हिंसक व्यक्ति उसके व्यवहार से प्रभावित होकर अहिंसा का मार्ग अपना लेता है।

सत्य

सत्य समस्त सामाजिक व्यवहार का मूल आधार है। जैसा सुना, देखा, अनुभव किया, वैसा ही कह देना सत्य कहलाता है। सत्य बोलने वाला व्यक्ति साहसी व निर्भीक होता है। वह बड़े से बड़ा बलिदान देने से भी नहीं घबराता।

अस्तेय

वस्तु के स्वामी से पूछे बगैर उसकी वस्तु न लेना अस्तेय कहलाता है। अर्थात् चोरी न करना, दूसरे का धन का लालच न करना, किसी की सम्पत्ति पर अपना अधिकार न जमाना, दूसरे का अधिकार न छीनना, थोड़ा कर्म करने पर अत्यधिक फल की इच्छा न करना सभी अस्तेय के अन्तर्गत आते हैं।

ब्रह्मचर्य

ब्रह्मचर्य का अर्थ है ब्रह्म के लिए अपने आप को अर्पित करना तथा उसके गुणों को ग्रहण करना। अपनी गुप्तेन्द्रियों को नियन्त्रित रखना, मन को वश में रखना भी ब्रह्मचर्य है। जो व्यक्ति ब्रह्मचर्य का पालन करता है वह जीवन में सुख को प्राप्त करता है।

अपरिग्रह

किसी चीज का लोभ न करना अपरिग्रह कहलाता है। अनावश्यक वस्तुओं का संचय न करना, उपभोग्य वस्तुओं को त्याग की भावना से ग्रहण करना, स्वार्थ के लिए धन, सम्पत्ति तथा भोग सामग्रियों का संचय न करना अपरिग्रह कहलाता है।

नियम

योग साधना की दूसरी सीढ़ी है नियम। नियम वैयक्तिक धर्म है। नियम का सम्बन्ध व्यक्तिगत शरीर, इन्द्रियों तथा अन्तःकरण से है। नियमों का पालन करने से योग साधना की अगली सीढी आसन को सिद्ध करने में

सहायता मिलती है। नियम के भी पांच भेद कहे गए हैं–

1. शौच
2. संतोष
3. तप
4. स्वाध्याय
5. ईश्वर प्रणिधान

शौच

शरीर एवं मन को शुद्ध करना शौच कहलाता है। शौच दो प्रकार के होते हैं। एक तो बाहर की स्वच्छता और दूसरे अन्दर की स्वच्छता। बाहर की स्वच्छता के अन्तर्गत स्नान करना, मलत्याग करना, साफ वस्त्र धारण करना, घर को साफ रखना, सात्विक भोजन ग्रहण करना आते हैं तथा अन्दर की स्वच्छता के अन्तर्गत राग, द्वेष, ईर्ष्या, घृणा, लोभ, अभिमान आदि बुरी वृत्तियों को दूर करना आते हैं। शारीरिक शुद्धि के लिए षट्कर्म जैसी यौगिक क्रियाएं की जाती हैं तथा आन्तरिक शुद्धि तप, ज्ञान प्राप्ति तथा सत्य का आचरण करने से की जाती है। पूर्ण स्वास्थ्य एवं सुख के लिए शुद्धता अनिवार्य है।

संतोष

संसार में होने वाले प्रत्येक कार्य को ईश्वर को समर्पित करते हुए कार्य करना सन्तोष कहलाता है। परमात्मा की कृपा से जो मिल जाए उसी में सन्तोष करना तथा परमात्मा को उसके लिए धन्यवाद देना ही सन्तोष है। सन्तोषी व्यक्ति के मनोभाव प्रत्येक स्थिति में एक जैसे रहते हैं। संतोष द्वारा मनुष्य शान्ति को प्राप्त करता है। सन्तोषी व्यक्ति ही जीवन में सुख प्राप्त करता है।

तप

तप का अर्थ है कठिन परिश्रम। किसी भी स्थिति अर्थात् सर्दी, गर्मी,

धूप, छांव, वर्षा आदि को सहन करते हुए प्रसन्नचित्त रहना ही तप है। तप के सिद्ध हो जाने पर व्यक्ति की ज्ञानेन्द्रियां शुद्ध एवं पवित्र हो जाती हैं। तपस्वी व्यक्ति प्राकृतिक, शारीरिक तथा मानसिक बाधाओं पर विजय प्राप्त करता है। कठिन तपस्या द्वारा ही मनुष्य सफलता प्राप्त करता है।

तप के दो भेद बताये गए हैं– बाह्य और आभ्यांतरिक। बाह्य तप हैं– यथा शक्ति उपवास करना, उसमें भी वक्त, घर, पदार्थ आदि की सीमा बांधना, रसों का त्याग, एकान्तसेवन और विधिपूर्वक समता भाव से शरीर को नियंत्रित करना। और आभ्यंतरिक तप हैं– प्रायश्चित, गुरु व साधुओं की सेवा, विनय-प्रार्थना, ज्ञानाभ्यास, बाहरी पदार्थों में ममता व वासना का त्याग, चित्तशुद्धि और ध्यान।

स्वाध्याय

ज्ञान प्राप्ति के लिए वेदों, पुराणों, धर्म ग्रन्थों आदि का अध्ययन, सतसंग तथा विचारों का आदान-प्रदान करना स्वाध्याय है। अपने आपको जानना, अपना आत्मनिरीक्षण करना स्वाध्याय है। स्वाध्यायशील व्यक्ति ही मोक्ष की प्राप्ति करता है।

ईश्वर प्रणिधान

पूरी आस्था, श्रद्धा, भक्ति से ईश्वर का चिन्तन, मनन तथा पूजा करना ईश्वर प्रणिधान कहलाता है। ईश्वर में पूर्ण आसक्ति ही ईश्वर प्रणिधान है। ईश्वर के स्वरूप को पहचान कर उसके गुणों को ग्रहण करने की चेष्टा करना तथा सदैव उसी के प्रति समर्पित रहना ईश्वर प्रणिधान कहलाता है।

आसन

योग की तीसरी सीढ़ी है आसन। आसन अर्थात् शरीर तथा इसके अवयवों को भिन्न-भिन्न प्रकार से स्थिर करना। हठ योग शास्त्र में चौरासी आसनों का उल्लेख मिलता है। इनमें से प्रत्येक का अभ्यास यदि उनके अनुकूल किये जाने वाले विशेष प्रकार के प्राणायामों के साथ किया जाए

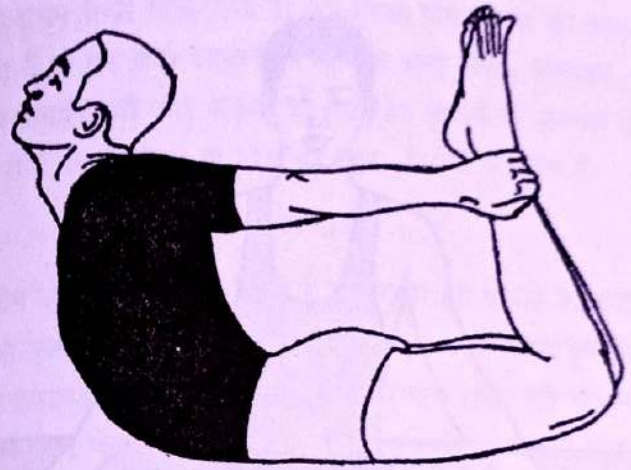

तो नाड़ी-चक्रों तथा शरीर के भीतर के भिन्न-भिन्न अंगों की सोयी हुई शक्तियां जागृत होती हैं।

कुछ विद्वानों के मत से जब तक हमारा स्थूल शरीर हमारे मानसिक संकल्पों के अनुरूप स्थिर या संचालित नहीं होते, तब तक न तो हम इस लोक में सुखी रह सकते हैं और न हमारा परलोक सुधर सकता है। अतः आसनों का महत्व स्वतः प्रतिपादित हो जाता है, क्योंकि इन्हीं से हमारे शरीर में उक्त शक्तियों का विकास होता है। परन्तु इस संदर्भ में यह बात भी स्मरणीय है कि आसनों का पूर्ण लाभ लेने के लिए हमें इसके पूर्व वाले सोपानों अर्थात् यम तथा नियम का भी पालन करना चाहिए।

योग के सर्वोच्च आदर्श समाधि की प्राप्ति के लिए यह आवश्यक है कि शरीर स्वस्थ और सुदृढ़ हो। जो शरीर से रोगी होते हैं, वे अपने चित्त को एकाग्र नहीं कर सकते और न वे ऊंचे तत्वों पर अपना ध्यान ही टिका पाते हैं। अतः आसनों का अभ्यास करना आवश्यक है। क्योंकि आसनों के अभ्यास से शरीर स्वस्थ रहता है और उससे चित्त को सुस्थिर करने में

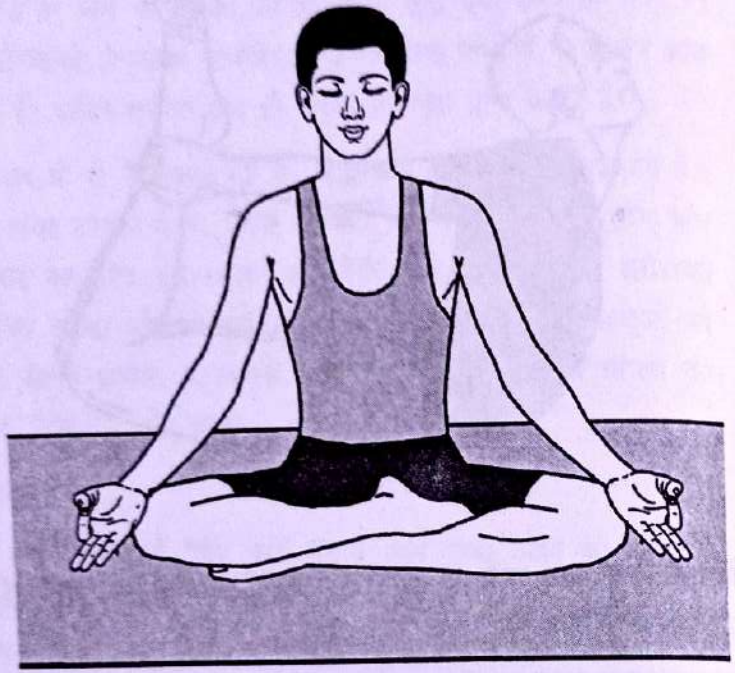

सहायता मिलती है।

केवल योग साधना की दृष्टि से ही नहीं, बल्कि स्वास्थ्य विशारदों ने भी शारीरिक अंगों को ठीक दशा में रखने के लिए आसनों को लाभदायक पाया है और उनमें से बहुत सी क्रियाओं को कुछ परिवर्तित करके सर्व साधारण के लिए उपयोगी बना दिया है। आजकल इन योगासनों का अभ्यास व्यक्तिगत रूप से नहीं, बल्कि सामूहिक रूप से योग व्यायाम के रूप में योगासन की कक्षाएं लगाकर भी किया जा रहा है।

चिर अवधि तक निश्चल होकर एक ही स्थिति में रहने, जैसे– बैठने, खड़े रहने या लेटे रहने का योग शास्त्रों में विधान है, वैसे ही बैठने, खड़े रहने या लेटे रहने का अभ्यास करना आसन का अभ्यास कहा जाता है।

सिद्ध आसन पर निश्चल भाव से लगातार एक प्रहर बैठे रहने पर योग साधक का आसन सिद्ध माना जाता है। जब किसी योग साधक का आसन सिद्ध हो जाता है तो वह बड़ी आसानी से योग के अन्य अंगों– प्राणायाम, धारणा, ध्यान व समाधि की ओर अग्रसर हो जाता है। आसनों के अभ्यास से मनुष्य अनेक रोगों से छुटकारा पा लेता है। तथा निरोगी कहलता है।

प्राणायाम

योग साधना की चौथी सीढ़ी है प्राणायाम। इसे श्वासों का व्यायाम भी कहा जा सकता है। प्राणायाम एक व्यापक व अति महत्वपूर्ण विषय है। अखिल ब्रह्माण्ड में परमात्मा द्वारा प्राणियों में प्राण संचार की व्यवस्था करने वाली जो परम चेतन सत्ता व्याप्त है, उसे अपने संकल्प बल से ब्राह्माण्ड की परम चेतना में से अपने प्राणों के समुचित संचरण के लिए यथेष्ट मात्रा में उस चेतन प्राण ऊर्जा को खींचने की प्रक्रिया का नाम प्राणायाम है।

प्राणायाम, श्वासों को निश्चित गति से खींचते हुए फेफड़ों में हवा को भरने, उसे एक नियत समय तक रोके रखने, फिर उसे एक निश्चित गति से छोड़ने और नियत समय तक फेफड़ों को हवा से खाली रखने के बाद पुनः निश्चित गति से फेफड़ों में हवा को भरने की प्रक्रिया को निश्चित समय तक बार-बार दोहराने की क्रिया को कहा जाता है।

योग शास्त्र की शब्दावली में श्वास को खींचते हुए फेफड़ों में हवा को भरने की क्रिया को पूरक क्रिया और फेफड़ों में भरी हुई हवा को यथा शक्ति रोके रहने को आंतरिक कुंभक क्रिया कहते हैं। उसी प्रकार फेफड़ों से हवा को धीरे-धीरे बाहर निकालने को रेचक क्रिया और यथा शक्ति फेफड़ों को हवा से खाली रखने की क्रिया को बाह्य कुंभक क्रिया कहते हैं। यह एक ऐसी क्रिया है जो देखने में तो बड़ी आसान लगती है, किन्तु बड़ी गूढ़ व रहस्य भरी है और इसमें असीम शक्ति निहित है। किसी योग व अनुभवी गुरु के सान्निध्य में इसे सीखकर अपनी शारीरिक व आध्यात्मिक उन्नति का मार्ग प्रशस्त किया जा सकता है।

जड़ता, आलस्य, शारीरिक दुर्बलता आदि व्याधियां कुछ खास प्रकार के प्राणायाम करने से दूर हो जाती हैं और उनसे इन्द्रियों तथा नाड़ी चक्रों को वश में करने और मन को एकाग्र करने में सहायता मिलती है।

रोग निवारण की दृष्टि से प्राणायाम के आठ भेद किये गए हैं–

1. सूर्य भेदन प्राणायाम
2. उज्जायी प्राणायाम
3. शीतली प्राणायाम
4. सीत्कारी प्राणायाम
5. भ्रस्त्रिका प्राणायाम
6. भ्रामरी प्राणायाम
7. मूर्छा प्राणायाम
8. केवली प्राणायाम

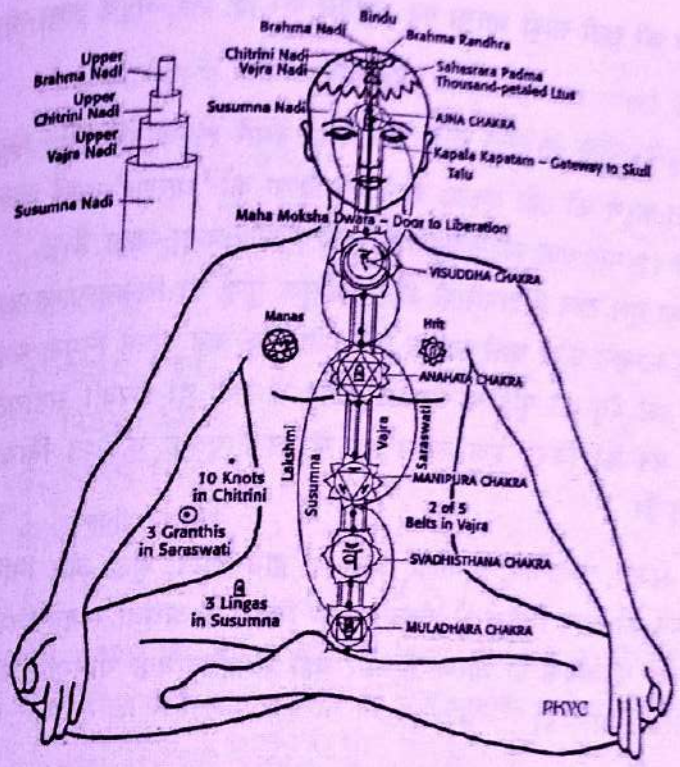

प्रत्याहार

योग साधना की पांचवीं सीढ़ी है प्रत्याहार। जब साधक बाह्य विषयों से मन को हटाकर किसी आन्तरिक बिन्दु पर स्थिर करने में सफल हो जाता है और मन को अपनी इच्छा के अधीन कर इसे अपने वश में करके जहां चाहे वहां ले जाने की क्षमता से युक्त हो जाता है तो यह समझना चाहिए कि उसका प्रत्याहार सध गया। पतंजलि ऋषि का कथन है–

स्वविषयासम्प्रयोगे चित्तस्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः॥

अर्थात्– मन की शक्तियों को एकाग्र करके उन्हें बाहरी विषयों की ओर जाने से रोकने की प्रक्रिया को 'प्रत्याहार' कहा जाता है। यह 'धारणा' की प्रारम्भिक सीढ़ी है। इन पांच प्रारम्भिक सीढ़ियों को पार कर यदि साध

क योग की छठी सीढ़ी धारणा का अभ्यास करें तो उन्हें अपूर्व लाभ होगा।

धारणा

योग साधना की छठी सीढ़ी है धारणा। हमारे शास्त्रों में विचार-शक्ति को अत:करण की ओर एकाग्र करने की क्रिया को 'धारणा' कहा गया है। मन के 12 पल एक स्थान पर ठहरने को धारणा कहा जाता है। ध ारणा का मूल तत्त्व है तामसिक और राजसिक गुणों पर विजय प्राप्त करना। इसका अभ्यास करने वाले साधक को चाहिए कि वह अपने निर्मल मन को अपने इष्ट देव की मूर्ति या अभीष्ट स्थान में लगा दे। इसकी सहायता से शान्त मन को किसी एक स्थान पर सफलता पूर्वक केन्द्रित किया जा सकता है।

आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार आदि के द्वारा शान्त, शुद्ध और निर्विकार हुए मन को अन्य विषयों से हटाकर ध्येय विषय में अथवा स्थान विशेष में वृत्तिमात्र से बांधना ही धारणा है और यहीं से वास्तविक योगमार्ग में साध क प्रविष्ट होता है।

ध्यान

धारणा से आगे योगसाधना की सातवीं सीढ़ी है 'ध्यान'। ध्यान के द्वारा ही मनुष्य समाधि की अवस्था में प्रवेश पाता है, जहां पर साधक में सूक्ष्म बोध कराने वाली छठी इन्द्रिय का विकास होता है। दूसरे शब्दों में साधक की आध्यात्मिक अथवा दिव्य चक्षु खुल जाते हैं। इस प्रकार हमारी आत्मा को अपने मूल उद्गम आनन्द स्वरूप परमात्मा का साक्षात्कार हो जाता है। फलस्वरूप हम हर प्रकार की सांसारिक व्याधियों व कर्म फल भोग के लिए विविध योनियों में जन्मने-मरने की यातना से मुक्त हो परमानन्द की अनवरत अनुभूति करते हुए जीते जी अपना मनुष्य जन्म सार्थक करने में सफल हो जाते हैं।

ध्यान की अवस्था में चित्त की धारित की हुई वृत्ति समान प्रवाह से उदित होती रहती है और अन्य कोई वृत्ति बीच में नहीं आती, उस अवस्था

को ध्यान कहा जाता है।

आधुनिक युग में यदि व्यक्ति आधा-अधूरा भी ध्यान लगाता है अर्थात् अपने मन को एकाग्र करता है तो वह अपने कार्य में सकारात्मक प्रभाव देखता है।

ध्यान की प्रक्रिया को सरल बनाने के लिए उसे चार भागों में विभाजित किया गया है–

1. पदस्थ ध्यान
2. पिंडस्थ ध्यान
3. रूपस्थ ध्यान
4. रूपातीत ध्यान

समाधि

योग साधना की आठवीं सीढ़ी है 'समाधि'। ईश्वर का निरन्तर ध्यान करते-करते चित्त जब अपने आकार का ज्ञान भूलाकर वस्तु शून्य हुआ एक

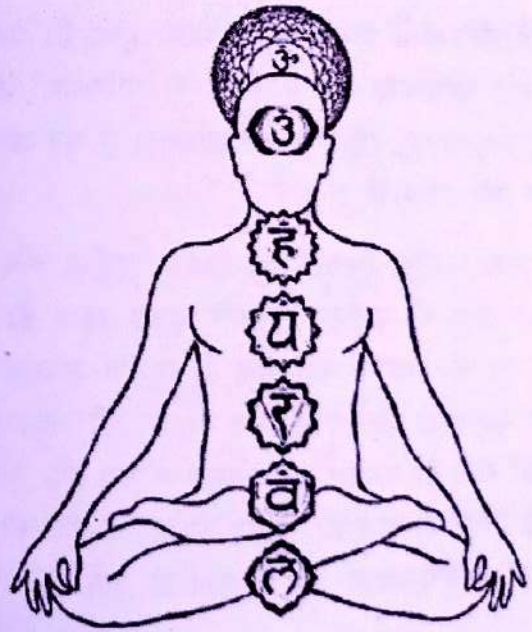

निश्चित समय तक ईश्वर में लीन हो जाता है तथा ईश्वर के समान ही दिखाई देने लगता है तो इस अवस्था को समाधि कहा जाता है।

समाधि अथवा तुरीयावस्था को प्राप्त करने के लिए अनवरत चेष्टा के अलावा धीरज व अध्यवसाय की भी आवश्यकता होती है। समाधि की अवस्था प्राप्त करने में साधक को अनेक विघ्नों का सामना करना पड़ता है, जैसे– शोक, व्याधि, मन की शिथिलता, संशय, चेष्टा का परित्याग, मन और शरीर का भारीपन, सांसारिक पदार्थों की कामना, भ्रामक ज्ञान, चित्त का एकाग्र न होना, एक स्थिति पर पहुंच कर उससे गिर जाना, श्वास-प्रश्वास की विषम क्रियाएं इत्यादि। फिर भी यदि मनुष्य वास्तव में चाहे तो दृढ़ संकल्प के साथ आगे बढ़ने पर उसकी सारी बाधाएं आसानी से दूर हो जाती हैं। केवल दुर्बल संकल्प वाले मनुष्य ही उन बाधाओं से बाधित होते हैं।

योग और मन

मन हृत्प्रतिष्ठ है, मन का केन्द्रस्थल हृदयाकाश है। वक्ष के नीचे और उदर के ऊपर जो अवकाश है, उसे हृदयाकाश कहते हैं। मनस्तत्त्व एक व्यापक तत्त्व है, जो सबमें सर्वत्र एकरस व्यापा हुआ है। मानव शरीर में उसका केन्द्रस्थल हृदयाकाश है। मस्तिष्क के परिष्कार, पवित्र विचार, अनन्य चिन्तन, स्थितप्रज्ञता, मस्तिष्क की शीतलता से मन के संकल्पों का पर्याप्त परिपाक और परिष्कार होता है।

मन का कार्य संकल्प विकल्प है। सिवाय सुषुप्ति और समाधि की अवस्था के मन सदा ही संकल्प विकल्प करता रहता है। सुषुप्ति की अवस्था में भी मन संकल्पशून्य नहीं होता है। सुषुप्ति अवस्था में मन और मन के संकल्प सुषुप्त हो जाते हैं। एवमेव समाधि की अवस्था में भी मन संकल्पशून्य नहीं होता है। समाधि की अवस्था में मन और मन के संकल्प निश्चेष्ट अथवा निर्गत हो जाते हैं। सुषुप्ति अथवा समाधि की समाप्ति पर मन और मन के संकल्प जागृत और गतिमान हो जाते हैं।

मन को शिव-संकल्प बनाना मन की परम साधना है। चिन्तन और संकल्प का परस्पर अटूट संबंध है। संकल्प के अनुसार ही सदा चिन्तन होता है। संकल्प का शोधन करके मन को शिव संकल्प बनाना साधक के लिये परम आवश्यक है।

मन को शिव-संकल्प बनाने के लिए प्रथम उपाय है मन के संकल्पों का सतर्कता के साथ निरीक्षण करते रहना। जब मन में अशिव संकल्प आयें तो उन्हें तुरन्त बाहर निकाल दीजिए। अशिव संकल्प के मन में प्रवेश करते ही उससे वेद के शब्दों में कहिये **'परोपेहि मनस्पाप'** अर्थात् मन के अशिव संकल्प परे चला जा'। और आप देखेंगे कि वह बाहर निकल जायेगा।

मन की दूसरी साधना है मन की चंचलता को हटाकर मन को स्थिर करना। मन की चंचलता के मुख्य कारण हैं संशय, भय, उद्विग्नता (बेचैनी), निराशा, घबराहट और आशुता (जल्दबाजी)।

संशयवृत्ति को हटाने के लिये अपने अन्दर आत्मविश्वास उत्पन्न कीजिये। भ्रम और भ्रान्ति से भी संशय उत्पन्न होते हैं। प्रत्येक वस्तु और विषय का यथार्थ ज्ञान सम्पादन करने से संशयवृत्ति का निर्मूलन होता है।

साहस के अवलम्ब से निर्भयता का अभ्यास हो जाता है। सहनशीलता और धैर्य के अभ्यास से उद्विग्नता का स्वभाव जाता रहता है।

विफलता पर विफलता होने पर भी आशापूर्ण मन से पुनः पुनः साधना करते रहने से निराशा की वृत्ति का क्षय होता है।

किसी भी अवस्था या परिस्थिति में अपने होश हवास बनाये रखने का अभ्यास कीजिए, इससे घबराहट की आदत जाती रहेगी।

प्रत्येक कार्य शान्तिपूर्वक सहज स्वभाव के साथ करने से आशुता की आदत जाती रहेगी।

मन की तीसरी और अन्तिम साधना है मन को नितान्त निर्मल रखना। अन्न और आजीविका की पवित्रता से मन की निर्मलता में बड़ी सहायता

7

भगवद्गीता में योग-कर्म योग, राज योग, ज्ञान योग तथा भक्ति योग

(Yoga in the Bhagavadgita - Karma Yoga, Raja Yoga, Jnana Yoga and Bhakti Yoga)

जुड़ने की प्रक्रिया को 'योग' कहते हैं। योग बताता है कि किससे जुड़ना चाहिए। योग का अर्थ है आत्मा को परमात्मा से जोड़ना, आयु एवं प्राण शक्ति को बढ़ाना, अपने अहं का त्याग कर उससे ऊपर उठना, अपनी मानसिक, आत्मिक एवं शारीरिक शक्तियों का विकास करना। जन्म एवं मृत्यु का भी योग है। संसार में किन्हीं भी कम-से-कम दो वस्तुओं को मिलाया जाता है तो एक नये शब्द का निर्माण होता है। योग द्वारा अपने मन, शरीर एवं इन्द्रियों को अपने वश में किया जा सकता है और जिस व्यक्ति का मन, शरीर एवं इन्द्रियां उसके वश में हो तो उसके लिए कोई भी कार्य कठिन नहीं है। इसी प्रकार योग द्वारा आप परमात्मा को भी प्राप्त कर सकते हैं और मोक्ष को भी।

योग एक विशिष्ट प्रकार का विज्ञान है जो पदार्थ, जीव तथा चेतना को एक साथ लेकर चलता है तथा विज्ञान और आध्यात्म की खाई पर बांध का कार्य करता है। योग मनुष्य की गम्भीरता का विज्ञान है, मनुष्य की चेतना के विकास का विज्ञान है तथा मनुष्य की सम्भावनाओं का विज्ञान है।

हमारे उपनिषदों तथा दर्शन शास्त्र में योगासनों का उल्लेख मिलता है। परन्तु जब हमारा देश स्वतन्त्र हुआ तब देश विदेशों के सम्पर्क में आया। जिसके कारण योगासनों की चर्चा भी बढ़ी। प्रत्येक देश में शारीरिक व्यायाम की अपनी-अपनी विधियां हैं। ये शारीरिक व्यायाम दो प्रकार के होते हैं–

1. वैयक्तिक व्यायाम
2. सामूहिक व्यायाम

वैयक्तिक व्यायाम वे व्यायाम हैं, जो व्यक्तिगत रूप से किए जाते हैं। प्रातः तथा सांय सैर के लिए जाना वैयक्तिक व्यायाम के अन्तर्गत आता है।

सामूहिक व्यायाम वह व्यायाम हैं जिन्हें समूह में किया जाता है। जैसे– टीम बनाकर हॉकी, फुटबाल, क्रिकेट आदि खेलना, स्कूलों में बच्चों को ड्रिलें करवाना आदि। सैनिक ढंग से कराई गई ड्रिलों के तीन लाभ हैं–

1. शरीर का व्यायाम।
2. कदम-कदम मिलाकर चलने से साहचर्य्य का शिक्षण।
3. अनुशासन तथा नियन्त्रण जैसे गुणों का विकास।

व्यायाम द्वारा शरीर को चुस्त व सुडौल बनाया जाता है। परन्तु किसी-किसी व्यक्ति को व्यायाम की आवश्यकता ही नहीं होती। यदि मजदूर और किसान के दैनिक कार्यों को देखा जाए तो उन कार्यों को करने के बाद उन्हें व्यायाम की आवश्यकता ही नहीं रहती। व्यायाम की आवश्यकता उन व्यक्तियों को होती है जो शारीरिक श्रम कम करते हैं जैसे– वकील, व्यापारी, अध्यापक, ऑफिस में काम करने वाले लोग आदि। एक छोटे बच्चे को भी व्यायाम की आवश्यकता नहीं होती क्योंकि खेलों द्वारा ही उसका उचित व्यायाम हो जाता है। व्यायाम का अर्थ है शरीर के प्रत्येक अंग में शक्ति का प्रवाह करना। जो शारीरिक श्रम द्वारा भी संभव है। शरीर को उचित परिश्रम न मिलने पर कई दोष उत्पन्न होते हैं जैसे–

1. शरीर का पूर्ण विकास नहीं हो पाता।
2. मन में खिन्नता आ जाती है।
3. चित्त स्वस्थ नहीं रहता।
3. आनन्द नष्ट हो जाता है जिससे जीने की इच्छा मर जाती है।

4. बल, वीर्य, तेज और ओज में कमी हो जाती है।

5. भूख मर जाती है।

6. शरीर कृश तथा बेडौल हो जाता है।

7. विभिन्न प्रकार के शारीरिक व मानसिक रोगों की उत्पत्ति होती है।

जो व्यक्ति नित्य व्यायाम नहीं कर सकते उनके लिए जरुरी है कि वह अपनी दिनचर्या इस प्रकार की बनाएं जिससे उनके शरीर के सभी तन्त्रों को व्यायाम मिले और वह स्वस्थ रहें।

प्रत्येक देश के इतिहास में व्यायाम का विकास अपने ढंग से हुआ। सैनिकों को सदा ही अपने शरीर को स्वस्थ और सक्रिय बनाये रखने के लिए नित्य प्रति सैनिक अभ्यास करने होते थे। जोखमों का सामना करने के लिए तपस्या और साहसपूर्ण शारीरिक अभ्यास आरम्भ किए गए। थल सैनिकों, जल सैनिकों तथा वायु सैनिकों के लिए कठोर शारीरिक व्यायामों का विकास किया गया।

आधुनिक ढंग की व्यायाम शालाओं में जो प्रदर्शन दिखाये जाते हैं, जैसे पैरेलेल बार पर, रस्सियों पर आदि के खेल ये सब योगासन के प्रकार हैं। इन योगासनों का मुख्य उद्देश्य है–

1. शरीर को निरोगी बनाना।

2. शरीर को सुन्दर व सुडौल बनाना।

3. शरीर की मांस-पेशियों को सचेष्ट बनाये रखना।

4. शरीर के विकारों को और विकृत सामग्री को शरीर से बाहर निकालने में सहज सफलता प्राप्त करना।

5. रोगों के आक्रमक-कारणों के प्रति सफल संघर्ष करते रहने की क्षमता को विकसित करना।

नित्यप्रति योगासनों का अभ्यास करने से निम्नलिखित लाभ होते हैं–

1. शरीर सुडौल रहता है।

2. शरीर में चुस्ती बनी रहती है।

3. इन आसनों को अकेला किया जा सकता है।

4. निर्धन से निर्धन व्यक्ति भी इन आसनों को कर सकता है।

5. थोड़े से ही स्थान में इन आसनों को किया जा सकता है।

6. शरीर निरोगी रहता है।

आसन हमें रोगों से बचने में सहायता प्रदान करते हैं। पर विशेष कारणों से आए हुए रोग का इलाज नहीं कर सकते। साधारणतया शरीर स्वयं ही अपने रोगों का इलाज करता है, रोगों के कारकों से युद्ध करने की सामग्री शरीर ही स्वतः तैयार करता है। जिसे प्राकृतिक चिकित्सा कहा जाता है। कुछ विशिष्ट औषधियां, उपवास, आहार, स्वस्थ निद्रा और चिन्ताओं से मुक्ति ये सभी रोगी की चिकित्सा में सहायक सिद्ध होते हैं।

एक स्वस्थ व्यक्ति ही आसनों को कर सकता है। किन-किन को आसन नहीं करने चाहिए–

1. जिस व्यक्ति के मस्तिष्क अथवा पेट में दर्द हो।

2. चेचक का रोग हो गया हो।

3. मलेरिया, अन्फ्लूएंजा, टाइफॉयड आदि ज्वर से ग्रस्त व्यक्ति।

4. कैन्सर तथा हृदय रोग से पीड़ित व्यक्ति।

आसनों के तनाव के क्लान्त शरीर को अधिकतम विश्राम देने का नाम शवासन है। परन्तु कुछ लोग इसे आसन का नाम देते हैं। शवासन में हृदय की धड़कने चलती रहती हैं, नाड़ी भी चलती है, शरीरस्थ भोजन का पाचन भी होता रहता है। कुछ समय के लिए व्यक्ति निश्चेतन अवस्था में पड़ा

रहता है। वस्तुतः सुषुप्ति अवस्था ही परम शवासन है जो जीवित शरीर में सभी भाग्यवान् प्राणियों को कभी न कभी प्राप्त होती ही है। शवासन में शरीर की पेशियों के साथ-साथ मन या चित्त का शिथिल होना भी आवश्यक है।

योग सूत्रों में महर्षि पतंजलि ने आसनों का प्रयोग दो स्थानों पर किया है। एक अष्टांगों का वर्णन करते समय और दूसरा आसन का अर्थ स्पष्ट करते हुए।

महर्षि पतंजलि के अनुसार आसन वह है, जिसमें स्थिर सुख हो। अर्थात् योगी का ऐसी अवस्था में बैठना जिसमें वह सहज-भाव से काफी देर तक बैठ सके। जिससे शरीर के किसी अंग पर दबाव न पड़े। अगर किसी अंग पर दबाव पड़ता है तो उसका चित्त उसकी पीड़ा में लग जाएगा और वह चित्त की वृतियों का निरोध नहीं कर सकेगा। यह स्थिर सुखासन कैसे सिद्ध हो, इसके लिए महर्षि पतंजलि ने अगला सूत्र दिया है जिसमें दो बातें कही गई हैं।

पहली है प्रयत्न शैथिल्य। अर्थात् तनाव का अत्यन्ता भाव, मानों बैठे रहने के लिए कोई प्रयत्न करना ही नहीं पड़ रहा। जो व्यक्ति जमीन पर पालथी मार कर बैठने के अभ्यासी नहीं हैं, वे यदि पालथी मारेंगे, तो उनकी टाँगों में तनाव पैदा होगा, और हल्की सी पीड़ा भी होगी। प्रतिदिन के अभ्यास के बाद यह प्रयत्न-शैथिल्य सहज ही प्राप्त होने लगता है।

दूसरी है अनन्त समापत्ति। अर्थात् प्रत्येक पशु अपनी शरीर-रचना के अनुसार अलग-अलग ढंग से बैठता है। जैसे– मोर पेड़ की शाखाओं पर सुख पूर्वक बैठता है, चमगादड़ उल्टा लटकता है, कोई-कोई पशु खड़े-खड़े ही सोता है। इन सबके लिए ये स्वाभाविक सुखासन हैं। इनका पशुओं को अभ्यास नहीं करना पड़ता।

परन्तु जहां तक मनुष्य का सवाल है उनके लिए कोई भी स्वाभाविक आसन नहीं हैं। अभ्यास द्वारा ही वह अपने सुखासनों का निर्माण करता है। उसे अभ्यास से अपने आसनों को सिद्ध करना पड़ेगा। चित्त-वृत्ति निरोध के

लिए अनेक आसनों की सिद्धि आवश्यक नहीं है। उपयोगी व्यायाम के लिए आपको अनेक आसनों को सिद्ध करने का परामर्श दिया जा सकता है, परन्तु योग के लिए नहीं। प्राणायाम के लिए वह आसन उचित होगा, जिसमें रीढ़ की हड्डी पर बल न पड़े। पालथी मार कर बैठ कर, कुर्सी पर बैठ कर या खड़े होकर भी प्राणायाम किया जा सकता है।

प्रत्येक पशु की शरीर रचना अलग-अलग विशिष्टतायें रखती है। उसके बैठने, खड़े होने, चलने-दौड़ने, सोने और नाचने-कूदने के ढंग अलग-अलग होते हैं, जो उसके जन्मजात हैं। मनुष्य का शरीर पशुओं से भिन्न है। जैसे मनुष्य के अन्य पशुओं से भिन्न होने पर भी अपना आहार-विहार, कर्माकर्म में कुछ स्वतन्त्रता रखता है, उसी प्रकार मनुष्य शरीर में भी अन्य पशुओं की अपेक्षा शरीर को तोड़-मरोड़ कर बैठने, चलने, कूदने, फाँदने, लेटने की क्रियाओं में स्वतन्त्रता रखता है।

मनुष्य ने पशु-पक्षियों की विशेषताओं को देखकर, उन्हें उपमान बनाकर, अपने व्यायाम के आसनों को नाम दिए हैं। जेसे– मयूर आसन, क्रौञ्च आसन, कूर्म आसन, शलभ आसन, मकरासन आदि।

योग के नाम पर प्रचलित अधिकांश आसन व्यायाम सम्बन्धी आसन हैं। योग के आठ अंगों में जिस स्थिर सुखासन का उल्लेख है, यह वह आसन है जिसका प्रयोग प्राणायाम में हो सके। व्यायाम का उद्देश्य शरीर को स्वस्थ बनाना, सुन्दर बनाना तथा निरोगी बनाना है। प्राणायाम का उद्देश्य इन्द्रियों के विकारों को दूर करना है।

यदि प्राचीन ग्रन्थों, उपनिषदों का अध्ययन किया जाए तो हमें यह ज्ञात होता है कि हमारे ऋषि-मुनि योग की ओर विशेष ध्यान देते थे। वैदिक ऋचाओं तथा उपनिषदों में योग क्या है, प्राण क्या हैं, मन क्या है, इन सब विषयों का वर्णन है, परन्तु योग पद्धति को शास्त्रीय रूप देने का गौरव सांख्य दर्शन के आचार्य कपिल मुनिजी और योग दर्शन के आचार्य पतंजलि मुनिजी को है। कपिल मुनि जी ने इस सम्बन्ध के शास्त्रीय सिद्धान्तों को

प्रतिपादित किया, और उन्हीं सिद्धान्तों को लेकर महर्षि पतंजलि जी ने योग का व्यवहारिक रूप हमारे सम्मुख रखा।

संसार में विभिन्न प्रकार के प्राणी पाए जाते हैं जैसे– शेर, हाथी, मच्छर, मक्खी, चिड़िया, तोता आदि। मनुष्य भी एक प्राणी है। वेदों में इन पशुओं को तीन विभागों में विभाजित किया गया है–

1. आरण्य जंगली पशु।
2. ग्राम्य घोड़ा, भेड़, बकरी, गाय, मनुष्य और गांवों में रहने वाले पशु।
3. वायव्य आकाश में उड़ने वाले पक्षी।

इनमें से कुछ की उत्पत्ति अण्डों के द्वारा होती है (अण्डज) और कुछ पेट से पैदा होते हैं (पिण्डज)। पर शास्त्रों में इस बात का कोई विशेष महत्व नहीं है।

इन सभी प्राणियों में से मनुष्य को सर्वश्रेष्ठ प्राणी माना गया है। मनुष्य में ही बुद्धि और योग्यता का चरम-विकास देखने को मिलता है। यह बात अलग है कि मानव शरीर को श्रेष्ठ सिद्ध करने के लिए सभी ने अलग-अलग कारण बताए हैं। एक तरफ आस्तिक विचारक हैं जो मनुष्य शरीर को ईश्वर की सर्वश्रेष्ठ कृति कहते हैं तो दूसरी तरफ नास्तिक विचारक हैं जो ईश्वर की सत्ता में विश्वास नहीं रखते। किन्तु वे भी मनुष्य को उसकी भौतिक क्षमताओं व विकास की संभावनाओं को देखकर सर्वश्रेष्ठ मानते हैं। सचमुच मनुष्य शरीर की अन्य विशेषताओं को अगर नजरअंदाज कर भी दिया जाए तो इसकी स्थूल बनावट को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता जो इसकी श्रेष्ठता को सिद्ध करती है। मनुष्य के हाथ के अंगूठे और तरह-तरह के शब्दों का उच्चारण करने में समर्थ जीभ व स्वर तन्त्रिकाओं की बनावट बड़ी ही विचित्र है। मनुष्य शरीर की अन्य विशेषताओं को यदि छोड़ भी दिया जाए तो मात्र ये दो विशेषताएं ही ऐसी हैं, जिनके आधार पर मनुष्य शरीर को संसार के सभी प्राणियों के शरीरों से श्रेष्ठ माना जा सकता है। मनुष्य के मस्तिष्क की संरचना अपने आप में अतुल्य है।

वास्तव में मनुष्य शरीर एक ऐसा यन्त्र है, जिसे अन्य किसी के द्वारा चलाये जाने की जरूरत नहीं, बल्कि उसके अन्दर प्राकृतिक रूप से यह क्षमता मौजूद है कि वह अपने आप को गतिशील करे अथवा बंद करे। आप यह कह सकते हैं कि यह क्षमता तो अन्य प्राणियों में भी मौजूद है, किन्तु ध्यान रहे, हर प्राणी प्रकृति द्वारा प्राप्त क्षमताओं की सीमा में कैद है। उसके दायरे के बाहर वे नहीं जा पाते।

मनुष्य की योनि कर्मप्रधान है। मनुष्य अपने कर्मों द्वारा अपने व्यक्तित्व का निर्माण करता है। जिन-जिन बातों में यह कर्म करने में स्वतन्त्र है, उनके प्रति ही इसका उत्तरदायित्व है। कर्म की स्वतन्त्रता ही इसे पाप-पुण्य का भागी बनाती है। अच्छे-बुरे में भेद करने के लिए इसे बुद्धि प्रदान की गई है और यह बुद्धि ही इसकी विशेषता है।

पशुओं की योनि भोगयानि है। पशुओं को कर्म करने की विवेकपूर्ण कोई विशेष स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं है। अतः न इनका उन कर्मों के प्रति विशेष उत्तरदायित्व है, और न पाप-पुण्य की इनके लिए व्यवस्था है।

शास्त्रीय दृष्टि में योग दर्शन और सांख्य दर्शन मनुष्य के लिए रचे गए हैं। मनुष्य में सभी आयु के आबालवृद्ध सम्मिलित हैं, चाहे पुरुष हों, चाहे स्त्री। सांख्य दर्शन के आचार्य ने अपने दर्शन के पहले सूत्र में जीवन के उद्देश्य का प्रतिपादन किया है। यह उद्देश्य हैं–

1. तीनों प्रकार के दुःखों से अत्यन्त निवृत्ति प्राप्त करना।

'अथ त्रिविध दुःखात्यन्त निवृत्तिः परमपुरुषार्थः।'

ये तीन प्रकार के दुःख आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक हैं। इनसे अत्यन्त निवृत्ति का नाम परम-पुरुषार्थ है। इनसे इतना छुटकारा मिलना चाहिए कि ये फिर न आकर घेरें। लेकिन यहां ध्यान देने वाली बात है कि जब तक मनुष्य शरीर रहेगा तब तक दुःख तो आते जाते रहेंगे, इनसे पूर्ण रूप से छुटकारा पाने का अर्थ है मुक्ति प्राप्त करना। कपिल मुनि जी का कहना है कि ज्ञान के बिना मुक्ति नहीं मिल सकती।

ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः।

योग दर्शन में मुक्ति की प्राप्ति को **कैवल्य** की प्राप्ति कहा गया है।

पुरुषार्थ शून्यानां गुणानां प्रतिप्रसवः कैवल्यं स्वरूप प्रतिष्ठा वा चितिशक्तिरिति

(४/३४)

तीनों दुःखों से छुटकारा पाना परम पुरुषार्थ है, और जिन कारणों से इस पुरुषार्थ में बाधा पहुँचती है, वे यदि नष्ट हो गए, तो फिर कैवल्य या मुक्ति की प्राप्ति हो जाएगी।

योग द्वारा इस मुक्ति को प्राप्त किया जाता है। योग द्वारा उन कारणों पर विजय प्राप्त की जाती है, जो हमें शरीर में बांधे हुए हैं। इस बन्धन से मुक्त होने के लिए हमें जानना होगा कि हमें शरीर में क्या बांधे हुए है, उससे हमें छुटकारा कब और कैसे मिल सकेगा।

दुःख और बन्धनों से मुक्त होने पर प्रकृति का आवरण हम पर से हट जाएगा। यह आवरण हमारे और परमात्मा के बीच में बाधक है। प्रकृति का आवरण हम दोनों को अलग किए हुए है। इसके अलग होते ही हम परमात्मा को प्राप्त कर लेते हैं। परमात्मा के सहज सम्पर्क में आना ही योग है।

हमारा शरीर और यह समस्त बाहरी जगत, प्रकृति के रूपान्तर से बना है। प्रकृति जड़ है, शाश्वत उपादान कारणत्व इसमें है। परमात्मा अपनी कला और अपने प्रयोजन से इस प्रकृति का सृष्टि-रचना में उपयोग करता है। प्रकृति में न रूप है, न रस है, न गन्ध, न स्पर्श, पर नियन्ता परमात्मा के हाथ में आकर इससे रूपवान्, गन्धवान्, स्पर्शवान्, सभी तरह का जगत् बन जाता है। जिसने इस धरती को बनाया है, उसी ने सूर्य, चन्द्रमा और आकाश के लाखों तारों को भी बनाया है। वह सर्वव्यापक सर्वज्ञ अन्तर्यामी, सच्चिदानन्द, ईश्वर है। ईश्वर अनादि और अनन्त है। जैसे प्रकृति सदा से

वर्तमान और कभी अन्त न होने वाली सत्ता है, ईश्वर भी सदा से विद्यमान, और सर्वदा रहने वाली सत्ता है।

ईश्वर के दर्शन उसके कृतित्व में अर्थात् उसकी सृष्टि में होते हैं। यह विशाल सृष्टि, आकाश के उपग्रह, ग्रह, नक्षत्र उसके परिचायक हैं। वन-उपवन के वृक्ष, लता, गुल्म, फूल और फल, उसका साक्षात्कार है। जन्तुओं, पशुओं, वनस्पतियों, इन सबकी शरीर रचना प्रभु के अस्तित्व का द्योतक है। साधक का अपना शरीर परमात्मा की कृति का अद्भुत परिचायक है। यह सृष्टि मिथ्या, छल, स्वप्न या अध्यास नहीं है। यह परमात्मा की कृति है। सृष्टि के ईश्वरीय नियम और सृष्टि रचना का सत्य प्रयोजन परमात्मा के तपस् से ओतप्रोत है।

मैं और मेरा परमेश्वर दोनों साथ-साथ अन्तःहृदय में विद्यमान हैं। हम दोनों साथ-साथ हैं अतः परमात्मा से मिलन अपने अन्तःप्रदेश में हो सकता है। इस प्रदेश को अन्तःगुहा कहते हैं। योग का उद्देश्य इस अन्तःगुहा में परमात्मा के सामीप्य और उसके सौहार्द का अनुभव और साक्षात् करना है। यह साक्षातकार साधक अपने चेतनता से, अपनी चिति से, अपनी चित् शक्ति से करता है। योग का उद्देश्य इस क्षमता को प्राप्त करना है कि शरीर की इन्द्रियों, प्राण और मन से परे होकर जीवात्मा अपनी चेतनता से प्रभु के दर्शन कर ले।

जब जीवात्मा अपनी इन्द्रियों, प्राण और मन के द्वारा प्रभु के दर्शन करता है तो वह अपने असली स्वरूप को भी नहीं पहचानता। इस अवस्था को बद्ध अवस्था कहते हैं। इस दासत्व का नाम वरुण की पाश में बंधना है। इन पाशों से छूटने में उसे कष्ट या क्लेश का अनुभव होता है। योग का उद्देश्य इस दयनीय दशा से छुटकारा दिलाना है। इस तरह योग का अभीष्ट उद्देश्य आत्मा का अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित होना और उसकी परमात्मा के स्वरूप में अवस्थिति का होना है।

योग एक विशिष्ट प्रकार का विज्ञान है जो पदार्थ, जीव तथा चेतना को

एक साथ लेकर चलता है तथा विज्ञान और आध्यात्म की खाई पर बांध का कार्य करता है। योग मनुष्य की गम्भीरता का विज्ञान है, मनुष्य की चेतना के विकास का विज्ञान है तथा मनुष्य की सम्भावनाओं का विज्ञान है।

योग एक वैज्ञानिक प्रणाली का भी नाम है। इस प्रणाली के विभिन्न मार्ग हैं जिनके द्वारा योग को साधा जा सकता है। ये मार्ग हैं–

1. कर्म योग
2. ज्ञान योग
3. राज योग
4. भक्ति योग
5. हठ योग
6. मन्त्र योग
7. लय योग
8. यन्त्र योग
9. तन्त्र योग

कर्म योग

केवल कर्म-समर्पण द्वारा ही साधे जा सकने वाले योग को कर्मयोग कहा जाता है। कर्मयोग का एक सुन्दर उदाहरण गीता में मिलता है। जब अर्जुन जी कौरवों की सेना में अपने ही बन्धुओं को देखकर युद्ध के लिए मना करते हैं तो श्रीकृष्णजी उन्हें कर्मयोग का महत्त्व समझाते हुए कहते हैं–

यज्ञार्थात् कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः।

तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसंगः समाचर॥

अर्थात्– यह संसार कर्म बन्धन में बंधा हुआ है, इसलिए हे अर्जुन! तू कर्म कर।

ज्ञान योग

ज्ञान द्वारा साधा जाने वाला योग ज्ञान योग कहलाता है। ज्ञान योग अनुसन्धान करने वाले विद्वानों का मार्ग है। ज्ञानयोग द्वारा अन्धकार में लिप्त मनुष्यों के ज्ञान चक्षु खुल जाते हैं।

राज योग

राजयोग रचनात्मक बुद्धि और उच्च आदर्श का मार्ग है। राजयोग द्वारा ही राजाओं को दैवी शक्ति प्राप्त होती है और उससे उनका सामञ्जस्य होता है।

भक्ति योग

भक्ति द्वारा साधा गया योग भक्ति योग कहलाता है। भक्ति में कोई जाति नहीं देखी जाती। जो भी व्यक्ति निष्ठा पूर्वक भक्ति करता है वह मोक्ष

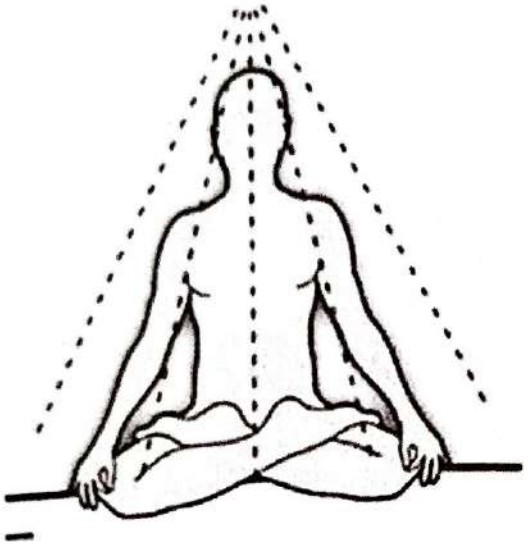

को प्राप्त होता है। श्रीकृष्णजी कहते हैं–

ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम्।

अर्थात्– जो मुझे श्रद्धा-भक्ति से स्मरण करते हैं, मेरी भक्ति करते हैं, वे मेरे हैं मैं उनका हूं।

हठ योग

तप द्वारा साधा जाने वाला योग हठ योग कहलाता है। इसमें साधक अपने हठ द्वारा तप करके साधता है। हठयोग से शारीरिक क्रियाओं में पूर्णता प्राप्त होती है।

मन्त्र योग

मन्त्रों द्वारा साधा गया योग मन्त्र योग कहलाता है। मन्त्रयोग द्वारा भावों में एक प्रकार की लहरें उत्पन्न होती हैं, जिससे इच्छित फल प्राप्त किया जा सकता है।

लय योग

लय द्वारा साधा गया योग लय योग कहलाता है। मानव शरीर के

चतुर्दल पद्म चक्र में कुंडलिनी शक्ति सुप्तावस्था में रहती है। योग द्वारा इस कुंडलिनी को जागृत किया जाता है। जागृत होने पर यह कुंडलिनी शक्ति मेरुदण्ड के अन्तर में स्थित ब्रह्मनाड़ी से होती हुई षट्चक्रों को भेद कर मस्तिष्क में स्थित परब्रह्म शिव तत्त्व में लीन हो जाती है। जिससे मनुष्य मोक्ष की प्राप्ति करता है।

यंत्र योग

यंत्र द्वारा साधा गया योग यन्त्र योग कहलाता है। यन्त्र धातु पर बनी आकृति तथा उसके गणितीय अंक शक्ति के स्रोत होते हैं। यन्त्र को खुली आंखों अथवा बन्द आंखों से मानसिक रूप से देखा जाता है। यन्त्र पर ध्यान लगाए रखने से एकाग्रता बढ़ती है तथा यन्त्र द्वारा शक्ति प्राप्त होती है।

तन्त्र योग

तन्त्रों द्वारा साधा गया योग तन्त्र योग कहलाता है। इस योग के अनुसार इच्छा एक शक्ति है जिसे मनुष्य ऊँचाईयों तक उठाकर परम तत्त्व को प्राप्त कर सकता है।

योग के लिए लोगों के मन में अनेक प्रकार की भ्रांतियां हैं। कुछ लोग भ्रम वश अथवा अल्प ज्ञान के कारण प्राणायाम अथवा आसन को योग का पर्यायवाची मानते हैं। परन्तु ये तो योग के अंग हें। योग के आठ अंग हैं–

1. यम
2. नियम
3. आसन
4. प्राणायाम
5. प्रत्याहार
6. धारण
7. ध्यान
8. समाधि

इन सब का विस्तृत उल्लेख हम आगे के अध्यायों में करेंगे। इन आठ अंगों में से आसन का अपना विशिष्ट महत्व है। आसन द्वारा मनुष्य अपनी शारीरिक शक्ति को बढ़ाता है। योगासन के कई लाभ हैं जैसे–

1. योगाासन द्वारा शरीर सुन्दर व सुडौल बनता है।
2. योगासन द्वारा विभिन्न रोगों का उपचार होता है।
3. योगासन द्वारा शरीर के विभिन्न तन्त्रों, संस्थानों की शक्ति का विकास होता है।
4. योगासन द्वारा प्राकृतिक ढंग से शरीर की मांस पेशियों एवं अस्थियों में लोच उत्पन्न होती है।
5. योगासन शरीर के विभिन्न अवयवों एवं संस्थानों में सन्तुलन उत्पन्न करता है।
6. योगासन द्वारा शरीर निरोगी रहता है।
7. योगासन द्वारा आयु तथा इन्द्रियों की शक्ति बढ़ती है।
8. योगासन द्वारा मानसिक व आध्यात्मिक विकास होता है।
9. योगासन द्वारा मन तथा मस्तिष्क आनन्दित तथा तनाव मुक्त रहता है।
10. योगासन द्वारा मन को एकाग्र करने की शक्ति का विकास होता है।
11. योगासनों द्वारा मनुष्य की प्राण-वायु को बढ़ाया जा सकता है।
12. योगासनों द्वारा मन, बुद्धि और अहंकार की चंचलता को वश में किया जाता है।

योगासन को योग का अंग क्यों माना गया? यदि कोई व्यक्ति बीमार है, उसके पेट में दर्द है अथवा किसी अन्य रोग से पीड़ित है तो वह अपने मन को एकाग्र करने में असमर्थ होता है और बिना मन को एकाग्र किए कोई भी कार्य संभव नहीं है। योगासनों द्वारा सभी रोगों का उपचार किया

जाता है जिससे मनुष्य निरोगी बनता है। उसका मन एकाग्र होता है और वह कोई भी कार्य आसानी से कर लेता है। इसलिए योगासनों को योग का एक अंग माना गया है।

किसी भी कार्य को सम्पन्न करने के लिए मनुष्य में तीन शक्तियों का होना अनिवार्य है। ये शक्तियां हैं–

1. ज्ञान शक्ति
2. क्रिया शक्ति
3. इच्छा शक्ति

ज्ञान शक्ति

ज्ञान शक्ति के भौतिक देवता सूर्य तथा अभौतिक देवता ब्रह्माजी कहे गए हैं। ज्ञान का अर्थ है प्रकाश और अज्ञान का अर्थ है अंधकार। सूर्य प्रकाश के देवता हैं। अत: वेदों की दृष्टि से सूर्य से बड़ा कोई आचार्य नहीं। सूर्य को ही ज्ञान का प्रदाता माना गया है। जहां सूर्य की रोशनी नहीं पहुंचती उसे पाताल कहा गया है जहां राक्षसों (तमोगुण प्रधान अथवा ज्ञानहीन) का निवास होता है। जब सूर्य दक्षिण दिशा में होता है अर्थात् दोपहर के समय तब सभी देवता सोते हैं तथा स्वर्ग के द्वार बन्द हो जाते हैं। अत: प्रात:काल सूर्य नमस्कार तथा सूर्य को अर्घ्य देने का विधान है।

क्रिया शक्ति

क्रिया शक्ति के भौतिक देवता अग्नि तथा अभौतिक देवता विष्णुजी कहे गए हैं। किसी भी कार्य को करने के लिए ऊर्जा की आवश्यकता होती है। ऊर्जा अग्नि द्वारा प्राप्त होती है। हमारे शरीर में जठराग्नि भोजन पचाकर ऊर्जा उत्पन्न करती है। जैसे वायु (ऑक्सीजन) के सम्पर्क में आते ही अग्नि प्रज्जवलित हो जाती है। वैसे ही हमारे शरीर में श्वसन तन्त्र (प्राण-वायु) अग्नि उत्पन्न करने में सहायता प्रदान करता है। इसी अग्नि के कारण हमारे शरीर का एक निश्चित तापमान होता है। जब व्यक्ति मृत्यु को प्राप्त होता

8

शरीर के विभिन्न तंत्रों पर आसनों तथा प्राणायामों का प्रभाव तथा शारीरिक शिक्षा और खेल के विशेष संदर्भ में आसनों का वर्गीकरण

(Effect of Asanas and Pranayama on Various System of the Body and Classification of Asanas with Special Reference to Physical Education and Sports)

मानव शरीर तथा मन को नियंत्रित तथा सुगठित रखने के लिए योगासनों को प्रयोग किया जाना चाहिए। योगासनों की सहायता से व्यक्ति न केवल शारीरिक रूप से प्रबलता प्राप्त कर सकता है बल्कि वह अपने मन को भी एकाग्र कर पाता है। योगासन ही एक व्यक्ति में एकाग्रता की क्षमता अथवा शक्ति को विकसित करते हैं। विभिन्न प्रकार के आसनों को करने से व्यक्ति की आयु लम्बी हो जाती है तथा उसके शरीर में लचीलापन आ जाता है।

मानव भोजन ग्रहण करके शक्ति प्राप्त करता है परन्तु यह शक्ति उसे केवल उसी स्थिति में प्राप्त हो सकती है जब उसके द्वारा ग्रहण किया गया भोजन भली प्रकार से पच जाएं। कुछ भोजन पच जाता है परन्तु कुछ अनपचा भोजन मानव के शरीर में ही रह जाता है, जो विभिन्न माध्यमों से बाहर निकलता है। योगासन के द्वारा वह सभी मार्ग जहां से मानव शरीर में पाएं जाने वाले व्यर्थ पदार्थ बाहर निकलते है, खुलते हैं। केवल यही नहीं, योगासन की सहायता से ही मानव शरीर के विभिन्न अंग हृष्ट-पुष्ट हो पाते है जिससे उसका शरीर किसी भी प्रकार से बीमार ही नहीं पड़ता।

आसन पर किसी भी प्रकार की चर्चा करने से पहले यह जान लेना

आवश्यक है कि वास्तव में आसन होते क्या हैं। आसन का अर्थ होता है शरीर को किसी ऐसी मुद्रा में रखना जिससे व्यक्ति का शरीर तथा उसका मन नियंत्रित अवस्था में आ सकें। साधारण शब्दों में यह कहा जा सकता है कि वह अवस्था जिसमें एक व्यक्ति का मन तथा शरीर शांत तथा आरामदायक महसूस करते है, आसन कहलाते हैं।

आसनों का अभ्यास करते समय एक व्यक्ति मुख्य रूप से पांच प्रकार की क्रियाओं को करता है, जो हैं-

(क) शरीर को भिन्न दिशाओं में मोड़ना या घुमाना,

(ख) क्षमता के अनुसार उस स्थिति को थोड़े समय के लिए बनाए रखना,

(ग) भिन्न-भिन्न गतियों तथा तरीकों से श्वास को लेना तथा छोड़ना,

(घ) शरीर के किसी भाग पर या किसी भी बाहरी वस्तु में अपना ध्यान केन्द्रित करना, तथा

(ङ) ध्यान केन्द्रों पर मंत्रों का जाप करना।

यदि कोई व्यक्ति आसनों के अभ्यास से पूर्ण रूप से लाभ प्राप्त करना चाहता है तो उसे उपरोक्त वर्णित सभी आवश्यक क्रियाओं का प्रयोग योगासन के उपरान्त करना चाहिए। यह आसन बहुत-ही श्रृद्धा तथा विश्वास के साथ किए जाने चाहिए जिसके परिणामस्वरूप व्यक्ति अपने मन की स्थिरता तथा शारीरिक स्वास्थ्य को प्राप्त कर सकता है। आसनों से एक व्यक्ति की आत्मा निर्मल तथा शुद्ध हो जाती है और उसे एक प्रकार की प्रसंन्नता का अनुभव होता है जिसके कारण वह अपने जीवन को प्रसन्नतापूर्वक व्यतीत कर पाता है।

आसनों का वर्गीकरण

किसी भी ज्ञान को सही प्रकार से समझने के लिए यह अति आवश्यक है कि उसे क्रम-बद्ध रूप से ग्रहण किया जाएं। इस प्रकार की विधि से किसी भी विषय वस्तु को समझना बहुत आसान तथा सरल हो जाता है। आसनों को भी सही प्रकार से समझने के लिए उन्हें क्रमबद्ध करना अति आवश्यक होता है।

भिन्न-भिन्न विशेषज्ञों ने आसनों को भिन्न प्रकार से वर्गों में विभाजित

किया है। एक मत के अनुसार आसनों को इस तथ्य के आधार पर विभाजित किया जाता है कि उनमें व्यक्ति के शरीर के किन-किन अंगों का प्रयोग हो रहा है तथा दूसरा यह कि उनको करने की कार्यप्रणाली क्या हैं। उदाहरण के लिए जिन आसनों को व्यक्ति अपने सिर को प्रयोग करके करता है, उन्हें सिर के आसन कहा जाता है। इसी प्रकार जिन आसनों को करने में वह अपनी बाजुओं को प्रयोग करता है, उन्हें बाजुओं के आसन कहा जाता है। कार्य प्रणाली के आधार पर आसनों को बैठकर, खड़े होकर तथा लेटकर किए जाने वाले आसनों में वर्गीकृत किया जाता है।

वहीं कुछ विशेषज्ञों का यह मत है कि आसनों को दो श्रेणियों में विभाजित किया जाना चाहिए जो हैं-ध्यानासन तथा स्वास्थ्यासन। जिन आसनों के अन्तर्गत एक व्यक्ति फर्श पर बैठकर अपने मन को स्थिर करने का प्रयास करता है, उन्हें ध्यानासन कहा जाता है जबकि वह आसन जिनमें व्यक्ति अपने शरीर के अंगों को हिलाता-डुलाता है, उन्हें स्वास्थ्यासन कहा जाता है।

योगासन के नियम

वैसे तो योगासनों का अभ्यास करना किसी भी प्रकार से कठिन नहीं होता और न ही इसके लिए किसी प्रकार के उपकरणों की आवश्यकता होती है, परन्तु यदि इनका अभ्यास सही प्रकार से अथवा उपर्युक्त तरीके से न किया जाएं तो योगासन लाभदायक के बजाय हानिकारक भी सिद्ध हो सकती है। इस अध्याय में कुछ ऐसे तथ्यों का वर्णन किया जा रहा है जिनका ध्यान रखना योगासन करते समय अति आवश्यक होता है।

योगभ्यास के लिए आवश्यक बातें

योग एक ऐसी वैज्ञानिक कला है जिसके अन्तर्गत मनुष्य अपनी आत्मा से साक्षात्कार करता है। योग मनुष्य की मानसिक शक्तियों को विकसित करने में सहायता करता है और यह देह में स्थित आत्म तत्व को प्रकाशित करने में भी सहायक होता है। क्योंकि योग को एक विज्ञान माना जाता है इसलिए यह अति आवश्यक है कि इस विज्ञान की कोई प्रयोगशाला अवश्य होगी और यह प्रयोगशाला होता है हमारा शरीर। इस प्रयोगशाला में कई उपकरण तथा यंत्र भी पाएं जाते हैं, जिनमें से मुख्य हैं-मन, बुद्धि, अंहकार

आदि। अभ्यास तथा वैराग्य वह दो साधन हैं जो यंत्र, उपकरणों को प्रयोग करने में बहुत सहायता प्रदान करते हैं।

योगासन का अभ्यास करने का अधिकार तथा योग्यता सभी व्यक्तियों के पास समान रूप से होती है। कोई भी ऐसा मापदंड नही है जिसके आधार पर यह निर्णय किया जा सकें कि कौन-सा व्यक्ति योगासनों का अभ्यास कर सकता है और कौन-सा नहीं। कई लोगों का यह मानना होता है कि योगासन के साधु व्यक्तियों के द्वारा ही किया जाता है, जोंकि बिलकुल गलत धारणा है। एक सामान्य व्यक्ति भी योगासन को अभ्यासित करने का उतना ही अधिकारी है जितने की साधु या संत।

योग की पूर्ण प्रक्रिया ही एक साधना होती है जिसको भली प्रकार से केवल उसी स्थिति में प्रयोग किया जा सकता है जब मनुष्य इन क्रियाओं से प्राप्त होने वाले लाभों पर विश्वास रखे। जो व्यक्ति इन क्रियाओं के उद्देश्यों को संदेह की नज़रों से देखता है, वह शायद ही इसके लाभों को प्राप्त कर पाता है।

योग में स्वयं को लीन करने के लिए यह अति आवश्यक है कि मनुष्य का देह पूर्ण रूप से शुद्ध तथा स्वस्थ हो और वह सात्विक भोजन ग्रहण करे। केवल वही व्यक्ति स्वयं को इस प्रकार से योगासन में लीन कर सकता है जिसके मन में श्रृद्धा तथा विश्वास हो।

योगासन के नियम

1. यौगिक क्रियाओं का अभ्यास करते समय मनुष्य का मन शांत होना चाहिए और उसके मन किसी भी व्यक्ति के लिए किसी प्रकार का मन-मुटाव या ईर्ष्या नहीं होनी चाहिए। यदि योगासनों का अभ्यास करते समय मनुष्य के मन में कोई दुर्विचार होगा तो वह कभी भी अपना ध्यान आसनों में केन्द्रित नहीं कर पाएंगा जिसके कारण योगासन का पूर्ण लाभ उसे प्राप्त नहीं हो पाएंगा। इसलिए यह अति आवश्यक है कि व्यक्ति उसी समय योगभ्यास करे जब उसका चित्त पूर्ण रूप से शांत हो और वह प्रसन्न चित्त हो।

2. ऐसा कोई नियम नहीं है जो यह बताएं कि व्यक्ति को योगासनों

का अभ्यास किस समय पर किया जाना चाहिए जिसके कारण कोई भी व्यक्ति योगासनों को किसी भी समय आरम्भ कर सकता है। परन्तु विज्ञानों ने शरद ऋतु को ही योगासन को आरम्भ करने का कुशल समय माना है। यौगिक क्रियाओं के लिए उत्तम समय होता है शौचादि से निवृत होने के पश्चात् परन्तु जलपान के पूर्व। इस प्रकार आसनों को उस समय पर किया जाना चाहिए जब मनुष्य का पेट खाली हो।

क्योंकि आज-कल का जीवन बहुत-ही भाग-दौड़ वाला है, जिसमें सुबह के समय पर यौगिक क्रियाओं को कर पाना सभी के लिए सम्भव नहीं होता। ऐसी स्थिति में दिन में किसी भी समय पर यौगिक क्रियाओं का अभ्यास किया जा सकता है परन्तु ऐसा समय चुना जाना चाहिए जिसके तीन या चार घंटे पहले व्यक्ति ने भोजन ग्रहण किया हो। ना ही हल्का खाना खाने के तुरन्त पश्चात् व्यक्ति को योगासन करना चाहिए। आसनों का अभ्यास करते समय कभी भी शरीर के साथ किसी भी प्रकार की कोई जबरदस्ती नहीं करनी चाहिए। यदि शरीर क्रियाओं को करने के लिए तैयार न हो तो कभी भी उनका अभ्यास नहीं करना चाहिए क्योंकि ऐसा करने से व्यक्ति को शारीरिक रूप से किसी भी प्रकार की लाभ प्राप्त नहीं होता बल्कि हानि ही हाथ लगेगी। यदि हो सके तो यही प्रयत्न करना चाहिए कि योगासन प्रतिदिन एक नियमित समय पर ही किए जाएं, चाहे वह समय सुबह का हो या शाम का।

3. यौगिक क्रियाओं का अभ्यास किसी ऐसे स्थान पर ही किया जाना चाहिए जहां पर वातावरण स्वच्छ हो तथा हवादार हो। वैसे तो किस स्थान पर क्रियाओं का अभ्यास करना है, यह बहुत कुछ तक इस बात पर निर्भर करता है कि मौसम किस प्रकार का है परन्तु गर्मियों के मौसम में इस उद्देश्य के लिए खुले मैदानों को ही चुना जाना चाहिए। इस प्रकार के स्थानों की उपलब्धता प्राय: शहरों में कम होती है इसलिए ऐसे स्थानों पर घर की छत को भी प्रयोग किया जा सकता है। सर्दियों के मौसम में, क्योंकि व्यक्ति के लिए घर से बाहर निकलकर घुले आसमान में क्रियाओं का अभ्यास करना बहुत कठिन हो जाता है इसलिए ऐसे वातावरण में बंद कमरों को यौगिक क्रियाओं का अभ्यास करने के लिए प्रयोग किया जा सकता है।

किसी भी प्रकार का तथा आकार का कमरा इसके लिए प्रयोग किया जा सकता है परन्तु यह अति आवश्यक है कि जो भी कमरा प्रयोग किया जाएं उसमें वायु तथा रोशनी की पूर्ण व्यवस्था होनी चाहिए, जिसके लिए उसमें पर्याप्त मात्रा में खिड़कियाँ तथा रोशनदान होने चाहिए। यह खिड़कियाँ इस प्रकार से खोली जानी चाहिए जिससे व्यक्ति के मुंह पर सीधे आकर हवा न लगे क्योंकि इस प्रकार की स्थिति में वह अपना ध्यान केन्द्रित नहीं कर सकता।

4. जिस भी स्थान को यौगिक क्रियाओं का अभ्यास करने के लिए प्रयोग किया जाएं, यह अति आवश्यक है कि उस स्थान की सतह पूर्ण रूप से समतल होनी चाहिए। इस प्रकार की सतह पर व्यक्ति दरी या चटाई बिछाकर क्रियाओं का अभ्यास कर सकता हैं। सर्दियों में यदि व्यक्ति चाहे तो वह चटाई के स्थान पर गर्म गद्दों को प्रयोग कर सकता है।

एक मनुष्य विभिन्न प्रकार के कार्यों को करन में सक्षम होता है परन्तु वह इन कार्यों को या भिन्न-भिन्न प्रकार की क्रियाओं को निरन्तर रूप से नहीं कर सकता। थोड़े समय के पश्चात् उसें शारीरिक थकान महसूस होने लगती है। यौगिक क्रियाओं का अभ्यास इस प्रकार से किया जाना चाहिए कि व्यक्ति उनको करने के पश्चात् शारीरिक थकावट महसूस न करे। जैसे ही व्यक्ति को लगे कि वह थकावट सी अनुभव करने लगा है तो उसे आसन को रोक देना चाहिए और थोड़े समय के लिए विश्राम करना चाहिए। क्योंकि आसनों के कारण मनुष्य के शरीर में उपस्थित नसें तथा नाड़ियां खींचती है और एक समय के पश्चात् वह थक जाती है। यदि उन्हें आराम न करवाया जाएं तो व्यक्ति को थकान सी महसूस होने लगती है। एक क्रिया का अभ्यास करने के पश्चात् व्यक्ति को कुछ समय के लिए विश्राम करना चाहिए जिससे उसकी नसों को आराम मिल सके। इसके पश्चात् ही उसे अगला आसन आरम्भ करना चाहिए। वैसे तो मनुष्य कितना समय विश्राम में व्यतीत करता है, यह इस बात पर निर्भर करता है कि व्यक्ति की आयु तथा शारीरिक क्षमता क्या हैं, परन्तु सामान्य नियम के अनुसार एक व्यक्ति को वास्तविक अभ्यास काल का कम से कम एक चौथाई समय विश्राम में लगाना चाहिए।

5. यौगिक क्रियाओं का अभ्यास करने से पहले यदि मनुष्य गर्म पानी से स्नान कर लें तो उसका शरीर लचीला हो जाता है जिसकी सहायता से वह अपने शरीर के विभिन्न अंगों को भिन्न-भिन्न दिशाओं में मोड़ पाता है। क्योंकि आसनों को करने के पश्चात् शरीर पर पसीना आ जाता है इसलिए यदि व्यक्ति को गर्मी सी महसूस हो तो वह आसनों का अभ्यास करने के पश्चात् ठंडे पानी से स्नान कर सकता है परन्तु यह क्रिया आसनों का अभ्यास करने के कम से कम पन्द्रह या बीस मिनट के अन्तराल के पश्चात् की जानी चाहिए।

ऐसा कोई भी नियम नही है जो यह स्पष्ट करे कि योगाभ्यास करते समय एक व्यक्ति को किस प्रकार के वस्त्रों को ग्रहण करना चाहिए परन्तु यह तथ्य भी मौसम तथा व्यक्ति की आयु के अनुरूप ही निश्चित किया जाता है। जितना सम्भव हो सके, यौगिक क्रियाओं का अभ्यास करते समय कम से कम वस्त्रों को पहनना चाहिए अन्यथा क्रियाओं का अभ्यास करने में व्यक्ति को कठिनाई हो सकती है। जितने भी वस्त्रों को पहना जाएं वह किसी भी प्रकार से न ही अधिक ढीले होने चाहिए और न ही अधिक कड़े। प्राय: पुरूषों के द्वारा योगाभ्यास के समय पाजामा या हाफ पैन्ट प्रयोग की जाती है जबकि महिलाएँ स्लेक्स को प्रयोग करना अधिक बेहतर समझती है।

6. यदि यौगिक क्रियाओं का अभ्यास सुबह के समय किया जाएं तो व्यक्ति को यह ध्यान रखना चाहिए कि आसनों को करने से पहले उसे कभी भी नाशता ग्रहण नहीं करना चाहिए, बल्कि आसनों का अभ्यास करने तथा नाशता ग्रहण करने के समय में कम से कम आधे घंटे का अंतराल अवश्य होना चाहिए। यदि इतनी लम्बी समयावधि के लिए रूक पाना सम्भव न हो तो व्यक्ति यौगिक क्रियाओं का अभ्यास करने के पांच मिनट के पश्चात् ही नाशता ग्रहण कर सकता है।

यदि आसनों को किसी बंद कमरें में किया जाएं तो कभी भी रोशनी के लिए वहां पर किसी ऐसे उपकरण को प्रयोग नहीं करना चाहिए जिसमें मिट्टी का तेल प्रयोग होता है। रोशनी के लिए ऐसे स्थानों पर मोमबत्ती या सरसों के तेल को प्रयोग किया जा सकता है।

कभी भी आसन करते समय किसी अन्य व्यक्ति के साथ बात नहीं करनी चाहिए और न ही किसी की बात पर हंसना चाहिए क्योंकि इस प्रकार से व्यक्ति का ध्यान योगासनों से हट जाता है और वह भली प्रकार से अपना ध्यान केन्द्रित नहीं कर पाता।

कभी भी योगासनों का अभ्यास करने के लिए किसी ऊंचे स्थान का प्रयोग नहीं करना चाहिए। हो सके तो आसन फर्श पर बैठकर या लेटकर ही किए जाने चाहिए। यदि किसी कारणवश इस प्रकार से फर्श पर बैठकर आसनों का अभ्यास करना सम्भव न हो तो ऐसी स्थिति में किसी ऊंचे स्थान को प्रयोग किया जा सकता है परन्तु ऐसा करते समय बहुत सावधानीपूर्वक कार्य करना चाहिए अन्यथा व्यक्ति क्षतिग्रस्त हो सकता है।

आसनों को कभी भी ऐसे स्थान पर नहीं करना चाहिए जहां पर गंदगी या बदबू हो क्योंकि ऐसे स्थानों पर ही प्राय: मक्खियाँ तथा मच्छर पाएं जाते हैं जो व्यक्ति को आसनों के समय ध्यान केन्द्रित नहीं करने देतें।

यदि किसी भी आसन को करते समय व्यक्ति को किसी प्रकार की कठिनाई का अनुभव हो तो उसे उसी समय अभ्यास को रोक देना चाहिए और किसी ऐसे व्यक्ति से परामर्श लेना चाहिए जिसे योगासनों का पूर्ण ज्ञान हो।

7. यौगिक क्रियाओं का अभ्यास करने वाले व्यक्ति को यह ध्यान रखना चाहिए कि योगासन एक ऑहिसक क्रिया होती है जिसको कभी भी इस प्रकार से नहीं करना चाहिए जिससे व्यक्ति को किसी प्रकार के झटके लगे। आसनों को बहुत-ही सजगता के साथ किया जाना चाहिए जिसके अन्तर्गत उसे अपने शरीर के सभी अंग भली प्रकार से खींचने तथा मोड़ने चाहिए। ऐसा करने के थोड़े समय के पश्चात् उसे अपने शरीर को बिलकुल शिथिल अवस्था में ले आना चाहिए। थोड़ा विश्राम करने के पश्चात् जब उसके श्वास अपनी स्वाभाविक स्थिति में पहुंच जाएं, केवल उसी समय उसे दूसरा आसन आरम्भ करना चाहिए।

8. कुछ योगासन करने में सरल होते हैं तो कुछ थोड़े जटिल। कभी भी यौगिक क्रियाओं का अभ्यास करने वाले व्यक्ति को जटिल क्रियाओं को शीघ्रता से अथवा आरम्भ में करने का प्रयास नहीं करना चाहिए। उसे

शरीर में लचीलेपन का गुण पैदा हो जाता है जिसके पश्चात् उनके लिए किसी भी प्रकार की शारीरिक क्रिया को कर पाना कठिन नहीं रह जाता।

चाहे जितनी भी अवधि के लिए आसनों का अभ्यास किया जाएं, उनकी समाप्ति सदैव प्राणायाम से ही की जानी चाहिए। परन्तु यह क्रिया भी किसी प्रकार से सरल नहीं है इसलिए इसे बहुत ही संयम के साथ किया जाना चाहिए।

यौगिक क्रियाओं को सही प्रकार से करने के लिए यह अति आवश्यक है कि मनुष्य सही प्रकार का भोजन ग्रहण करे। उचित आहार पर विशेष बल दिया जाता है क्योंकि योग पद्धति में आहार का विशेष महत्व होता है। जिस व्यक्ति को आहार के सिद्धान्तों का ज्ञान नहीं होता वह कभी भी यौगिक क्रियाओं की सहायता से लाभ प्राप्त नहीं कर सकता। आज का युग सभी प्रकार से विकसित हो चुका है परन्तु मनुष्य अपने आहार की तरफ कम से कम ध्यान देने लगा है। सभी व्यक्तियों को सात्विक भोजन ग्रहण करना चाहिए, जो बहुत ही सादा होता है। इस प्रकार का भोजन में मसालों की मात्रा नियंत्रित होती है तथा यह भोजन सभी प्रकार से बहुत पौष्टिक होता है। योगाभ्यास करते समय व्यक्ति को केवल तले हुए या भुने हुए पदार्थों को ही ग्रहण नहीं करना चाहिए बल्कि उसे फल व कच्ची सब्जियां भी खाना चाहिए क्योंकि उन्हीं में सबसे अधिक आवश्यक तत्व होते हैं। भोजन को सही मात्रा में ग्रहण करना भी अति आवश्यक होता है। भोजन को आवश्यकता से अधिक कभी भी नहीं खाना चाहिए और रात को सोने से पहले कम से कम दो घंटे पहले खाना खा लेना चाहिए जिससे सोने से पहले ही वह भली प्रकार से पच जाएं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि योगासनों को करने के लिए कुछ आवश्यक तथ्यों तथा नियमों का पूरा-पूरा ध्यान रखना पड़ता है और कभी भी इनका उल्लघंन करके यौगिक क्रियाओं को अभ्यासित करने का प्रयास नहीं करना चाहिए क्योंकि ऐसी स्थिति में हानि के सिवाएं कुछ प्राप्त नहीं होता।

भिन्न प्रकार के योगासन

भुजंगासन

सरल भाषा में इसे 'सर्प मुद्रा' कहा जाता है। सर्प को हमारे देश में शक्ति का प्रतीक माना जाता है। इस आसन के अन्तर्गत व्यक्ति को अपने आधार, यानि मेरूदंड के बल पर बैठना होता है और सिर को पूरी तरह से ऊपर की तरफ रखना होता है। जब व्यक्ति इस आसन को करता है तो उसका शरीर इस प्रकार की मुद्रा में लगता है जैसे कोई सर्प आक्रमण करने के लिए तैयार खड़ा हो। यही कारण है कि इसे भुजंगासन कहा जाता है।

विधिः

(क) व्यक्ति को फर्श पर इस प्रकार से उल्टा लेट जाना चाहिए कि उसके शरीर का भार उसके पेट पर आ जाएं।

(ख) इसके पश्चात् शरीर के दोनों कंधों के नीचे अपने हाथों को इस प्रकार से रखना चाहिए कि हाथों की अंगुलियाँ एक-दूसरे के बहुत समीप आ जाएं।

(ग) हाथ के निचले भाग को फर्श पर रख देना चाहिए और कोहनियों को दाईं तरफ रख देना चाहिए। इस समय व्यक्ति को अपने पांव के पंजों को पीछे की तरफ थोड़ा तानकर रखना चाहिए।

(घ) इसके पश्चात् हाथ की तलियों पर दबाव डालते हुए श्वास को अन्दर की तरफ खींचना चाहिए और उसके पश्चात् छाती को ऊपरी की तरफ उठाने का प्रयास करना चाहिए। छाती को इतनी ऊंचाई तक उठाना चाहिए कि उसकी नाभि से ऊपर का सारा भाग हवा में उठ जाएं।

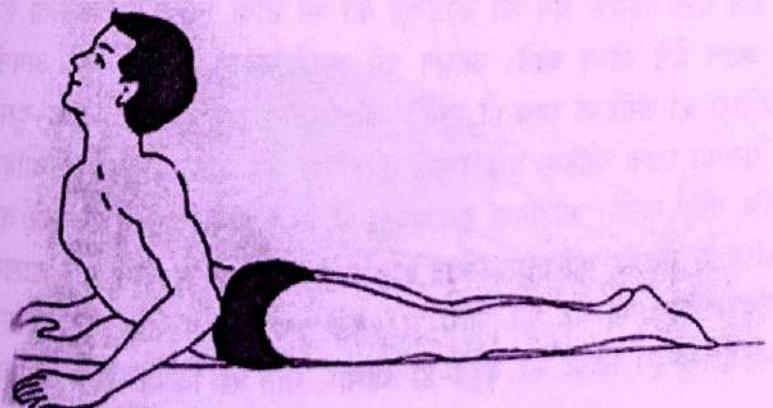

(ङ) थोड़े समय के पश्चात् श्वास छोड़ते हुए शरीर को नीचे की तरफ ले आना चाहिए और थोड़ा रूकने के पश्चात् पुनः इसका अभ्यास करना चाहिए।

लाभः

(क) इस आसन में मनुष्य की रीढ़ की हड्डी अथवा मेरूदंड लचीली बन जाती है जिसके कारण कमर की मांसपेशियाँ स्वसथ हो जाती है तथा किसी भी कारणवश पीठ में होने वाला दर्द भली प्रकार से ठीक हो जाता है।

(ख) इस आसन से व्यक्ति के पेट के सभी अंग आन्तरिक रूप से सक्रिय हो जाते हैं जिसके कारण पाचन संस्थान कुशलतापूर्वक क्रिया कर पाता है और मनुष्य को कब्ज, गैस आदि जैसे रोगों से बचाता है।

(ग) यदि किसी मनुष्य की रीढ़ की हड्डी में किसी भी प्रकार की कोई दर्द या कठिनाई हो तो उसे यह आसन करना चाहिए।

(घ) इस आसन का नियमित अभ्यास एक व्यक्ति के पेट में होने वाली सभी प्रकार की गड़बड़ियों को दूर रखता है तथा पेट के सभी अंगों को स्फूर्ति प्रदान करता है।

(ङ) व्यक्ति के शरीर के कई भागों, जैसे-सीने, गर्दन तथा सिर इस आसन की सहायता से सक्रिय हो पाते हैं तथा उनका व्यक्तित्व अधिक आकर्षित करने वाला हो जाता है।

(च) महिलाओं के लिए यह आसन बहुत-ही उपयोगी होता है क्योंकि इस योग की सहायता से प्रायः महिलाओं में पाई जाने वाली अनियमित रूप से होने वाले मासिक धर्म की कठिनाई को भी ठीक किया जा सकता है।

ध्यान देने योग्य बातेंः आसन को करते समय व्यक्ति को अपनी हथेलियों को शरीर के साथ ही रखनी चाहिए और अंगुलियों को एक-दूसरे से सटाकर रखना चाहिए। उसे अपनी कोहनियों को मोड़ कर रखना चाहिए नाकि सीधा करके। कोहनियां इस प्रकार से रखी होनी चाहिए जिससे वह व्यक्ति के मेरूदंड की तरफ स्थित हो। हाथों पर कम से कम भार डालना चाहिए। कभी भी पेट को नाभि से आगे वाले हिस्से तक नहीं उठाना चाहिए। सम्पूर्ण क्रिया को बहुत-ही धीमी गति से किया जाना चाहिए।

जिस समय व्यक्ति सिर को हवा में ऊपर की तरफ उठा रहा हो तो उस समय उसे अपने पांवों को फर्श पर ही टिका कर रखना चाहिए। कभी भी आसन को करने में जल्दबाजी नहीं करनी चाहिए। इस आसन का अभ्यास चार बार से अधिक नहीं करना चाहिए।

पश्चिमोत्तानासन

विधिः (क) व्यक्ति को फर्श पर बैठ जाना चाहिए और अपने दोनों पैरों को आगे की तरफ सीधे फैला देने चाहिए।

(ख) इसके पश्चात् उसे अपने हाथों को बिलकुल सीधा रखते हुए आगे की तरफ झुकना चाहिए और अपने दोनों पैरों के अंगूठों को पकड़ने का प्रयास करना चाहिए। इस समय उसे अपना सिर दोनों घुटनों के बीच में रखना चाहिए तथा हाथों तथा पैरों को बिलकुल सीधा रखना चाहिए।

(ग) कुछ समय के पश्चात् व्यक्ति को अपने नाक से पैरों के घुटनों को छूने का प्रयत्न करना चाहिए।

लाभः (क) इस व्यायाम की सहायता से व्यक्ति के पेट में पाएं जाने वाले सभी प्रकार के विकारों तथा रोगों से छुटकारा प्राप्त हो पाता है क्योंकि इस व्यायाम के अन्तर्गत मुख्य रूप से पेट के स्नायुओं पर प्रभाव पड़ता है।

(ख) व्यक्ति का मेरूदंड तथा स्नायु संस्थान सक्रिय हो जाते हैं जिसके कारण उनमें पाएं जाने वाले सभी विकार तथा सभी प्रकार की अव्यवस्थाएँ ठीक हो जाती हैं।

(ग) इस आसन की सहायता से क्लोम तथा नलिकाहीन संस्थान की ग्रंथियाँ सक्रिय हो जाती है जिसके कारण उनके द्वारा इन्सुलिन उचित मात्रा

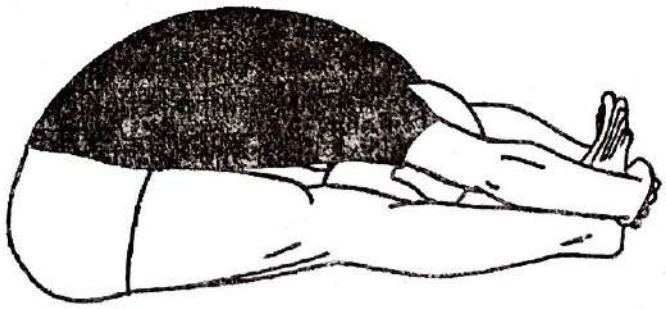

में निकलती है। यही कारण है कि इस आसन मधुमेह के रोगियों के लिए बहुत उपयोगी माना जाता है।

(घ) पीठ के दर्द तथा मेरूदंड में पाई जाने वाली छोटी-मोटी गड़बड़ियाँ इस आसन की सहायता से दूर की जा सकती है।

ध्यान देने योग्य बातें: इस आसन को करते समय कभी भी व्यक्ति को अपना पेट बाहर की तरफ नहीं रखना चाहिए बल्कि उसे अंदर की तरफ खींचे रखना चाहिए। इस आसन को गर्भवती महिलाओं द्वारा नहीं किया जाना चाहिए। इसे प्रतिदिन अधिकतम चार बार ही किया जाना चाहिए। यह आसन किसी भी प्रकार से आसान नहीं होता इसलिए यदि आरम्भ में इसे कुशलतापूर्वक नहीं किया जा सकें तो कभी भी हतोत्साहित नही होना चाहिए और निरन्तर प्रयास करते रहना चाहिए।

उत्तानपादासन

विधि: (क) आरम्भ में व्यक्ति को फर्श पर बिलकुल सीधा लेट जाना चाहिए। इस समय उसके दोनों हाथ उसके शरीर के समीप होने चाहिए तथा उसकी टांगे भली प्रकार से तनी होनी चाहिए।

(ख) इसके पश्चात् व्यक्ति को श्वास भरना चाहिए और धीमी गति से दोनों टांगों को ऊपर की तरफ उठाना चाहिए। ऐसा उस समय तक करना

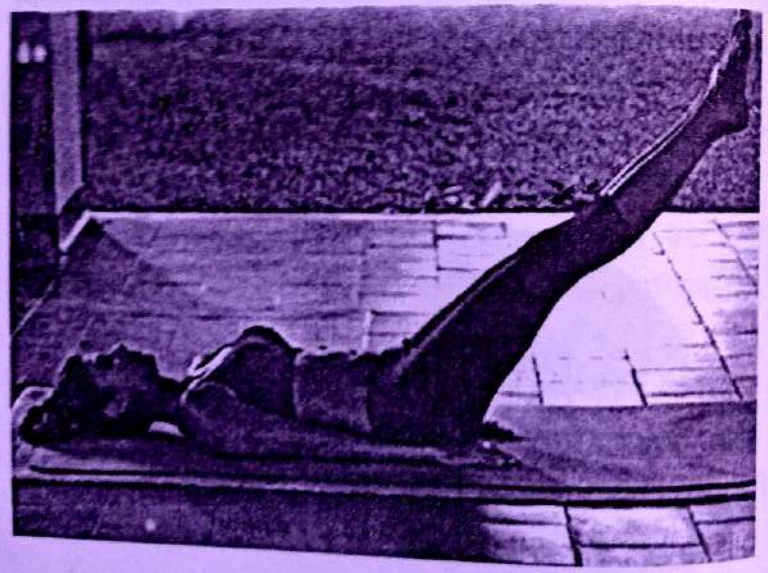

चाहिए जब तक व्यक्ति की कमर भूमि को छू न ले।

(ग) पैरों को उतने समय के लिए हवा में उठा कर रखना चाहिए जितने में व्यक्ति अपने श्वासों को रोक सके।

(घ) जैसे ही उसे लगे कि अब उससे अपने श्वासों को ओर समय के लिए रोका नहीं जा रहा तो उसे धीरे-धीरे अपने पैरों को नीचें की तरफ ले आना चाहिए और शरीर को ढ़ीला छोड़ते हुए श्वास को बाहर निकाल देना चाहिए।

लाभ: (क) यह आसन पेट की मांसपेशियों को सक्रिय कर देता है। इसकी सहायता से पेट के सभी रोग ठीक हो जाते हैं।

(ख) इस आसन से व्यक्ति की टांगें तथा कमर भी मजबूत हो जाते हैं जिससे वह निरोग हो पाता है।

(ग) इस आसन से मानव को केवल शारीरिक लाभ ही प्राप्त नहीं होते बल्कि उसके विचार भी शुद्ध तथा निर्मल हो जाते हैं।

(घ) पुरूषों में पुरूषत्व पैदा करने में यह आसन विशेष भूमिका निभाता है।

(ङ) महिलाओं के लिए भी इस आसन का विशेष महत्व होता है। स्त्रियों के गुप्त अंगों में पाएं जाने वाले सभी प्रकार के रोग इस आसन की सहायता से ठीक हो जाते है।

ध्यान देने योग्य बातें: इस आसन का एक दिन में पांच बार से अधिक अभ्यास नहीं करना चाहिए।

पद्मासन

पद् का अर्थ होता है कमल। जब कोई मनुष्य इस आसन को करता है तो उसकी आकृति बिलकुल कमल के समान प्रतीत होती है, यही कारण है कि इस आसन को पद्मासन कहा जाता है। यही वह आसन है जिसका प्रयोग महात्मा बुद्ध अधिक किया करते थे और इसी आसन में बैठकर उन्हें सिद्धि प्राप्त हुई थी।

विधि: (क) सबसे पहले व्यक्ति को फर्श पर बैठ जाना चाहिए और इस समय उसे अपनी टांगे बिलकुल सीधी रखनी चाहिए और दोनां पैरों को एक-दूसरे से मिलाकर रखना चाहिए।

(ख) उसके बाद उसे अपना दायां पैर बाईं जांघ पर तथा बायां पैर दाईं जांघ पर इस प्रकार से रखना चाहिए कि दोनों पैरों की ऐड़ियां उसके पेट के बिलकुल समीप स्थित हो जाएं।

(ग) उसे अपने दोनों हाथों को घुटनों पर बिलकुल सीधे रखना चाहिए। उसे अपना बायां हाथ बाएं घुटने पर तथा दायां हाथ दाएं घुटने पर रखना चाहिए। हाथों को इस प्रकार से रखना चाहिए कि हाथों के अंगूठों के सिरे तर्जनी अंगुली के सिरों को छू रहे हो।

(घ) इस समय उसे अपनी कमर, छाती तथा सिर भी बिलकुल सीधे रखने चाहिए। व्यक्ति अपनी आंखों को खुला या बंद, किसी भी स्थिति में रख सकता है।

लाभः (क) यह आसन पाचन शक्ति को विकसित करने में विशेष लाभ प्रदान करता है, जिसके कारण व्यक्ति को भूख अधिक लगने लगती है।

(ख) क्योंकि इस आसन से व्यक्ति के गुर्दे के आस-पास की नसें खींचती है इसलिए उनमें पाए जाने वाले विभिन्न प्रकार के विकार काफी हद तक ठीक हो पाते हैं।

(ग) इस आसन से व्यक्ति में एकाग्रता शक्ति का विकास हो पाता है।

(घ) यह आसन व्यक्ति को मानसिक रूप से प्रबल बनाने में सहायता प्रदान करता है।

(ङ) इससे रीढ़ की हड्डी मजबूत तथा प्रबल हो पाती है।

(च) इस आसन को करने से व्यक्ति स्फूर्ति तथा चुस्त महसूस करने लगता है।

ध्यान रखने योग्य बातें: इस आसन को करते समय व्यक्ति को अपनी आंखें दोनों भौहों के बीच वाले स्थान पर या नाक के आगे वाले भाग में केन्द्रित करनी चाहिए। इस आसन का अभ्यास कम से कम पन्द्रह मिनट के लिए किया जाना चाहिए।

पद्मासन एक आधार आसन होता है, जिसे थोड़ी से परिवर्तन के साथ करने से दूसरे आसन को किया जा सकता है। यदि इस आसन में व्यक्ति अपने हाथों को घुटनों पर रखने के स्थान पर फर्श पर रखता है तो उस आसन को उत्थित पद्मासन कहा जाता है। इसके पश्चात् व्यक्ति अपने हाथों की अंगुलियों तथा उसके पंजों पर अपने शरीर का भार डालते हुए उसे ऊपर की तरफ उठाता है, जिससे वह एक झूले सी आकृति प्राप्त कर लेता है। वह थोड़े समय के लिए इसी अवस्था में अपने शरीर को रखता है।

सुखासन

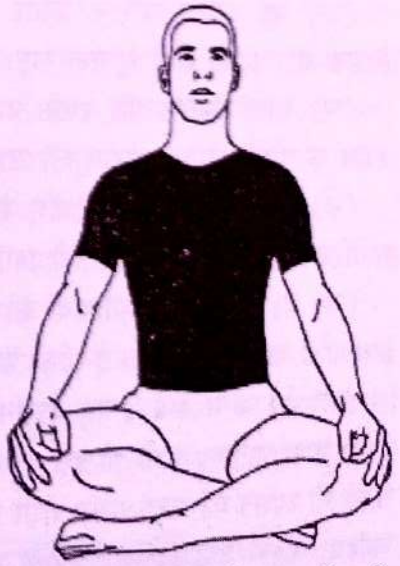

इस आसन को दर्जी की सीट भी कहा जाता है क्योंकि यह मनुष्य के शरीर के निचले अंगों से संबंधित होता है। इस प्रकार की अवस्था में व्यक्ति स्वयं को बहुत सुख तथा आरामदायक स्थिति में महसूस करता है। यह आसन एक कमजोर व्यक्ति को करना चाहिए क्योंकि इससे अधिक मात्रा में शक्ति तथा ताकत का विकास हो पाता है।

विधिः (क) व्यक्ति को इस प्रकार से फर्श पर बैठना चाहिए कि उसका सीधी टांग की एड़ी उसकी बायीं जांघ के नीचे रहें तथा बायीं टांग

की ऐड़ी दाईं जांघ के नीचे।

(ख) दोनों हाथों को घुटनों पर इस प्रकार से रखना चाहिए कि हथेलियाँ घुटनों को छू रही हो।

(ग) इस समय रीढ़ की हड्डी, ग्रीवा तथा सिर को बिलकुल सीध में रखना चाहिए।

(घ) व्यक्ति को अपनी आंखें नाक के आगे वाले भाग पर टिका देनी चाहिए पर कभी भी शरीर को अधिक तानना नहीं चाहिए।

(ङ) जब व्यक्ति को थकावट-सी महसूस होने लगें तो उसे अपनी इस क्रिया को अपनी दूसरी टांग की सहायता से करना चाहिए।

लाभः (क) इस आसन से सुख की प्राप्ति हो पाती है।

(ख) इस आसन को समाधि लगाते समय प्रयोग किया जा सकता है।

(ग) यह आसन किसी भी प्रकार से शरीर के किसी भी अंग पर अधिक दबाव नहीं डालता जिसके कारण बहुत कम अंग ही थकते है।

(घ) पाचन संस्थान के सभी अंग इस आसन की सहायता से सक्रिय हो जाते हैं जिसके कारण पाचन क्रिया बिलकुल सही हो जाती है।

(ङ) यह आसन विभिन्न प्रकार की ग्रंथियों को प्रभावित करता है जिसके कारण वह सभी सुचारू रूप से कार्य करना आरम्भ कर देते हैं।

(च) रक्त संचरण तथा श्वास संस्थानों में पाई जाने वाली विभिन्न प्रकार के दोषों को इस आसन की सहायता से ठीक किया जा सकता है।

(छ) इस आसन से स्नायु तंत्र शांत हो जाता है जिससे मनुष्य को शारीरिक मजबूती तथा शक्ति की प्राप्ति हो पाती है।

(ज) यह आसन उन व्यक्तियों को विशेष रूप से करना चाहिए जिनके हाथों-पैरों के जोड़ों में जकड़न की समस्या हों।

ध्यान देने योग्य बातें : यह आसन सदैव किसी समतल स्थान पर ही किया जाना चाहिए। कभी भी इसे करने में जल्दीबाजी नहीं करनी चाहिए। कभी भी आसन को करते समय शरीर तथा रीढ़ की हड्डी को झुकाना नहीं चाहिए, बल्कि उन्हें बिलकुल सीधा रखना चाहिए। आसन इस प्रकार से किया जाना चाहिए जिससे शरीर पर अधिक तनाव उत्पन्न न हो।

श्वासन

शव अर्थात मृत शरीर। साधारण भाषा में इस आसन को मृत्यु आसन भी कहा जाता है। इस प्रकार के आसन में व्यक्ति फर्श पर इस प्रकार से लेटता है जैसे उसके शरीर में प्राण ही न हों। यही कारण है कि इसे शवासन के नाम से जाना जाता है। यह आसन अन्य सभी आसनों का अभ्यास करने के पश्चात् या विश्राम के लिए बीच-बीच में करना चाहिए। इस आसन का मुख्य उद्देश्य मनुष्य के मन तथा उसके शरीर को एक-दूसरे से अलग करना होता है। इससे मन तथा शरीर, दोनों को ही लाभ प्राप्त होता है।

विधिः (क) सबसे पहले व्यक्ति को फर्श पर इस प्रकार से लेट जाना चाहिए जिससे उसके सम्पूर्ण शरीर का भार उसकी पीठ पर चला जाएं।

(ख) हथेलियों को थोड़ा ऊपर की तरफ रखना चाहिए और उन्हें इस प्रकार से फर्श पर रखना चाहिए कि वह जांघों से ऊपर रहे।

(ग) दोनों मुटिठयों को कस कर रखना चाहिए तथा व्यक्ति को अपनी टांगें बाहर की तरफ खींचकर रखनी चाहिए। टांगों को कभी भी एक-दूसरे के साथ जोड़ना नहीं चाहिए बल्कि उन्हें फैला कर तथा एक-दूसरे से दूर ही रखना चाहिए।

(घ) श्वास लेने की क्रिया को बहुत ही धीमी गति के साथ किया जाना चाहिए। यह क्रिया एक लयबद्धता के साथ की जानी चाहिए।

(ङ) शरीर के सभी अंगों को बिलकुल भी कड़ा नहीं रखना चाहिए बल्कि उन्हें बिलकुल ढ़ीला छोड़ देना चाहिए।

(च) कुछ समय के लिए अपना ध्यान ईश्वर में केन्द्रित करने का प्रयास करें और थोड़े समय के पश्चात् खड़े हो जाएं।

लाभः (क) यह आसन उन व्यक्तियों के द्वारा किया जाना चाहिए जो किसी प्रकार के रोग से हाल ही में मुक्त हुए हों क्योंकि यह आसन उनके शरीर के विभिन्न अंगों को आराम पहुंचाने में बहुत सहायता प्रदान करता है।

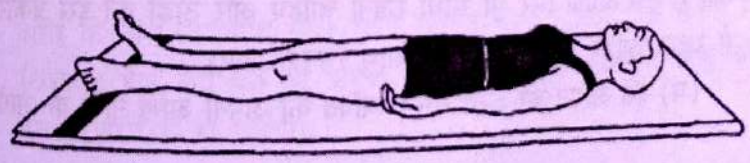

(ख) मांसपेशियाँ तथा स्नायु पूर्ण रूप से आराम प्राप्त करने के पश्चात् सक्रिय हो जाती है और उनमें नई शक्ति पैदा हो जाती है जिससे वह अपना कार्य भली प्रकार से कर पाते हैं।

(ग) इस आसन की सहायता से निम्न रक्तचाप, फेफड़ों तथा हृदय संबंधित रोगों से निजाद प्राप्त करने में सहायता मिलती है।

(घ) इस आसन को करने के पश्चात् व्यक्ति में नई ताकत तथा जोश का विकास हो पाता है जिससे वह सभी कार्यों को स्फूर्ति के साथ कर पाता है।

(ङ) आज के भाग-दौड़ वाले जीवन में यह आसन मनुष्य के मन को शांति तथा आराम प्रदान करने का कार्य करता है।

ध्यान देने योग्य बातें: इस आसन को करते समय कभी भी शरीर के अंगों को कड़ा करके नहीं रखना चाहिए अन्यथा उन्हें आराम प्रदान नहीं किया जा सकता। श्वसन क्रिया को अधिक तीव्रता के साथ नही करना चाहिए और न ही इसे बहुत धीमी गति से करना चाहिए। यह आसन देखने में जितना सरल प्रतीत होता है, वास्वत में यह इतना सरल नहीं होता। इसे सही प्रकार से करने के लिए कड़े अभ्यास की आवश्यकता होती है और कभी भी आरम्भिक चरण में इसे अधिक समय के लिए नहीं करना चाहिए।

बद्ध पद्मासन

विधि: (क) इस आसन को करने के लिए व्यक्ति को फर्श पर आलती-पालथी लगाकर बैठ जाना चाहिए।

(ख) इसके पश्चात् उसे अपने दायें हाथ को पीठ के पीछे से लाना चाहिए और अपने दायें पैर का अंगूठें को पकड़ना चाहिए। इसी तरह उसे अपने बाएं हाथ को पीठ के पीछे से लाते हुए उसकी सहायता से अपने बाएं पैर का अंगूठा पकड़ना चाहिए।

(ग) इस समय व्यक्ति को अपनी छाती बिलकुल तान कर रखनी चाहिए। उसे अपना सिर भी सीधा रखना चाहिए और ठोड़ी को इस प्रकार से रखना चाहिए कि वह गले के साथ चिपक जाएं।

(घ) इस आसन को करते समय व्यक्ति को अपनी आंखें नाक के आगे

वाले भाग पर केन्द्रित कर देना चाहिए।

लाभ: (क) इस आसन की सहायता से पीठ तथा स्नायुओं में रक्त संचरण की क्रिया सही प्रकार से हो पाती है जिससे पीठ के विभिन्न प्रकार के रोगों से छुटकारा प्राप्त हो पाता है।

(ख) पीठ में पाई जाने वाले सभी प्रकार के दोषों से मुक्ति इस आसन का अभ्यास करने से प्राप्त की जा सकती है।

(ग) इस आसन से हाथों तथा पैरों के स्नायु स्वस्थ तथा शक्तिशाली हो पाते हैं।

(घ) आंतों के सभी प्रकार के रोग इस आसन की सहायता से ठीक किए जा सकते हैं।

(ङ) इस आसन की सहायता से कई प्रकार के क्षय रोग भी ठीक हो जाते हैं।

ध्यान रखने योग्य बातें: इस आसन को करते समय व्यक्ति को अपने शरीर के अंग बिलकुल सीधे रखने चाहिए अन्यथा उनमें सही प्रकार से खिंचावट पैदा नहीं की जा पाएंगी और न ही पर्याप्त मात्रा में ऊर्जा की उत्पति शरीर में हो पाएंगी।

सिद्धासन

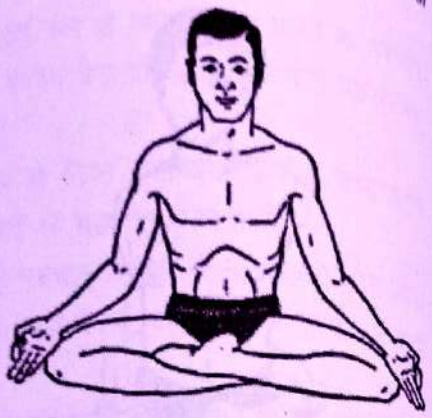

इस आसन को सिद्धासन इसलिए कहा जाता है क्योंकि इसके द्वारा एक मनुष्य को विशेष प्रकार की सिद्धियों की प्राप्ति हो पाती है। इसे सर्वश्रेष्ठ आसनों में से एक माना जाता है।

विधि: (क) सर्वप्रथम व्यक्ति को फर्श पर अपने पैरों को खोलकर बैठ जाना चाहिए।

(ख) उसके पश्चात् उसे अपने बाएं पैर की ऐड़ी को गुर्दे तथा जनेन्द्रिय के मध्य में रखना चाहिए। इसी प्रकार दाहिने पैर की ऐड़ी को भी गुदा तथा जनेन्द्रिय के पास इस प्रकार से रखना चाहिए कि जनेन्द्रिय पर किसी भी प्रकार से कोई दबाव न पड़े।

(ग) दोनों पैरों के निचले भागों को जांघ के बीच में रखना चाहिए।

(घ) हथेली को ऊपर की तरफ इस प्रकार से रखना चाहिए कि दोनों हाथ व्यक्ति की गोद में आ जाएं। इस अवस्था में आंखों को खुला भी रखा जा सकता है तथा बंद भी किया जा सकता है।

(ङ) इस समय व्यक्ति को अज्ञाचक्र में ध्यान केन्द्रित करने का प्रयास करना चाहिए।

लाभ: (क) इस आसन की सहायता से मानव के शरीर में उपस्थित नाड़ियाँ शुद्ध हो जाती है।

(ख) इस आसन का अभ्यास करने से मनुष्य को एक शक्ति प्राप्त हो पाती है जिसकी सहायता से वह अपना ध्यान एकाग्र कर पाता है।

(ग) यह आसन विभिन्न प्रकार के रोगों से मुक्ति दिलाने में सहायता करता है।

(घ) इस आसन की सहायता से एक मनुष्य के विचार भी शुद्ध तथा पवित्र हो जाते है। ऐसा व्यक्ति भोग विलास के जीवन के प्रति कभी भी आकर्षित नहीं होता।

(ङ) इस आसन की सहायता से एक व्यक्ति में मानसिक शक्तियों का विकास हो पाता है और उसकी स्मरणशक्ति में भी वृद्धि हो पाती है।

ध्यान देने योग्य बातें: सिद्धासन सबसे श्रेष्ठ आसन माना जाता है और यह केवल महापुरूषों द्वारा ही बिना किसी कठिनाई के किया जा सकता है। इस आसन को कभी भी हठपूर्वक नहीं करना चाहिए क्योंकि उस स्थिति में इससे हानि प्राप्त होने की संभावनाएँ बढ़ जाती है। इस आसन का अभ्यास पांच मिनट से तीन घंटे तक की अवधि के लिए किया जा सकता है।

गोमुखासन

गोमुख का अर्थ होता है गाय का मुंह। इसे गोमुखासन इसलिए कहा जाता है क्योंकि इसमें व्यक्ति के पैर बिलकुल गाय के मुंह जैसे प्रतीत होते हैं।

विधि: (क) सबसे पहले व्यक्ति को अपनी दोनों टांगों को फैलाते हुए बिलकुल सीधा बैठ जाना चाहिए।

(ख) इसके पश्चात् उसे अपने हाथों को शरीर के आस-पास लगा देना चाहिए।

(ग) उसे अपने बाएं पैर के घुटने को मोड़कर दाएं पैर के नीचे से

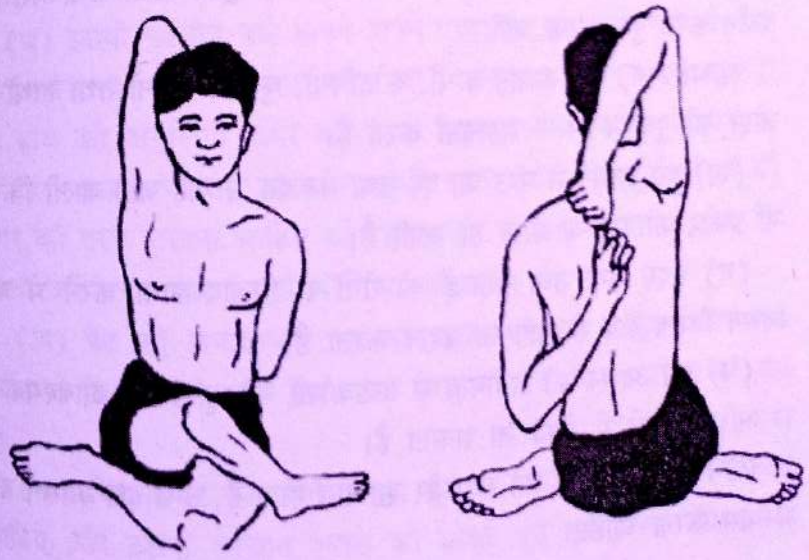

निकालना चाहिए और फिर ऐड़ी को नितम्ब के बहुत समीप ले आना चाहिए।

(घ) इसके पश्चात् उसे अपने दाएं पैर को घुटने से मोड़ देना चाहिए और बाएं पैर के ऊपर से दूसरी तरफ ले जाते हुए अपनी ऐड़ी को बाएं नितम्ब के बिलकुल समीप ले जाना चाहिए। इस समय उसे अपने बाएं घुटने से ऊपर दाएं घुटना को ले जाना चाहिए तथा दोनों पैरों के निचले भागों को ऊपर की तरफ रखना चाहिए।

(ङ) इसके पश्चात् उसे अपनी बाएं हाथ की कोहनी को मोड़कर नीचे से पीछे की तरफ ले जाना चाहिए और पीठ के साथ चिपका देनी चाहिए।

(च) फिर उसे अपने दाहिने हाथ को ऊपर की तरफ उठाना चाहिए और उस समय तक उठाना चाहिए जब तक वह कान की सीध में न आ जाएं। इसके पश्चात् उसे कोहनी से मोड़कर पीछे से पीठ पर टिका देना चाहिए।

(छ) दोनों हाथों की अंगुलियों को इस प्रकार से पकड़ना चाहिए जैसे दो हुक्कें पकड़ी हुई हो।

(ज) इस समय व्यक्ति को अपना सिर तथा मेरूदंड बिलकुल सीधे रखने चाहिए और अपने सीने को भली प्रकार से तान कर रखना चाहिए।

(झ) कुछ समय के पश्चात् इस क्रिया को दूसरे हाथों तथा पैरों को प्रयोग करते हुए करना चाहिए।

लाभः (क) यह आसन कंधों, कोहनियों, घुटनों, टखनों तथा हाथों के जोड़ों को पुष्ट बनाने में सहायता करते है।

(ख) इस आसन से पीठ का दर्द तथा मेरूदंड में पाई जाने वाली किसी भी प्रकार की समस्या ठीक हो जाती है।

(ग) हृदय रोगों तथा फेफड़ें के रोगों से निजाद प्राप्त करने में यह आसन विशेष रूप से सहायता प्रदान करता है।

(घ) इस आसन की सहायता से अंडकोशों की वृद्धि को आवश्यकता से अधिक बढ़ने से रोका जा सकता है।

(ङ) जिन व्यक्तियों को बवासीर का रोग होता है, उन्हें इस आसन का अभ्यास करना चाहिए।

ध्यान देने योग्य बातें: इस आसन को करते समय व्यक्ति को अपना सिर, पीठ तथा मेरूदंड एक ही सीध में रखने चाहिए। उसे अपने सीने को भली प्रकार से तानकर रखना चाहिए। इस आसन को आधा मिनट से तीन मिनट की अवधि तक किया जा सकता है।

ताड़ासन

ताड़ का अर्थ होता है वृक्ष और इस आसन को ताड़ासन इसीलिए कहा जाता है क्योंकि इसमें व्यक्ति का शरीर बिलकुल पेड़ के समान प्रतीत होता है।

विधिः (क) सबसे पहले व्यक्ति को एक पेड़ के समान बिलकुल सीधे खड़े हो जाना चाहिए। इस समय उसे अपना शरीर कड़ा करके रखना चाहिए और अपने दोनों पैरों के पंजों को एक-दूसरे के साथ जोड़कर खड़ा होना चाहिए। उसे अपने दोनों हाथों को अपनी जांघ के बहुत समीप लाने चाहिए।

(ख) पैर का पिछला भाग, पांव की ऐड़ियाँ तथा पीठ को एक ही सीध में रखना चाहिए।

(ग) दोनों हाथों को नीचे की तरफ रखना चाहिए तथा उन्हें किसी भी प्रकार से ढ़ीला न रखते हुए तानकर रखना चाहिए।

(घ) इसके पश्चात् उसे अपने अपने एक हाथ को धीमी गति के साथ ऊपर की तरफ उठाना चाहिए और उसे बिलकुल सीधा कर देना चाहिए। इस हाथ की अंगुलियाँ ऊपर की तरफ बिलकुल कड़ी होनी चाहिए।

(ङ) इसके पश्चात् उसे अन्दर की तरफ श्वास लेते हुए ऐड़ियों को ऊपर की तरफ उठाना चाहिए और इस प्रकार से खड़े हो जाना चाहिए कि उसके शरीर का भार उसके पंजों पर आ जाएं।

(च) पेट को अन्दर की तरफ इस तरह से दबाना चाहिए जिससे यह प्रतीत हो कि व्यक्ति कुछ ऊपर पड़ी वस्तु को पकड़ने का प्रयास कर रहा है।

(छ) जितनी देर तक व्यक्ति इस मुद्रा में रूक सकता है, उसे रूकना चाहिए और उसके पश्चात् श्वास को छोड़ते हुए उसे अपनी ऐड़ियों को

फिर से फर्श पर टिका देना चाहिए और हाथों को भी अपनी टांगों के समीप ले आना चाहिए।

लाभ: (क) क्योंकि इस आसन की सहायता से मल मूत्रेन्द्रिय की नसें खींचती है जिसके कारण सभी प्रकार के मल दोषों से मुक्ति प्राप्त की जा सकती है।

(ख) इस आसन से व्यक्ति की पाचन शक्ति में भी वृद्धि हो पाती है और उसे भूख अधिक लगने लगती है।

(ग) इस आसन को यदि कम उम्र में किया जाएं तो इसकी सहायता से शरीर का कद बढ़ाया जा सकता है।

(घ) यह आसन मेरूदंड तथा फेफड़ों को विकसित करने में सहायता प्रदान करता है।

(ङ) इस आसन की सहायता से मनुष्य का शरीर लचीला बन जाता है तथा उसमें स्फूर्ति तथा शक्ति आ जाती है।

(च) यह शरीर में उपस्थित सभी स्नायुओं को सक्रिय करके उनकी कार्यक्षमता को बढ़ा देता है।

ध्यान देने योग्य बातें: यह आसन करते समय हाथों के आस-पास वाले क्षेत्र में खिचांव कम से कम एक मिनट तक रहना चाहिए। इस आसन को करते समय कभी भी मुंह की सहायता से श्वसन क्रिया नहीं करनी चाहिए और सांस भी हमेशा लम्बे तथा गहरे लेने चाहिए।

सूर्य नमस्कार

विधि : इस आसन को करने के लिए व्यक्ति को अपने दोनों पैरों की ऐंड़ियाँ एक-दूसरे से मिलाकर रखनी चाहिए और पंजे खोलकर रखने चाहिए। इस आसन में कुल 12 क्रियाएँ सम्मिलित होती हैं, जिनका उल्लेख इस प्रकार है-

पहली स्थिति: इस स्थिति में व्यक्ति को अपने दोनों हाथों को नमस्कार की मुद्रा में स्थित करना चाहिए और फिर उन्हें छाती के गड्ढे पर रखना चाहिए। उसे अपनी कोहनियाँ बाहर की तरफ ही रखनी चाहिए। इस समय उसे अपना ध्यान भृकुटि के पीछे स्थित आज्ञा चक्र पर केंद्रित करना

सूर्य नमस्कार की 12 स्थितियाँ

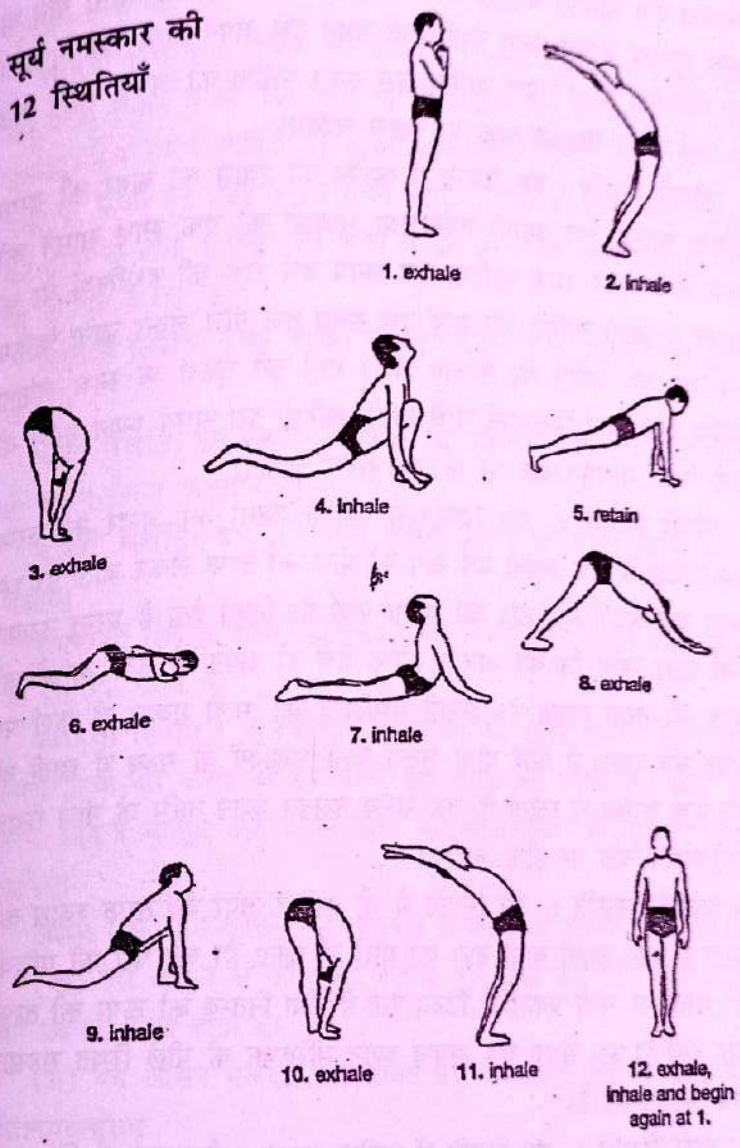

चाहिए।

दूसरी स्थिति : इस स्थिति में व्यक्ति को श्वांस अन्दर की तरफ खींचना चाहिए और अपनी दोनों भुजाओं को ऊपर की तरफ ले जाना चाहिए। इस समय उसे बाजुएँ सीधी करनी चाहिए और उन्हें कानों के साथ

चिपका देना चाहिए। बाजुओं तथा गर्दन को पीछे की तरफ धीमी गति के साथ झुकाना चाहिए परन्तु ऐसा करते समय उसे अपने हाथों तथा भुजाओं को बिलकुल सीधा रखना चाहिए। इस समय व्यक्ति को अपना ध्यान कंठ के पीछे स्थित विशुद्धि चक्र पर रखना चाहिए।

तीसरी स्थिति : इस स्थिति में व्यक्ति को श्वास को बाहर की तरफ छोड़ना चाहिए तथा अपनी गर्दन तथा भुजाओं को एक साथ सामने की तरफ नीचे लेकर आना चाहिए। इस समय उसे हाथ की हथेलियाँ पैर के बराबर में रखनी चाहिए और उन्हें उस समय तक नीचे लेकर जाना चाहिए, जब तक वह जमीन पर न लग जाएं। माथे को घुटनों के साथ लगाना चाहिए और घुटने बिलकुल सीधे रखने चाहिए। इस समय ध्यान नाभि के पीछे स्थित मणिपूर चक्र पर केन्द्रित करना चाहिए।

चौथी स्थिति : इस स्थिति में व्यक्ति श्वांस को अन्दर की तरफ लेकर जाता है और अपनी बाई टांग को पीछे की तरफ लेकर जाता है। इस समय वह अपनी बाई टांग का घुटना फर्श पर टिका देता है परन्तु उसका पंजा खड़ा रहता है। वह अपनी कमर नीचे ही रखता है तथा आंखों को ऊपर की तरफ रखता है। अपनी हथेलियों को भली प्रकार से फर्श पर टिका कर रखता है और दायां घुटना दोनों भुजाओं के मध्य में छाती के बिलकुल बराबर में रखता है। इस समय उसका ध्यान नाभि के नीचे स्थित स्वाधिष्ठान चक्र पर होना चाहिए।

पांचवीं स्थिति : इस स्थिति में भी व्यक्ति अंदर की तरफ श्वांस को भरता है और अपनी बायीं टांग को पीछे ले जाता है। वह पैरों की एड़ियों को धरती पर भली प्रकार से टिका देता है तथा नितम्ब को ऊपर की तरफ उठा देता है। इस समय वह अपना ध्यान मस्तिष्क के पीछे स्थित सहस्रार चक्र पर लगाता है।

छठी स्थिति : इस स्थिति में व्यक्ति अपना शरीर फर्श के बिलकुल समानांतर रख देता है और ठोड़ी, छाती तथा दोनों घुटनों को फर्श पर टिका देता है। इस समय वह अपने नितम्बों को थोड़ा सा ऊपर की तरफ उठाकर रखता है। इस समय उसका ध्यान हृदय के पीछे स्थित अनाहत चक्र पर

केन्द्रित होना चाहिए।

सातवीं स्थिति : श्वास को अन्दर की तरफ भरकर शरीर को आगे की तरफ लेकर जाओ तथा शरीर के आगे वाले भाग को ऊपर की तरफ उठाओं। इस समय व्यक्ति को अपनी बाजू सीधी, सीना आगे तथा घुटने फर्श पर टिका देने चाहिए। इस समय सिर को पीछे की तरफ तथा मेरूदंड की तरफ ले जाना चाहिए। इस समय व्यक्ति को अपना ध्यान मूलाधार चक्र पर केन्द्रित करना चाहिए।

आठवीं स्थितिः इसमें व्यक्ति को पांचवी स्थिति के समान क्रिया करनी चाहिए।

नौवीं स्थितिः इस स्थिति में व्यक्ति को चौथी स्थिति में की गई क्रिया के समान क्रिया करनी चाहिएं।

दसवीं स्थितिः इस स्थिति में तृतीय स्थिति के समान क्रिया करनी चाहिए।

ग्यारहवीं स्थितिः इसके अन्तर्गत दूसरी स्थिति में की जाने वाली क्रिया को दोहराया जाता है।

बारहवीं स्थिति : इस स्थिति में व्यक्ति को पहली स्थिति में की जाने वाली क्रिया को करना चाहिए परन्तु इस समय उसे श्वास क्रो बाहर की तरफ छोड़ना चाहिए तथा अपने हाथों को भली प्रकार से जोड़कर रखना चाहिए।

लाभः (क) इस आसन की सहायता से शरीर को शक्ति प्राप्त होती है।

(ख) इस आसन से आमाशय, जिगर, गुर्दे तथा छोटी एवं बड़ी आंतों को प्रबलता प्राप्त होती है।

(ग) यह आसन मेरूदंड को शक्ति प्रदान करने में सहायक होती है।

पवनमुक्तासन

विधिः (क) इस आसन को करने के लिए सर्वप्रथम दोनों पैरों को सीधा रखते हुए तथा उन्हें दाईं तरफ फैलाते हुए लेटे।

(ख) इसके पश्चात् श्वास को धीरे से छोड़िए तथा दोनों पैरों को सीधा कीजिए।

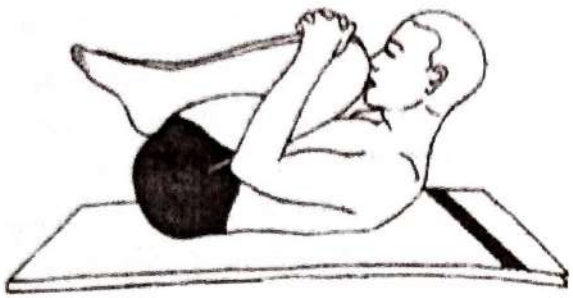

(ग) श्वास को अन्दर खींचते हुए दोनों घुटनों को इस प्रकार से मोड़ें कि वह 90 डिग्री का कोण निर्मित करे। ऐसा करते हुए अपने सीने के समीप लेकर आएं।

(घ) श्वास को धीमी गति के साथ छोड़ते हुए दोनों हाथों की सहायता से घुटनों को पकड़ें और ऐसा इस प्रकार से करे कि घुटनों का मध्य भाग नाक के साथ स्पर्श करे।

(ङ) श्वास को अंदर की तरफ लेते हुए गर्दन को सीधा कीजिए और ऐसा करते हुए सिर को पीछे भूमि पर टिका दीजिए।

(च) श्वास को बाहर की तरफ छोड़ते हुए दोनों हाथों की सहायता से पकड़े हुए घुटनों को छोड़ दीजिए। फिर दोनों पैरों को सीधा की दीजिए और उन्हें फैलाइएं।

लाभः (क) इस आसन की सहायता से निचली आंतों को सुचारू रूप से अपने कार्यों को करने में सहायता प्राप्त होती है जिससे कब्ज़ जैसे विकारों का खात्मा हो पाता है।

(ख) यह आसन उन व्यक्तियों को विशेष रूप से करना चाहिए जिन्हें अधिक मात्रा में गैस बनने की शिकायत होती है।

(ग) इस आसन की सहायता से पेट पर जमी हुई अतिरिक्त चर्बी की मात्रा को कम किया जा सकता है।

(घ) पाचन अंगों में पाई जाने वाली किसी भी प्रकार की कठिनाई या विकृति को इस आसन की सहायता से दूर किया जा सकता है।

ध्यान देने योग्य बातेंः इस आसन को आरम्भ में एक घुटने की सहायता से ही करना चाहिए। थोड़ी देर तक एक ही घुटने से पेट पर दबाव

डालने के पश्चात् दूसरे घुटने से यह क्रिया की जानी चाहिए। इस आसन को खड़े रहकर भी आसानी से किया जा सकता है। अधिक समय के पश्चात् इस आसन को दोनों पैरों के घुटनों से पेट पर दबाव डालकर भी किया जा सकता है। महिलाएँ भी इस आसन को बिना किसी कठिनाई के कर सकती हैं परन्तु उन्हें कभी भी इसका अभ्यास गर्भावस्था के दौरान नहीं करना चाहिए।

शलभासन

विधिः (क) इस आसन को करने के लिए व्यक्ति को भूमि पर अपने पेट के बल लेट जाना चाहिए। ऐसा करते समय उसे अपने शरीर के सभी अंग बिलकुल सीधे रखने चाहिए।

(ख) इस समय व्यक्ति को अपने पैरों के निचले भागों तथा हथेलियों को ऊपर की तरफ रखना चाहिए। उन्हें इस प्रकार से रखना चाहिए कि उनका ऊपरी भाग ज़मीन पर ही टिका रहे।

(ग) गहरा श्वास लेते हुए सीने तथा हाथों पर शरीर का पूरा भार डाल देना चाहिए और पैरों को ऊपर उठाने का प्रयत्न करना चाहिए।

(घ) इस स्थिति को उस समय तक बनाकर रखिए जब तक तुम अपने श्वास को रोक सकते हो। जब भी तुम्हें यह लगे कि अब श्वास को नहीं रोका जा सकता उसी समय टांगों को धीमी गति के साथ नीचे लाना चाहिए। ऐसा करते समय व्यक्ति को श्वास बाहर की तरफ छोड़ना चाहिए।

(ङ) इस आसन को बार-बार दोहराने के लिए दस-दस सैकेंड का विराम अवश्य देना चाहिए।

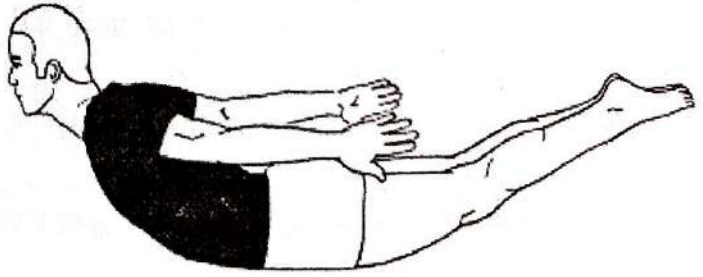

लाभः (क) इस आसन की सहायता से पेट संबंधित विभिन्न विकारों को ठीक किया जा सकता है।

(ख) इस आसन की सहायता से जिगर, वृक्क तथा पेट के सभी भाग सक्रिय हो जाते हैं जिससे उनकी कार्य क्षमता में वृद्धि हो जाती है तथा वह सही प्रकार से क्रियाएँ कर पाते हैं।

(ग) इससे शरीर के विभिन्न भागों को शक्ति प्रदान होती है जिसकी सहायता से मेरूदंड में लचीलापन आ जाता है।

(घ) यह रोग मधुमेह से शरीर को बचाने में भी सहायता प्रदान करता है।

(ङ) इस आसन का नियमित रूप से अभ्यास करके मनुष्य की टांगों में उपस्थित नसें तथा नाड़ियाँ मजबूत हो पाती हैं तथा उनमें प्रबलता आ जाती है।

(च) यह आसन मनुष्य के फेफड़ों को बलता प्रदान करता है और इससे छोटी तथा बड़ी आंते तथा जिगर भी स्वस्थ हो जाते हैं। इस आसन को करने से कमर में किसी भी प्रकार का दर्द समाप्त हो जाता है।

ध्यान देने योग्य बातें: शरीर के अधोभाग को ऊपर की तरफ उठाते समय व्यक्ति को श्वास अन्दर रोक लेने चाहिए और धीरे-धीरे इस अवधि को बढ़ाना चाहिए। यदि व्यक्ति इस प्रकार से सांस नहीं रोक पाएं तो कभी भी उसे जबरदस्ती सांस को रोकने का प्रयास नहीं करना चाहिए। हृदय रोगियों को कभी भी यह आसन नहीं करना चाहिए और न ही यह आसन उन व्यक्तियों को करना चाहिए जिनके फेफड़ें कमजोर हो। एक दिन में इस आसन का अभ्यास कम से कम चार बार किया जाना चाहिए।

योगासन

विधिः (क) इस आसन को करने के लिए सबसे पहले फर्श पर पद्मासन की मुद्रा में बैठ जाना चाहिए।

(ख) इसके बाद दोनों हाथों की हथेलियों तथा पैरों के निचले भागों को मोड़ देना चाहिए।

(ग) इस समय व्यक्ति को अपनी दोनों भुजाएँ बिलकुल तानकर रखनी

चाहिएं।

(घ) श्वास क्रिया सामान्य गति के साथ की जानी चाहिए और आंखों को नाक के आगे वाले भाग पर टिका देना चाहिए। इसके पश्चात् अपनी दृष्टि को किसी दीपक के सामने टिकाया जा सकता है।

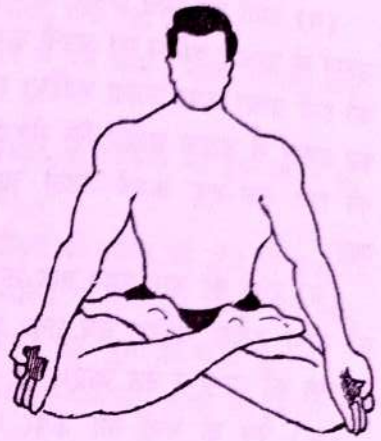

लाभः (क) इस आसन की सहायता से व्यक्ति में ध्यान केन्द्रित करने की क्षमता का विकास हो पाता है।

(ख) यह आसन मन की चंचलता को दूर करने में सहायता प्रदान करता है।

(ग) इस आसन से ईश्वर की भक्ति में मन को लगाया जा सकता है।

(घ) यह आसन व्यक्ति की बुद्धि को विकसित करता है।

(ङ) इससे दिमाग प्रफुल्लित रह पाता है।

(च) यह आसन शरीर के सभी अंगों को मजबूत करने में सहायता प्रदान करता है।

सर्वांगासन

इस आसन को आसनों का राजा कहा जाता है। सर्वांग का अर्थ होता है सभी अंग। इस आसन का नाम सर्वांगासन इसलिए रखा गया है क्योंकि इसके द्वारा शरीर के सभी अंगों को लाभ प्राप्त हो पाता है। यह कहा जा सकता है कि यह आसन सभी अन्य आसनों की जननी हैं।

विधिः (क) सर्वप्रथम व्यक्ति को फर्श पर अपनी पीठ के बल लेट जाना चाहिए और अपनी दोनों भुजाओं को कड़े करके तान देना चाहिए।

(ख) इसके पश्चात् उसे अपनी पांव के पंजों को एक-दूसरे से मिलाना चाहिए और ऐड़ियों को कड़ाकर ऊपर की तरफ उठाना चाहिए। फिर उसे अपनी टांगों को इस प्रकार से ऊपर की तरफ उठाना चाहिए।

(ग) टांगों को भली प्रकार से ऊपर उठाने के पश्चात् व्यक्ति को अपनी कमर को इसी प्रकार ऊपर उठाना चाहिए। इसे इस प्रकार से उठाना चाहिए कि मेरूदंड की गांठ एक-एक करके उठती चली जाएं।

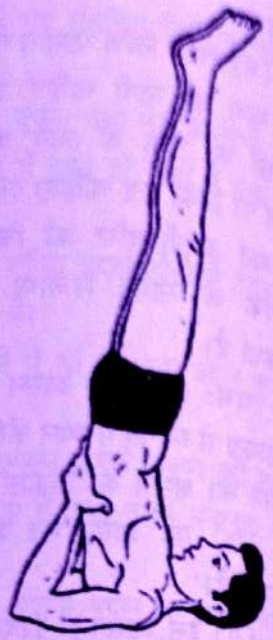

(घ) टांगों को उस समय तक ऊपर की तरफ उठाना चाहिए जब तक वह आकाश की तरफ न उठ जाएं।

(ङ) पैरों के पंजों को ऊपर की तरफ रखते समय उन्हें भली प्रकार से तान देना चाहिए। पीठ को थोड़ी ओर ऊंचाई तक उठाने के लिए हाथों का सहारा लेना चाहिए। इस प्रकार से शरीर का भार कंधों पर आ जाएंगा। पांव बिलकुल सीधे हवा में खड़े होने चाहिए।

(च) इसके पश्चात् ठोड़ी को गले के निचले भाग में लगा देना चाहिए और पैर दबाकर जमा देने चाहिएं। इसी प्रकार से पैर दबाकर जमाने को जालंधर बंध कहा जाता है। इस स्थिति में कम-से-कम दस मिनट तक रूकने का प्रयास करें।

(छ) इसके पश्चात् मेरूदंड की एक-एक गांठ को वापिस ज़मीन पर ले आओं। यह क्रिया हाथों को छोड़कर या उनकी सहायता के द्वारा भी की जा सकती है। इसी समय टांगों को भी धीमी गति के साथ नीचे की तरफ ले आएं और फिर शवासन की मुद्रा में शरीर को फर्श पर लिटा दे।

लाभः (क) यह आसन गर्दन, पेट तथा छाती के विभिन्न रोगों को दूर करने में सहायता प्रदान करता है।

(ख) इस आसन से गले के रोगों से निजाद प्राप्त करने में विशेष सहायता प्राप्त हो पाती है।

(ग) यह आसन मेरूदंड को लचीली बना देता है।

(घ) कब्ज के रोग को ठीक करने में यह आसन विशेष भूमिका अदा करता है।

(ङ) स्त्रियों में योनि के सभी प्रकार के विकारों को इस आसन की सहायता से ठीक किया जा सकता है।

(च) इस आसन से व्यक्तियों में सैक्स की शक्ति की वृद्धि हो पाती है।

(छ) इस आसन को करने से व्यक्ति के शरीर में स्थित होने वाली मांसपेशियाँ खींच जाती है जिसके कारण वह चुस्त हो जाती है।

(ज) इस आसन को करने से व्यक्ति में एकाग्रता शक्ति का विकास हो पाता है।

(झ) मानव शरीर में स्थित होने वाले सभी तंत्रों में इस आसन की सहायता से एक प्रकार की शांति उत्पन्न होती है।

ध्यान देने योग्य बातें: इस क्रिया को करते समय जब व्यक्ति पंजों के सहारे अपनी टांगों को सामने की ओर झुकाता है तो वह उपर्युक्त सीमा तक किया जाना चाहिए। कभी भी टांगों को अधिक नहीं झुकाना चाहिए अन्यथा व्यक्ति के गिर जाने की संभावनाएँ उत्पन्न हो जाती है। इस आसन से खून का बहाव ऊपर से नीचे की दिशा की तरफ होता है परन्तु यह सभी के शरीर द्वारा सहन नहीं किया जा सकता। कई व्यक्तियों का शरीर इस प्रकार की क्रिया के कारण कांपने लग जाता है इसलिए कभी भी ऐसे व्यक्तियों को इस आसन को नहीं करना चाहिए जो इस प्रकार की क्रिया को सहन न कर सके।

धनुरासन

धनुर का अर्थ होता है धनुष और क्योंकि इस आसन को करने से व्यक्तिं धनुष के समान आकृति प्राप्त करता है, इसलिए इसे धनुरासन कहा जाता है। इस आसन के अन्तर्गत हाथों को तीर की भांति खींचा जाता है और व्यक्ति का शरीर तने हुए तीर कमान की भांति प्रतीत होता है।

विधिः (क) सबसे पहले व्यक्ति को अपने पेट के बल पर फर्श पर इस प्रकार से लेट जाना चाहिएं कि उसकी दोनों एड़ियाँ एक-दूसरे के साथ मिली हुई हो।

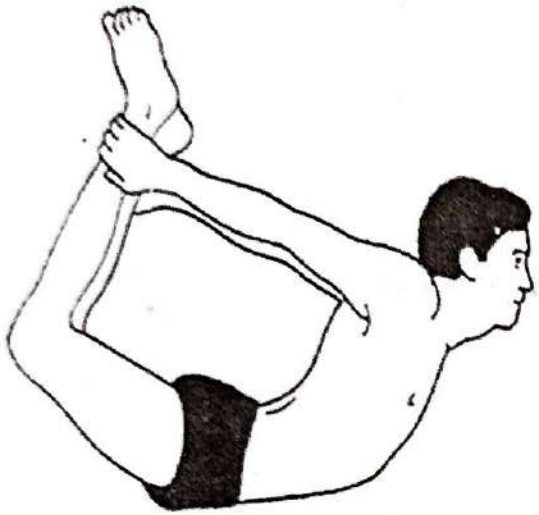

(ख) इसके पश्चात् उसे अपने घुटनों को दोहरा करना चाहिए और टांगों को घुमाकर पीठ की तरफ ले जाना चाहिए और दोनों हाथों की सहायता से टखनों को बलपूर्वक पकड़ लेना चाहिए।

(ग) ऐंड़ियों तथा पंजों को एक-दूसरे से मिलाएं रखना चाहिए परन्तु पांव के पंजों को घुटनों की तरफ झुकाना चाहिए। इस प्रकार पैरों के तलवें चौड़े हो जाएं और उनकी दिशा आकाश की तरफ हो जाएंगी।

(घ) इसके पश्चात् पैरों को पीछे की तरफ धकेलना चाहिए और पैरों तथा हाथों को पीछे की तरफ खींचना चाहिए जिससे छाती तथा सिर ऊपर की तरफ भली प्रकार से उठ जाएं।

(ङ) हाथों की सहायता से पैरों को आगे की खींचने का प्रयास करें। इसके पश्चात् हाथों की सहायता से ही घुटनों को ऊपर की तरफ उठाने का प्रयास करना चाहिए। इस क्रिया को करने में थोड़ा समय लगता है इसलिए कभी भी हतोत्साहित नहीं होना चाहिए।

(च) घुटनों को उठाने के साथ ही जांघों को भी पूरी तरह से उठा देना चाहिए जिससे शरीर का सम्पूर्ण भार पेट की नाभि से निचले भाग पर स्थानान्तरित हो जाएं। व्यक्ति को अपने हाथों तथा पैरों की क्रिया इस प्रकार से करनी चाहिए जिससे ऐसा प्रतीत हो कि दोनों में एक प्रकार का संघर्ष चल रहा है। इस समय व्यक्ति का शरीर धनुष के समान प्रतीत होना

चाहिए।

लाभः (क) इस आसन को करने से मनुष्य की मेरूदंड सशक्त तथा प्रबल हो पाती है।

(ख) कमर में किसी भी प्रकार के दर्द को इस आसन की सहायता से ठीक किया जा सकता है।

(ग) यह आसन पेट के रोगों को ठीक करने में अति सहायक होता है।

(घ) टांगों के रोगों को ठीक करने में यह आसन बहुत सहायता प्रदान करता है।

(ङ) इस आसन की सहायता से व्यक्ति की भुजाओं में ताकत तथा शक्ति उत्पन्न हो पाती है।

(च) यह आसन लम्बा कद प्राप्त करने में सहायता प्रदान करता है।

(छ) इस आसन की सहायता से गुप्त अंग सुदृढ़ होते हैं।

(ज) इससे यौन संबंधी सभी विकारों से निजाद प्राप्त हो जाती है।

(झ) पुरूषों में सम्भोग शक्ति को विकसित करने में यह अति सहायक होता है।

ध्यान देने योग्य बातेंः इस आसन का अभ्यास किसी भी ऐसे व्यक्ति को नहीं करना चाहिए जिसका हृदय कमजोर हो या जिसे उच्च रक्तचाप का रोगा हो। यदि किसी व्यक्ति की पेट की आंतों में किसी प्रकार का कोई घाव हो तो उसे भी इस आसन का अभ्यास नहीं करना चाहिए।

चक्रासन

इस आसन को चक्रासन इसलिए कहा जाता है क्योंकि यह आसन करने के पश्चात् व्यक्ति का शरीर अर्ध-चक्रीय मुद्रा ग्रहण कर लेता है।

विधिः (क) सबसे पहले व्यक्ति को पीठे के बल जमीन पर सीधे लेट जाना चाहिए।

(ख) अपनी टांगों को अन्दर की तरफ इस प्रकार से खींचना चाहिए कि वह कूल्हों के समीप आ जाएं तथा पैर का नीचला भाग फर्श पर टिका रहे।

(ग) टांगों को इस प्रकार से फैला कर रखना चाहिए कि उनके बीच में कम से कम 6 इंच की दूरी अवश्य हो।

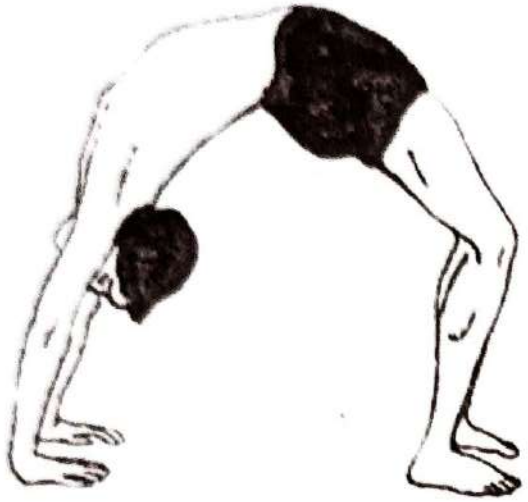

(घ) कोहनियों को इस प्रकार से मोड़ना चाहिए कि वह सिर से ऊपर आ जाएं जबकि हथेलियाँ कंधों के नीचे ही रहे। हथेलियों के बीच में पाई जाने वाली दूरी कंधों में पाई जाने वाली दूरी से अधिक नहीं होनी चाहिए।

(ङ) बाहर श्वांस छोड़ते हुए अपने घुटनों को मोड़ते हुए ऊपर की तरफ उठाएं। इसी समय पेट को भी ऊपर की तरफ उठाना चाहिए।

(च) सिर तथा पेट को उठाने के पश्चात् कमरे को इस प्रकार से झुकाए कि शरीर का सम्पूर्ण भार हाथ की हथेलियों तथा पैर के तलवों पर स्थानान्तरित हो जाएं।

(छ) दोनों बाजुओं को कंधों से भली प्रकार से खींचना चाहिए और ऐसा उस समय तक करना चाहिए जब तक कोहनियाँ बिलकुल सीधी न हो जाएं। इसी समय जांघों की मांसपेशियों को खींचाना चाहिए।

(ज) इसके पश्चात् फर्श से पैरों के तलवे उठाने चाहिए और उन्हें जांघों की मांसपेशियों की तरफ खींचना चाहिए। छाती को फुलाते हुए मेरूदंड के बीच का हिस्सा खींचे और इस समय भी पैरों को फर्श पर ही भली प्रकार से टिका कर रखे।

(झ) दोनों घुटनों तथा कोहनियों को मोड़ते हुए शरीर को फर्श तक झुकाना चाहिए।

(छ) जब तक हो सकं इस मुद्रा में रहने का प्रयास करे और जब लगे

कि इस मुद्रा को बनाएं नहीं रखा जा सकता तो उस समय धीरे से शरीर को सीधा करे और अपने शरीर के भार को जांघों तथा पंजों पर डालकर खड़े हो जाएं।

लाभः (क) इस आसन की सहायता से सभी प्रकार के पेट के रोगों का नाश हो जाता है।

(ख) यदि किसी भी कारणवश व्यक्ति की कमर में दर्द हो तो वह ठीक हो जाता है।

(ग) मेरूदंड, टांगों तथा बाजुओं को शक्ति प्रदान करता है।

ध्यान देने योग्य बातें: इस आसन को कभी भी जल्दीबाजी में नहीं करना चाहिए। सभी का शरीर इस प्रकार से निर्मित नहीं होता कि वह आसानी से किसी भी दिशा में मोड़ा जा सके। यदि शरीर को पीछे की तरफ मोड़ते समय व्यक्ति को किसी भी प्रकार का दर्द या कठिनाई अनुभव हो तो उसे कभी भी इस आसन को जबरदस्ती करने का प्रयास नहीं करना चाहिए। आरम्भ में इस आसन को करने के लिए किसी की सहायता ली जा सकती है।

त्रिकोणासन

इस आसन को करने से व्यक्ति का शरीर तीन कोणों को निर्मित करता हुआ प्रतीत होता है और यही कारण है कि इसे त्रिकोणासन कहा जाता है।

विधिः (क) सबसे पहले व्यक्ति को अपने दोनों पैरों को एक-दूसरे को दूरी पर रखते हुए बिलकुल सीधे खड़े हो जाना चाहिए।

(ख) इसके पश्चात् अपने श्वांस को भीतर लेते हुए उसे अपने दोनों हाथों को कंधों की ऊंचाई तक उठाना चाहिए।

(ग) श्वास को बाहर छोड़ते समय धड़ को आगे की तरफ झुकाना चाहिए तथा उसे बांई तरफ मोड़ते हुए दाहिनी हथेली को बाएं पैर पर रखिए।

(घ) बाएं हाथ को बाईं तरफ इतना ऊंचा उठाना चाहिए कि वह 90 डिग्री का कोण निर्मित करें।

(ङ) घुटनों को बिलकुल सीधा रखते हुए जितना हो सके, उतनी देर के लिए इसी मुद्रा में रहने का प्रयास करे।

(च) मुद्रा को छोड़ते समय व्यक्ति को श्वांस बाहर की तरफ छोड़ना चाहिए और अपने धड़ तथा हाथों को ऊपर की तरफ उठाना चाहिए और इसके पश्चात् बिलकुल सीधे खड़े हो जाना चाहिए।

(छ) इसी प्रकार की क्रिया को दूसरी तरफ भी किया जाना चाहिए।

लाभः (क) इस आसन की सहायता से व्यक्ति अपनी भुजाओं की मांसपेशियों को प्रबल बना सकता है।

(ख) यह आसन मेरूदंड को लोच प्रदान करने में सहायता करता है।

(ग) इस आसन को करने से शरीर के पार्श्व भाग में जमी चर्बी काफी हद तक कम की जा सकती है।

(घ) इसकी सहायता से जांघ तथा पिंडलियों की मांसपेशियाँ चुस्त तथा तंदुरूस्त हो जाती है।

ध्यान देने योग्य बातें: इस आसन को कभी भी ऐसी व्यक्तियों को खड़े होकर नही करना चाहिए जिनका दिल कमजोर हो या जिन्हें किसी प्रकार का हृदय रोग हों।

पर्वतासन

इस आसन को पर्वतासन इसलिए कहा जाता है क्योंकि इसके अन्तर्गत व्यक्ति का शरीर पर्वत के समान ऊंचा तथा लम्बा हो जाता है।

विधिः (क) सबसे पहले व्यक्ति को जमीन पर पद्मासन की मुद्रा में बैठ जाना चाहिए।

(ख) फिर उसे श्वास भीतर की तरफ खींच देना चाहिए और अपने दोनों हाथों को ऊपर की तरफ बिलकुल सीधे कर देना चाहिए।

(ग) इस समय उसे अपने श्वास रोककर रखने चाहिएं।

(घ) कुछ समय के पश्चात् श्वास को धीमी गति के साथ बाहर की तरफ छोड़ना चाहिए और इसी समय दोनों हाथों को घुटनों तक लाना चाहिए और शरीर की सामान्य अवस्था को प्राप्त कर लेना चाहिए।

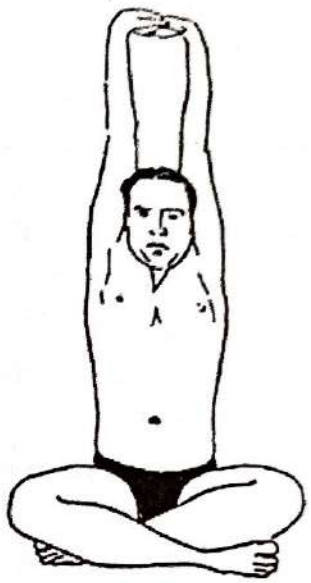

(ङ) इस मुद्रा को दूसरी टांग की सहायता से अभ्यासित करना चाहिए।

लाभः (क) यह आसन शरीर को बलिष्ठ बनाने में सहायता करता है।

(ख) इस आसन की सहायता से व्यक्ति की छाती विकसित हो पाती है।

(ग) फेफड़ों के सभी रोग तथा विकार इस आसन की सहायता से दूर किए जा सकते है।

(घ) यह आसन रक्त को शुद्ध करने में सहायक होता है।

(ङ) यह आसन उन व्यक्तियों के लिए विशेष रूप से महत्वपूर्ण होता है जिन्हें श्वास दमा का रोग हो।

ध्यान देने योग्य बातें: इस आसन को सदैव सांस रोक कर किया जाना चाहिए। यदि सांस को अधिक समय के लिए रोकने में कठिनाई आ रही हो तो कभी भी जबरदस्ती इस आसन का अभ्यास नहीं करना चाहिए।

शीर्षासन

शीर्ष का अर्थ होता है सिर। इस आसन को शीर्षासन इसलिए कहा जाता है क्योंकि इसके अन्तर्गत व्यक्ति अपने सिर के बल खड़ा होता है। इस

आसन को आसनों का राजा कहा जाता है।

विधिः (क) इस आसन को करने के लिए व्यक्ति को अपना सिर फर्श पर लगाना होता है और उसकी सुरक्षा के लिए उसे मोटा कम्बल या किसी पतले कपड़े को इस प्रकार से लपेटकर प्रयोग करना चाहिए कि उसकी गोल चकरी सी बन जाएं।

(ख) इसके पश्चात् फर्श पर घुटनों के बल बैठ जाना चाहिए और हाथों की अंगुलियों को एक-दूसरे में इस प्रकार से फंसा देना चाहिए कि वह दृढ़ बंधन में बंध जाएं।

(ग) हाथों को कम्बल के समीप ही भली प्रकार से टिका देना चाहिए।

(घ) सिर को इस प्रकार से कम्बल पर रख देना चाहिए कि वह कम्बल के ऊपर रहे तथा उसके हाथों के दोनों अंगूठे उसके सिर के पिछले हिस्से की तरफ रहे।

(ङ) व्यक्ति को अपनी गर्दन को धीमी गति के साथ सीधा करना चाहिए और इस प्रकार अपने धड़ को सीधा करना चाहिए।

(च) शरीर को संतुलित अवस्था में रखते हुए उसे अपने पैरों को जमीन से ऊपर की तरफ उठाना चाहिए।

(छ) कुछ समय के पश्चात् अपने दोनों पैरों को सीधा करते हुए शरीर को स्थिर कर देना चाहिए।

लाभः (क) इस आसन की सहायता से सिर में संबंधित सभी प्रकार के विकारों को ठीक किया जा सकता है।

(ख) यह आसन व्यक्ति के हृदय तथा स्नायु मंडल को प्रबलता प्रदान करने में सहायता करता है।

(ग) इस आसन की सहायता से ग्रंथि तंत्र प्रबल हो पाता है।

(घ) यह आसन उन व्यक्तियों के लिए अति लाभदायक होता है जिन्हें

धातु दोष या स्वप्नदोष जैसे विकार हो।

हंसासन

इस आसन को हंसासन इसलिए कहा जाता है क्योंकि इसको करने के पश्चात् व्यक्ति के शरीर का आकृति बिलकुल हंस की भांति प्रतीत होती है।

विधिः (क) सर्वप्रथम व्यक्ति को अपने दोनों हाथों को फर्श पर टिका देना चाहिए और श्वांस को बाहर की तरफ छोड़ना चाहिए, जिससे उसका शरीर हलका सा हो जाता है। इसके पश्चात् उसे अपने दोनों घुटनों को दोनों कोहनियों के ऊपर रख देना चाहिए।

(ख) इस समय उसे अपनी कोहनियाँ अपने शरीर की तरफ ही रखनी चाहिए।

(ग) शरीर का सम्पूर्ण भार अपने हाथों पर डालते हुए उसे अपने शरीर को इस प्रकार से मोड़ना चाहिए कि उसकी आकृति हंस के समान प्रतीत हो।

(घ) कुछ समय के पश्चात् व्यक्ति को अपने नाक को भूमि से स्पर्श करने का अभ्यास करना चाहिए, जिसके लिए उसे अपना सिर नीचे की तरफ लेकर जाना होता है।

लाभः (क) इस आसन की सहायता से व्यक्ति की भुजाओं की मांसपेशियाँ मजबूत तथा सुदृढ़ हो पाती है।

(ख) यह आसन चेहरे पर तेज प्रदान करता है।

(ग) शरीर को स्फूर्ति प्रदान करने में यह आसन बहुत उपयोगी होता है।

(घ) इस आसन को करने से भोजन की पाचन क्रिया शीघ्रता के साथ हो पाती है।

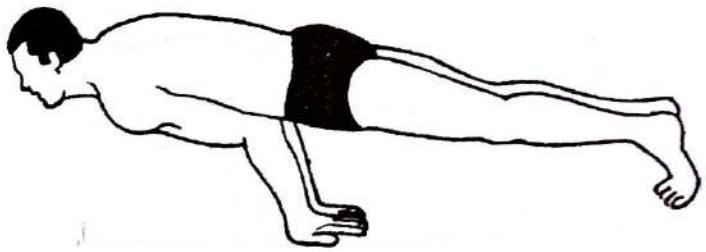

(ङ) इस आसन की सहायता से व्यक्ति का नाड़ी तंत्र कुशलतापूर्वक कार्य कर पाता है।

(च) पुरूषों को शक्ति प्रदान करने में यह आसन विशेष भूमिका निभाता है।

मयूरासन

मयूर माने मोर। इस आसन को मयूरासन इसलिए कहा जाता है क्योंकि इसको करने के पश्चात् व्यक्ति का शरीर मयूर की आकृति को प्राप्त कर लेता है।

विधिः (क) सर्वप्रथम व्यक्ति को अपने घुटने मोड़कर फर्श पर बैठ जाना चाहिए।

(ख) इसके पश्चात् उसे अपनी हथेलियों को भूमि पर टिका देना चाहिए और यह इस प्रकार से किया जाना चाहिए जिससे उसकी अंगुलियाँ पैरों की तरफ रहें।

(ग) कोहनियाँ मोड़ देनी चाहिए और उसे नाभि के ऊपर पेट के हिस्से पर टिका देना चाहिए।

(घ) हाथों को फर्श पर भली प्रकार से टिका देने के पश्चात् व्यक्ति को अपने मुंह तथा कंधों को धीमी गति के साथ सुस्थिर अवस्था में लाना चाहिए और उन्हें आगे की तरफ बढ़ाना चाहिए, जिससे पैर स्वंय ही भूमि से ऊपर की तरफ उठने लगेंगे।

(ङ) इस मुद्रा में कम से कम पांच सैकेंड के लिए रूकना चाहिए। उसके पश्चात् धीमी गति के साथ पैरों को फर्श की तरफ लेकर आना चाहिए और शरीर को शिथिल करके छोड़ देना चाहिए।

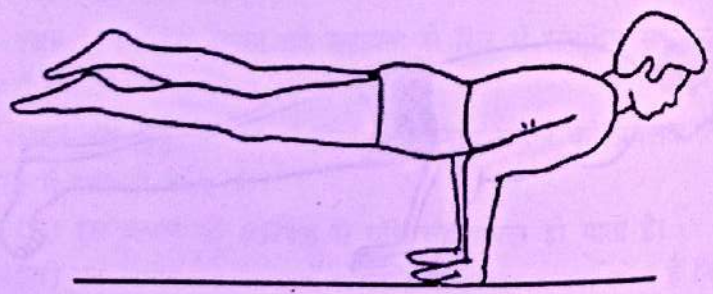

लाभः (क) इस आसन की सहायता से व्यक्ति का चेहरा सुन्दर हो जाता है।

(ख) यह आसन मस्तिष्क की कार्य क्षमता को विकसित करने में सहायक होता है।

(ग) इस आसन की सहायता से व्यक्ति के सीने, पेट तथा पैरों की कार्यक्षमता में वृद्धि हो पाती है।

ध्यान देने योग्य बातेंः इस आसन को भली प्रकार से करने के लिए हाथों को भली प्रकार से जमीन पर टिका देना अति आवश्यक होता है क्योंकि इसके बिना शरीर को स्थिर नहीं किया जा सकता। आरम्भ में यह क्रिया कम समय के लिए ही की जानी चाहिए परन्तु समय के साथ इसकी समयावधि में वृद्धि की जा सकती है।

तुलासन

विधिः (क) इस आसन को करने के लिए व्यक्ति को सर्वप्रथम फर्श पर पद्मासन की मुद्रा में बैठ जाना चाहिए और हाथों को जंघाओं के समीप रख देना चाहिए।

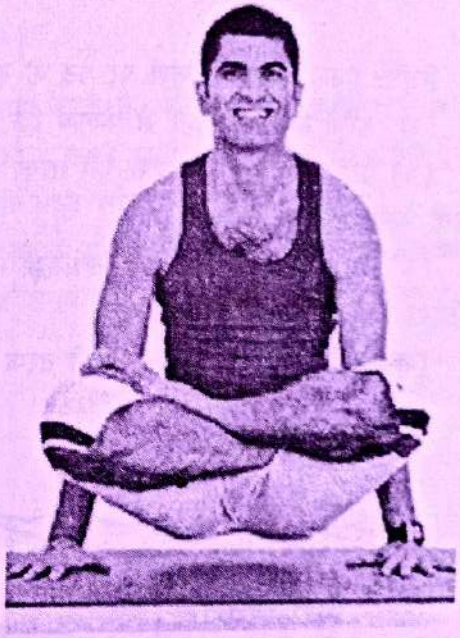

(ख) इसके पश्चात् श्वांस भीतर लेते हुए अपने शरीर को ऊपर की तरफ उठाएं। जितनी अधिकतम ऊंचाई तक हो सकें, शरीर को उठाना चाहिए।

(ग) इस समय बाजुओं को बिलकुल सीधा रखना चाहिए और श्वांस को रोककर रखना चाहिए।

(घ) आसन को समाप्त करने के लिए शरीर को भूमि की तरफ धीमी गति से लाना चाहिए और ऐसा करते हुए व्यक्ति को अपना श्वांस रोककर

रखना चाहिए।

लाभः (क) इस आसन की सहायता से हाथों के पंजों को मजबूती तथा सुदृढ़ता प्राप्त होती है।

(ख) यह आसन बाजुओं को शक्ति प्रदान करने का एक महत्वपूर्ण साधन होता है।

(ग) इस आसन की सहायता से व्यक्ति के कंधें तथा पीठ मजबूत हो पाते हैं।

(घ) पाचन क्रिया को सही करने में यह आसन बहुत सहायता करता है।

नौकासन

इस आसन को करने के पश्चात् व्यक्ति के शरीर की आकृति एक नौका के समान प्रतीत होती है और इसलिए इस आसन को नौकासन कहा जाता है।

विधिः (क) सर्वप्रथम फर्श पर पेट के बल लेट जाएं।

(ख) हाथों को इस प्रकार से फैलाएं कि वह सिर के आगे आ जाएं।

(ग) पैरों और हाथों को ऊपर की तरफ उठाएं और ऐसा करते समय उन्हें भली प्रकार से तानकर रखे।

(घ) इस समय शरीर के सभी भाग हवा में होने चाहिए केवल पेट का हिस्सा फर्श पर टिका होना चाहिए।

(ङ) हाथों तथा पैरों को ऊपर की तरफ उठाते समय भली प्रकार से

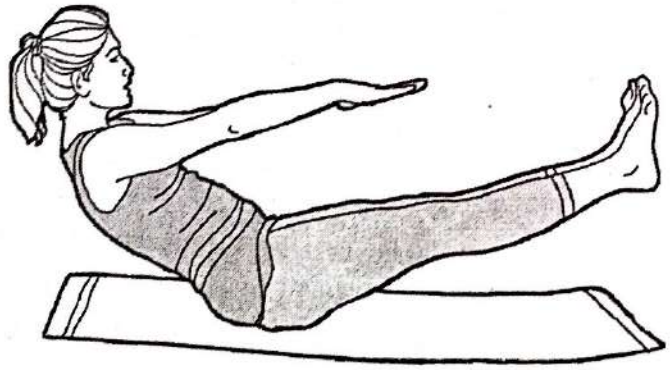

श्वांस लेना चाहिए। इस क्रिया को करते समय गहरे श्वांस लेने आवश्यक है।

लाभः (क) यह आसन व्यक्ति के शरीर में स्थित सभी मांसपेशियों को प्रबल बनाती है तथा उन्हें सक्रिय करने में सहायता प्रदान करती है।

(ख) इस आसन की सहायता से रीढ़ की हड्डी में पाएं जाने वाले सभी दोष समाप्त हो जाते है।

(ग) यह आसन मानव के शरीर में चुस्ती तथा स्फूर्ति उत्पन्न करता है।

ध्यान देने योग्य बातेंः इस आसन को कुछ इस प्रकार से किया जाना चाहिए जिससे शरीर की सभी मांसपेशियाँ इससे खिच जाएं। केवल इसी प्रकार से मांसपेशियों में पाए जाने वाले सभी विकारों का हल इस आसन से प्राप्त किया जा सकता है। यह आसन आरम्भ में आधे मिनट के लिए किया जाना चाहिए परन्तु समय के साथ इसकी समयावधि बढ़ाकर तीन मिनट कर देनी चाहिए।

वज्रासन

इन्द्र के गदा को वज्र कहा जाता है और वह बहुत शक्तिशाली तथा सुदृढ़ होता है। इस आसन को वज्रासन इसलिए कहा जाता है क्योंकि इसे करने से मनुष्य का शरीर भी बहुत शक्तिशाली हो जाता है।

विधिः (क) सर्वप्रथम व्यक्ति को अपने दोनों पैर जमीन पर फैलाकर बैठ जाना चाहिए। ऐसा करते समय उसे अपने बाएं पैर को घुटने से मोड़

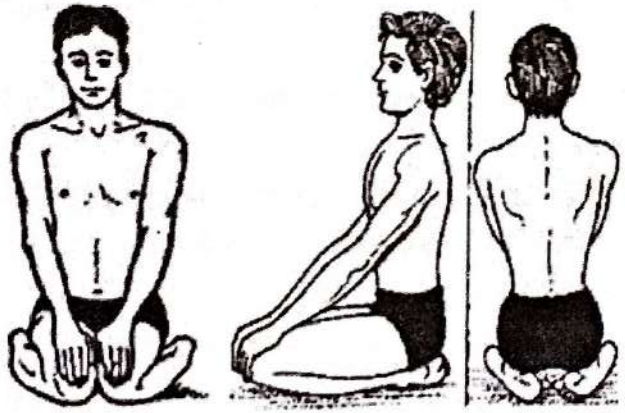

देना चाहिए और उसके पंजों को बाएं नितम्ब के नीचे लगा देना चाहिए। यह इस प्रकार से किया जाना चाहिए कि पैर का निचला हिस्सा ऊपर की तरफ रहे।

(ख) इस समय व्यक्ति को अपने पैरों के दोनों अंगूठे एक-दूसरे के समीप रखने चाहिए और ऐड़ियों को बाहर की तरफ रखना चाहिए।

(ग) दोनों पैरों के घुटनों को मिला देना चाहिए और हाथों को घुटनों के ऊपर रख देना चाहिए। इस स्थिति में व्यक्ति को अपना सिर तथा मेरूदंड बिलकुल सीधे रखने चाहिए।

लाभः (क) यदि इस आसन को भोजन ग्रहण करने के पश्चात् किया जाएं तो पाचन क्रिया शीघ्रता तथा कम से कम समय में हो पाती है।

(ख) इस आसन की सहायता से उदर वायु विकार दूर हो पाता है।

(ग) यह आसन जांघों की मांसपेशियों को प्रबल करने में सहायता प्रदान करने में सहायता करती है।

(घ) यदि व्यक्ति के घुटनों या पैर की अंगुलियों में दर्द हो तो इस आसन की सहायता से उन्हें दूर किया जा सकता है।

ध्यान देने योग्य बातेंः वह व्यक्ति जिनके जोड़ों में दर्द रहता है, उनके लिए यह आसन कर पाता कठिन होता है और जितना हो सकें उन्हें इसका कम से कम उपयोग करना चाहिए। आर्थ्रायटीस रोग से ग्रसित व्यक्ति को कभी भी इस आसन का अभ्यास नहीं करना चाहिए।

खगासन

विधिः (क) इस आसन को करने के लिए सर्वप्रथम व्यक्ति को फर्श पर पेट के बल लेट जाना चाहिए।

(ख) इसके पश्चात् उसे अपने दोनों हाथों को शरीर के समीप लगा देने चाहिए।

(ग) श्वांस अन्दर लेकर उसे अपना सिर, गला तथा छाती जमीन से उठाने का प्रयास करना चाहिए। यह सभी इतनी ऊंचाई तक उठाएं जाने चाहिए कि व्यक्ति की दृष्टि आकार की ओर हो सके।

(घ) ऐसा करते समय व्यक्ति को अपना श्वांस रोककर रखना चाहिए।

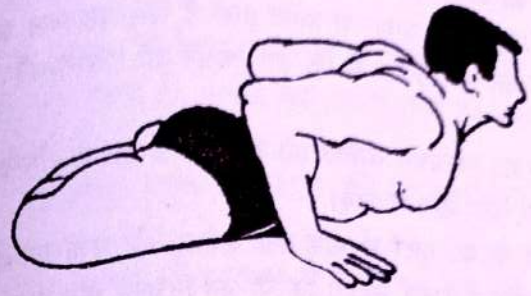

(ङ) इसके पश्चात् पहले छाती को धीमी गति के साथ उठाएं और इसके बाद सिर को जमीन पर लाएं और उसके पश्चात् हाथों को सीधा कर ले। श्वांस बाहर की तरफ निकालें और शरीर को पूर्ण रूप से शिथिल कर दें।

लाभः (क) इस आसन की सहायता से सिर, गले, छाती तथा पेट में पाएं जाने वाले सभी विकार दूर हो जाते है।

(ख) सभी प्रकार के नाभि विकारों को इस आसन की सहायता से ठीक किया जा सकता है।

(ग) यह आसन मधुमेह के रोगियों के लिए अति महत्वपूर्ण होता है।

(घ) दमे के रोगों को ठीक करने में इस आसन की विशेष भूमिका होती है।

ध्यान देने योग्य बातेंः कभी भी इस आसन को अधिक समय के लिए नहीं करना चाहिए। जितना व्यक्ति का शरीर सहन कर सके, उतने समय तक ही इस आसन का अभ्यास किया जाना चाहिए।

मत्स्यासन

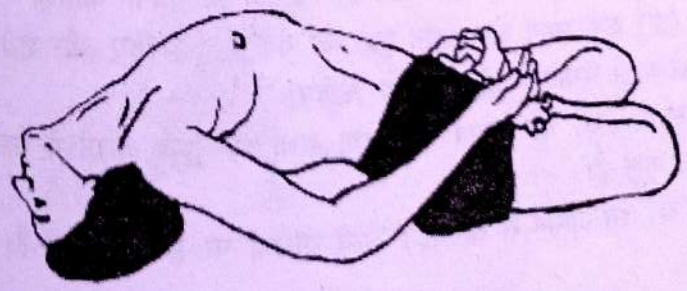

मत्स्य का अर्थ होता है मछली। इस आसन को करते समय व्यक्ति के शरीर की आकृति इस प्रकार से प्रतीत होती है जैसे वह जल की सतह पर तैर रहा हो और यही कारण है कि इस आसन को 'मत्स्यासन' कहा जाता है।

विधि: (क) सर्वप्रथम व्यक्ति को अपने दोनों पैरों को मिलाकर सामने सीधे फैलाकर बैठ जाना चाहिए।

(ख) बाएं पैर को घुटने से मोड़ देना चाहिए और पंजों को दाएं पैर के जांघ में इस प्रकार से रखना चाहिए कि पैर का निचला भाग ऊपर की तरफ रहे तथा ऐड़ी का दबाव उदर पर पड़े।

(ग) इसी प्रकार दाएं पैर को घुटने से मोड़ देना चाहिए और बाएं पैर के जांघ में इस प्रकार से रखना चाहिए कि पैर का निचला भाग ऊपर की तरफ रहें तथा ऐड़ी का दबाव उदर पर पड़े।

(घ) दोनों हाथों की हथेलियों को नितम्ब के समीप फर्श पर लगा देना चाहिए और दोनों कोहनियों को मोड़ देना चाहिए और इसी समय शरीर को पीछे की तरफ ले जाते हुए लेट जाना चाहिए।

(ङ) पुन: दोनों हाथों को कोहनियों से मोड़ना चाहिए और हथेलियों को कंधों के समीप फर्श पर स्थित कर देना चाहिए।

(च) इसके पश्चात् हाथों पर बल लगाना चाहिए और कंधों को ऊपर उठाते हुए सिर को नीचे की तरफ मोड़ देना चाहिए और उसे जमीन के साथ लगा देना चाहिए।

(छ) व्यक्ति को अपने दोनों हाथों की पहली अंगुली तथा अंगूठे से पैरों के अंगूठे पकड़ने चाहिए।

(ज) इस समय व्यक्ति को अपना सीना ऊपर की तरफ रखना चाहिए तथा कोहनियों को जमीन के साथ ही चिपकाकर रखना चाहिए।

(झ) कुछ समय के पश्चात् मुद्रा को रोक देना चाहिए और शरीर को पहले वाली स्थिति में ही ले आना चाहिए।

लाभ: (क) यह आसन गर्दन तथा कंधों को सुदृढ़ करने में सहायता प्रदान करते हैं।

(ख) इस आसन से थायराइड जैसी ग्रंथियों पर प्रभाव पड़ता है। इस

आसन के कारण यह ग्रंथियाँ सक्रिय हो जाती है तथा सही प्रकार से क्रिया करती है।

(ग) इस आसन की सहायता से गले पर बढ़ी हुई चर्बी की मात्रा को कम किया जा सकता है। अर्थात् यह आसन गर्दन को सशक्त बनाने में सहायता करती है।

(घ) यह आसन नाभि तथा पाचन तंत्रों को काफी हद तक प्रभावित करता है।

(ङ) इस आसन की सहायता से उदर वायु जैसे रोगों का खात्मा हो जाता है।

(च) रीढ़ की हड्डी को लचीला बनाने में यह आसन विशेष सहायता प्रदान करता है।

(छ) वक्षस्थल की मांसपेशियाँ इस आसन से बहुत मजबूत तथा सशक्त हो जाती है।

ध्यान देने योग्य बातें: कभी भी व्यक्ति को आरम्भ में अपने सिर को पीछे की तरफ मोड़ना नहीं चाहिए। इस आसन को खड़े होकर भी किया जा सकता है। जिन व्यक्तियों के गर्दन में दर्द रहता है, उन्हें कभी भी इस आसन का अभ्यास नहीं करना चाहिए।

हलासन

इस आसन को हलासन इसलिए कहा जाता है क्योंकि इसको करते समय व्यक्ति का शरीर हल के समान आकृति ग्रहण कर लेता है। इस आसन के अन्तर्गत व्यक्ति अपने पैर की अंगुलियों को पीछे की तरफ भूमि पर टिकाना होता है।

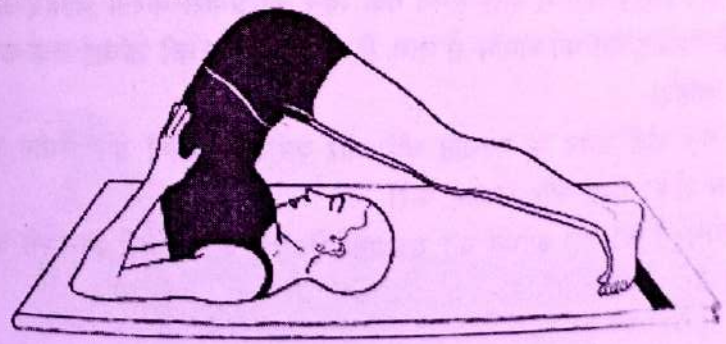

विधि: (क) सर्वप्रथम व्यक्ति को अपनी पीठ के बल लेट जाना चाहिए और ऐसा करते समय उसे अपने दोनों पैरों को एक-दूसरे के साथ मिलाकर रखना चाहिए।

(ख) उसे अपने दोनों हाथों को अपने शरीर के समीप ही रखना चाहिए और इस प्रकार हथेलियों को फर्श के साथ भली प्रकार से चिपका देना चाहिए।

(ग) दोनों पैरों को एक-दूसरे के साथ मिलाकर रखना चाहिए और उन्हें ऊपर की तरफ इस प्रकार से उठाना चाहिए कि वह कम से कम 30 डिग्री का कोण निर्मित करें। इस स्थिति में कुछ समय के लिए रहना चाहिए।

(घ) इसके पश्चात् दोनों पैरों को थोड़ा ओर ऊपर उठाना चाहिए जिससे वह 60 डिग्री का कोण निर्मित करे तथा इस स्थिति में भी कुछ समय के लिए रूकना चाहिए।

(ङ) इस स्थिति के पश्चात् पैरों को थोड़ा-सा ओर ऊपर उठाना चाहिए जिससे वह 90 डिग्री का कोण निर्मित कर लें।

(च) इसके पश्चात् हाथों पर थोड़ा-सा दबाव डालते हुए पैरों को सिर के पीछे की तरफ ले जाना चाहिए। इस समय नितम्ब स्वयं ही ऊपर की तरफ उठने लगते हैं।

(छ) दोनों पैरों की अंगुलियों तथा अंगूठों को जमीन पर भली प्रकार से टिकाने के पश्चात् पैरों को धीमी गति के साथ पीछे की तरफ ले कर जाना चाहिए और ऐसा उस समय तक करना चाहिए जब तक व्यक्ति की ठुड्डी कंठ कूप से न लग जाएं।

(झ) इसी स्थिति में कुछ समय तक रहने का प्रयास करना चाहिए और उसके पश्चात् पैरों को जमीन से कम से कम 1 फीट की ऊंचाई तक उठा देना चाहिए।

(ण) थोड़े समय के पश्चात् धीरे-धीरे शरीर के अंगों को जमीन पर वापिस लेकर आएं और विश्राम करे।

लाभ: (क) इस आसन की सहायता से रीढ़ की हड्डी लचीली बन जाती है।

(ख) यह आसन शरीर में स्थित सभी नाड़ियों में रक्त के प्रवाह को कुशलतापूर्वक संचालित करने में सहायता प्रदान करता है।

(ग) इस आसन की सहायता से पेट की मांसपेशियाँ मजबूत तथा प्रबल हो पाती है।

(घ) यह आसन पेट तथा कमर पर चढ़ी चर्बी की अधिक मात्रा को कम करने में सहायता करता है।

(ङ) यह आसन मधुमेह के रोगियों के लिए विशेष रूप से लाभदायक होता है।

(च) इस आसन से उदर वायु विकार तथा कब्ज जैसे रोग बिलकुल सही हो जाते हैं।

(छ) महिलाओं में अनियमित रूप से होने वाले मासिक धर्म को नियमित करने में भी यह आसन बहुत सहायता प्रदान करता है।

ध्यान देने योग्य बातें: जिस समय व्यक्ति अपने पैरों को ऊपर उठाता है, उस समय उसे अपने घुटनों को बिलकुल सीधा रखना चाहिए। पैरों को नीचे लाते समय उसे अपना सिर जमीन पर ही रखना चाहिए। कभी भी अपने शरीर के साथ जबरदस्ती नहीं करनी चाहिए। यदि व्यक्ति को लगे कि वह सही प्रकार से आसन को नहीं कर पा रहा है तो उसे भी भी इसे करने का प्रयास नहीं करना चाहिए क्योंकि इससे मेरूदंड को हानि पहुंच सकती है। यह आसन उन व्यक्तियों को नहीं करना चाहिए जिन्हें कमर में दर्द या हृदय रोग की शिकायत हो।

मकरासन

मकर समुन्द्र में रहने वाला एक जीव होता है जो अपना मुंह तथा गर्दन जल की सतह से ऊपर रखता है। इस आसन को करने के पश्चात् व्यक्ति

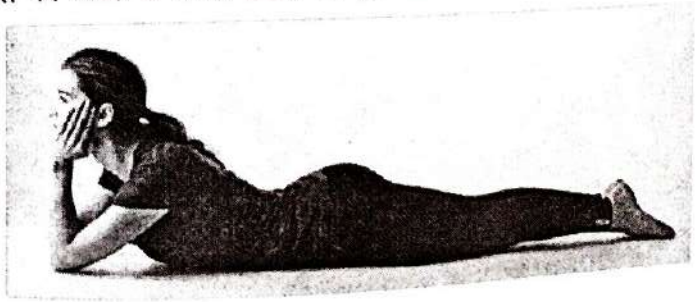

की शरीर की आकृति भी बिलकुल मकर के समान हो जाती है, इसलिए इसे मकरासन कहा जाता है।

विधि: (क) इस आसन को करने के लिए सर्वप्रथम व्यक्ति को पेट के बल फर्श पर लेट जाना चाहिए और भुजाओं को एक-दूसरे पर इस प्रकार से रखना चाहिए कि वह एक क्रॉस सा निर्मित करे। ऐसी स्थिति में व्यक्ति की हथेलियाँ कंधो से ऊपर होनी चाहिए।

(ख) कोहनियाँ भली प्रकार से फर्श के साथ चिपकी हुई होनी चाहिए।

(ग) दोनों पैरों को एक-दूसरे से दूर रखना चाहिए और इस समय अंगूठों को बाहर की तरफ रखना चाहिए। व्यक्ति को अपना चेहरा अपने हाथों के बीच में रखना चाहिए।

(घ) धीमी गति के साथ श्वांस लेना चाहिए और कम से कम दो मिनट की अवधि के लिए इसी मुद्रा में रहने का प्रयास करना चाहिए।

लाभ: (क) इस आसन की सहायता से व्यक्ति का शरीर सभी प्रकार के तनावों से मुक्ति प्राप्त कर पाता है।

(ख) इस आसन से शरीर की मांसपेशियों को आराम प्राप्त होता है।

(ग) यह मानसिक तथा हृदय रोगियों के लिए बहुत उपयोगी तथा महत्वपूर्ण आसन माना जाता है।

ध्यान देने योग्य बातें: इस आसन को आरम्भ में दो या तीन मिनट की अवधि के अधिक के लिए नहीं किया जाना चाहिए।

मंडूकासन

विधि: (क) इस आसन को करने के लिए व्यक्ति को फर्श पर अपने दोनों घुटनों को मोड़कर बैठना चाहिए। घुटने इस प्रकार से मुड़े होने चाहिए कि दोनों पैरों के अंगूठे एक-दूसरे के साथ मिल जाएं। इस प्रकार ऐड़ियाँ भी इस प्रकार से मिलाकर रखनी चाहिए जिससे व्यक्ति उस पर आसानी से बैठ सकें।

(ख) इसके बाद दोनों हाथों को मुड़े हुए घुटनों पर फैला देना चाहिए।

(ग) इस समय व्यक्ति को अपनी भुजाएँ बिलकुल सीधी रखनी चाहिए।

लाभ: (क) यह आसन व्यक्ति की टांगों को शक्तिशाली बनाता है,

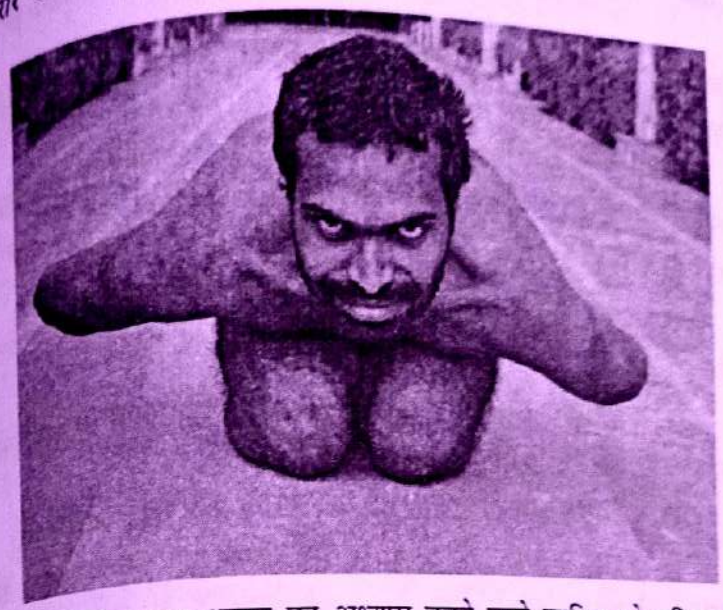

जिसके कारण इस आसन का अभ्यास करने वाले व्यक्ति को गठिए का रोग नहीं हो पाता।

(ख) अनावश्यक पदार्थ इस आसन की सहायता से शरीर से आसानी से निकाले जा पाते हैं।

(ग) इस आसन से पाचन क्रिया सही प्रकार से हो पाती है क्योंकि यह पाचन शक्ति को विकसित करने में सहायता करती है।

(घ) इस आसन से शरीर में पाए जाने वाले छोटे-मोटे विरोग स्वयं ही ठीक हो जाते हैं।

मृगासन

विधि: (क) इस आसन को करने के लिए व्यक्ति को अपनी टांगों को भली प्रकार से मोड़ देना चाहिए और उन पर शरीर का भार डालते हुए बैठना चाहिए।

(ख) इसके बाद उसे अपने पेट तथा छाती को जानुओं पर स्थिर कर देना चाहिए।

(ग) दोनों हाथों को पीछे की तरफ लेकर जाना चाहिए और सीधे तानते हुए उन्हें ऊपर की तरफ उठाना चाहिए।

(घ) श्वास को अन्दर लेने के पश्चात् व्यक्ति को अपने नितम्ब ऊपर

की तरफ उठाने चाहिए और ऐसा उस समय तक करना चाहिए जब तक शरीर का भार घुटनों पर न आ जाएं।

(ङ) इस अवस्था में कुछ समय तक रहने के पश्चात् हाथों को आगे लाएं और उन्हें बिलकुल सीधा कर ले। श्वांस बाहर निकाल दें तथा सामान्य अवस्था को प्राप्त करें।

लाभः (क) यह आसन मधुमेह के रोगियों के लिए बहुत उपयोगी होता है।

(ख) इस आसन की सहायता से शरीर पर चढ़ी हुई अतिरिक्त चर्बी को कम किया जा सकता है।

(ग) यह आसन पाचन क्रिया को सही करने में सहायता करता है।

(घ) गठिया से ग्रसित व्यक्तियों को इस आसन को नियमित रूप से करना चाहिए।

(ङ) इस आसन से टांगों, भुजाओं तथा गले को बहुत प्रकार से लाभ प्राप्त होता है।

वातायनासन

विधिः (क) इस आसन को करने के लिए सर्वप्रथम व्यक्ति को बिल्कुल सीधा खड़ा हो जाना चाहिए।

(ख) इसके पश्चात् उसे अपने एक पांव का घुटना फर्श पर टिका देना चाहिए जिससे दूसरा पांव स्वयं ही झुक जाएंगा।

(ग) जिस पैर का घुटना जमीन पर रखा है, उस पैर के पंजें को उठाकर दूसरे पैर की जांघ के मूल में लगाना चाहिए।

(घ) मोड़े हुए पैर का घुटना दूसरे पैर की ऐड़ी के समीप बिलकुल सटा हुआ होना चाहिए और यह जमीन पर स्पर्श करता होना चाहिए।

लाभः यह आसन एक व्यक्ति के पैरों को प्रबलता प्रदान करने में सहायता प्रदान करते हैं।

ध्यान देने योग्य बातेंः यह आसन पुरूषों को ही करना चाहिए और महिलाओं को इसका अभ्यास करने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए।

सिंहासन

विधिः (क) इस आसन को करने के लिए व्यक्ति को सर्वप्रथम घुटनों

को पीछे की तरफ मोड़ देना चाहिए।

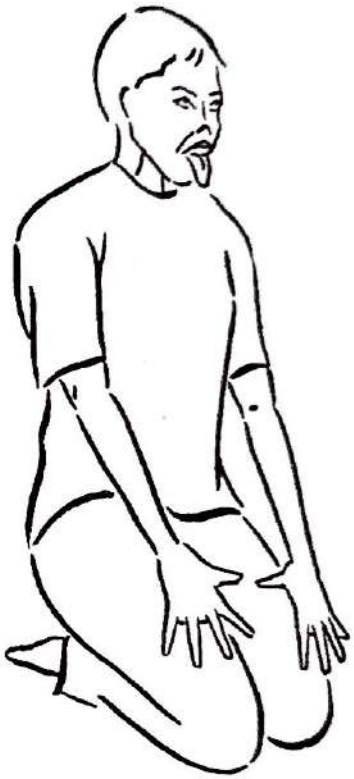

(ख) अंगूठों तथा पैर के निचले भाग को इस प्रकार से रखें कि वह एक कमान सी निर्मित कर दे। व्यक्ति को आसन करते समय इसी कमान पर बैठना चाहिए। इस समय उसे अपने कूल्हों को नीचे की तरफ रखना चाहिए।

(ग) शरीर को बिलकुल सीधा कर ले और सिर, गर्दन तथा मेरूदंड को एक सीध में रख दे। इस समय व्यक्ति को अपनी आंखें बिलकुल सीध में रखनी चाहिए।

(घ) हथेलियों को अपनी तरफ वाले घुटनों पर रख देना चाहिए तथा सामान्य रूप से श्वसन क्रिया कीजिए।

(ङ) थोड़े समय के पश्चात् मुंह से श्वास छोड़ना प्रारम्भ करे और इसी समय जीभ को बाहर की तरफ निकाल ले। जीभ को मुंह से बाहर निकालते समय ही पूरी हवा भी बाहर निकाल देनी चाहिए।

(च) जब पूरी तरह जीभ मुंह से बाहर निकल जाएं तो दोनों हाथों की अंगुलियों को फैला देना चाहिए और उन्हें कड़ा कर देना चाहिए। इसी प्रकार व्यक्ति को अपनी आंखों को भी फैला देना चाहिए। पूरा शरीर भली प्रकार से कड़ा रखना चाहिए। यही स्थिति सिंहासन की असली मुद्रा होती है और इसमें व्यक्ति को कम से कम छः या आठ सैकण्ड के लिए रहना चाहिए।

(छ) कुछ समय के पश्चात् श्वांस बाहर की तरफ छोड़ते हुए व्यक्ति को अपनी जीभ अन्दर की तरफ ले जानी चाहिए और शरीर को बिलकुल

ढ़ीला छोड़ देना चाहिए। मुंह बंद करके स्वाभाविक रूप से सांस लेने की क्रिया की जानी चाहिए।

लाभः (क) इस आसन की सहायता से सभी प्रकार की गले से संबंधित विकारों पर निजाद प्राप्त की जा सकती है।

(ख) यह आसन श्वासन संस्थान को सुदृढ़ करने में बहुत सहायता प्रदान करता है।

(ग) थायरायड नामक ग्रंथि इस आसन के द्वारा प्रबलता प्राप्त कर पाती है।

जानुशिरासन

जानु का अर्थ होता है घुटना। इस आसन के अन्तर्गत व्यक्ति अपने घुटने को सिर के अगले हिस्से के साथ स्पर्श करता है, इसलिए इसे जानुशिरासन कहा जाता है।

विधिः (क) सर्वप्रथम व्यक्ति को अपने दोनों पैरों को एक-दूसरे से मिलाकर उन्हें भली प्रकार से सामने की फैलाकर बैठ जाना चाहिए।

(ख) बाएं पैर को घुटने से मोड़ना चाहिए और उसके पंजे को हाथों की सहायता से जमीन पर इस प्रकार से टिका देना चाहिए कि दाएं पैर की जांघ से पैर का निचला हिस्सा जाकर चिपक जाएं।

(ग) इसके पश्चात् व्यक्ति को अपनी कमर के पीछे अपने दाएं हाथ को लपेट देना चाहिए।

(घ) बाहिने हाथ को हवा में ऊपर की तरफ उस समय तक उठाना चाहिए जब तक वह कान की सीध में न आ जाएं। इसके पश्चात् शरीर के ऊपर वाले भाग को कमर से आगे की तरफ धीमी गति के साथ झुकाना

चाहिए।

(ङ) इस समय बाएं हाथ की पहली दो अंगुलियों तथा अंगूठों की सहायता से दाएं पैर के अंगूठें को पकड़ना चाहिए तथा सिर को दाहिने पैर के घुटने के साथ लगा देना चाहिए। ऐसा करते समय व्यक्ति को अपने बाएं हाथ की कोहनी को जमीन के साथ लगा देना चाहिए।

(च) कुछ समय तक इसी मुद्रा में रहना चाहिए फिर पुनः सामान्य अवस्था को प्राप्त कर लेना चाहिए। फिर इसे दूसरे हाथ तथा पैर को प्रयोग करके करना चाहिए।

लाभः (क) यह आसन रीढ़ की हड्डी को लचक प्रदान करने में सहायता प्रदान करता है।

(ख) रीढ़ की हड्डी में पाए जाने वाले सभी प्रकार के रोग तथा दोष इस आसन की सहायता से दूर किए जा सकते है।

(ग) इस आसन की सहायता से नाड़ी संस्थान क्रियाशील हो पाता है तथा वह सही प्रकार से क्रिया कर पाता है।

(घ) यह आसन प्लीहा, यकृत तथा गुर्दों को क्रियाशील करने में सहायक होते हैं।

(ङ) पेट तथा जांघ पर अतिरिक्त चर्बी को इस आसन के द्वारा कम किया जा सकता है।

(च) यह आसन कोहनियों तथा कंधों को लचीला तथा पुष्ट करने में सहायता करता है।

(छ) इस आसन से विभिन्न प्रकार के यौन रोगों को ठीक किया जा सकता है।

(ज) मधुमेह के रोग से ग्रसित व्यक्तियों को इस आसन का अभ्यास अवश्य करना चाहिए।

ध्यान देने योग्य बातेंः मुद्रा को ग्रहण करते समय व्यक्ति को अपने दोनों पैर जमीन से लगाकर रखने चाहिए और जो पैर सीधा रखा हो, उसके पंजे को भी बिलकुल सीधा रखना चाहिए। पेट को अन्दर दबाने कि लिए श्वास को बाहर छोड़ने की क्रिया की जानी चाहिए। यदि किसी व्यक्ति की कमर में किसी भी कारण दर्द हो तो उसे इस आसन का अभ्यास नहीं

करना चाहिए।

अर्धमत्स्येन्द्रासन

जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, यह आसन मत्स्येन्द्रासन का ही अन्य रूप होता है। इस आसन के अन्तर्गत व्यक्ति को अपनी रीढ़ की हड्डी को स्थिर रखना होता है और अपने अक्ष पर घूमना होता है।

विधि: (क) सर्वप्रथम व्यक्ति को अपने दोनों पैर घोलकर फर्श पर बैठ जाना चाहिए।

(ख) दाएं पैर को घुटने से मोड़ना चाहिए और इस प्रकार से खड़े होते हुए उसे अपने बांए पैर के घुटने के बाहर की तरफ पैर का निचला भाग फर्श पर रखना चाहिए।

(ग) बाएं पैर को घुटने को मोड़ना चाहिए और उसे सीवनी के साथ चिपका देना चाहिए।

(घ) शरीर को दाहिनी तरफ मोड़ देना चाहिए और बाएं हाथ को दाएं पैर के घुटने के ऊपर की तरफ लपेट देना चाहिए और इस समय उसे अपने दाहिने पैर के अंगूठे को पकड़ लेना चाहिए।

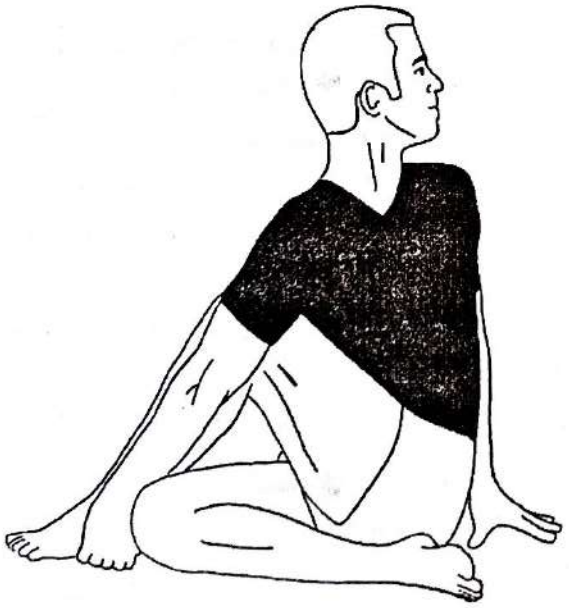

(ङ) रीढ़ की हड्डी को दांई तरफ मोड़ देना चाहिए और दाएं हाथ को पीठ के पीछे की तरफ अधिक ले जाना चाहिए। इसके पश्चात् सिर को भी दाएं कंधे की तरफ घुमा देना चाहिए। इस स्थिति में रहते हुए व्यक्ति को अपने दाएं हाथ की सहायता से दाएं पैर की पिंडली को पकड़ने का प्रयत्न करना चाहिए।

(च) कुछ समय तक इस मुद्रा में रहने के पश्चात् साधारण स्थिति में आ जाना चाहिए और फिर इस आसन का अभ्यास विपरीत दिशा में करना चाहिए।

लाभ: (क) यह आसन मेरूदंड को लचीला बनाने तथा उसे प्रबलता प्रदान करने में सहायक होता है।

(ख) इस आसन के कारण शरीर में उपस्थित मांसपेशियाँ, पसलियाँ तथा फेफड़ें सुदृढ़ हो पाते हैं।

(ग) इस आसन की सहायता से मनुष्य का पाचन तंत्र सभी प्रकार से विरोगरहित हो जाता है।

(घ) यह आसन मधुमेह नामक रोग की रोकथाम करने में विशेष सहायता करता है।

(ङ) शरीर के विभिन्न अंगों में बढ़ी हुई चर्बी की मात्रा को इस आसन की सहायता से कम किया जा सकता है।

(च) यह आसन हाथों, घुटनों तथा जांघों को दृढ़ता प्रदान करने में सहायक होता है।

ध्यान देने योग्य बातें: आसन करते समय कभी भी धड़ को अधिक आगे की तरफ नहीं झुकाना चाहिए बल्कि रीढ़ की हड्डी सदैव सीधी होनी चाहिए। पैर का निचला भाग फर्श से भली प्रकार से जुड़ा होना चाहिए।

बकासन

विधि: (क) सर्वप्रथम दोनों हाथों के पंजों को जमीन पर टिकाकर बैठ जाएं।

(ख) दोनों पैरों को एक-दूसरे के समीप रखें जिससे उनकी ऐड़ियाँ गुदा के बिलकुल मध्य में स्थित हो जाएं। इस समय व्यक्ति को अपने दोनों घुटनों के बीच थोड़ी दूरी अवश्य रखनी चाहिए।

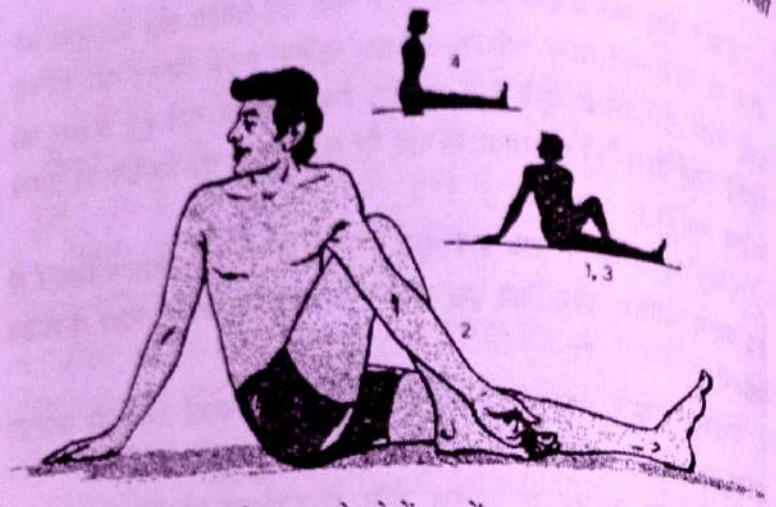

(ग) सम्पूर्ण शरीर के भार को दोनों हाथों पर डाल देना चाहिए और दोनों पैरों की सहायता को शरीर को फर्श से उठाने का प्रयास करना चाहिए।

(घ) इस मुद्रा में अधिक-से-अधिक समय तक रहने का प्रयास करना चाहिए।

लाभ: (क) इस आसन की सहायता से मनुष्य के हाथ शक्तिशाली तथा पुष्ट हो जाते हैं।

(ख) व्यक्ति को अपना शरीर संतुलित अवस्था में रखने का अभ्यास हो जाता है जिससे वह शरीर के विभिन्न अंगों को नियंत्रण में आसानी से रख पाता है।

ध्यान देने योग्य बातें: इस आसन को दोनों हाथों को घुटनों के मध्य में रखकर भी किया जा सकता है। आसन को करते समय व्यक्ति का पूरा-पूरा ध्यान दोनों भौंहों के बीच में स्थित आज्ञाचक्र पर होना चाहिए।

गोरक्षासन

विधि: (क) सर्वप्रथम जमीन पर दोनों पैरों को फैला कर बैठ जाना चाहिए।

(ख) दोनों पैरों को घुटनों से मोड़ देना चाहिए और उनके निचले भागों को नाभि की बिलकुल सीध में ले आना चाहिए। यह इस प्रकार से किया जाना चाहिए कि एक पैर की ऐड़ी दूसरे पैर की ऐड़ी से तथा एक पैर का

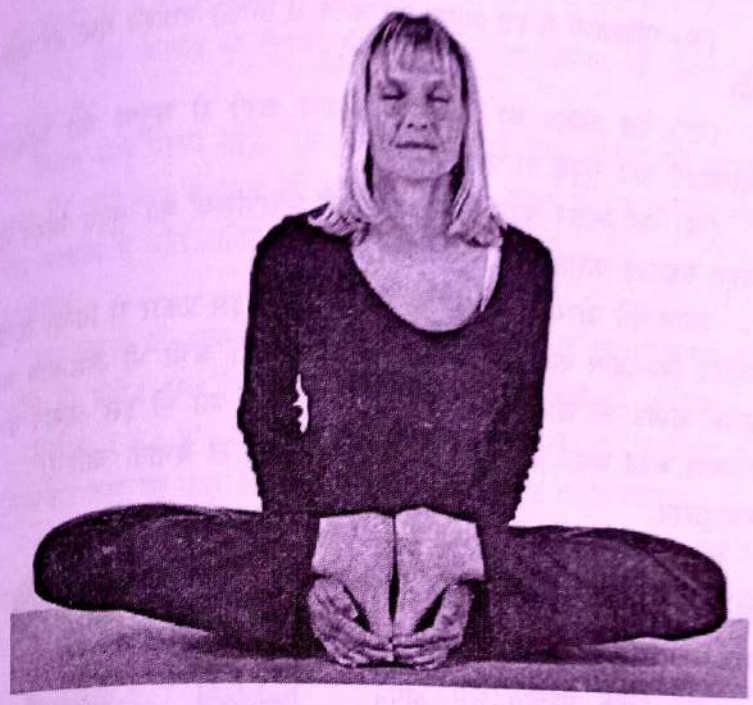

अंगूठा दूसरे पैर के अंगूठे से मिल जाएं।

(ग) दोनों घुटनों को भूमि पर भली प्रकार से टिका देना चाहिए।

(घ) इसी समय दोनों पैरों की ऐड़ियों को लिंग तथा गुर्दे के बीच में स्थित कर देना चाहिए।

(ङ) दोनों जंघाएँ भली प्रकार से जमीन से सटी होनी चाहिए।

(च) इसके पश्चात् दोनों हाथों की हथेलियों को घुटनों पर रखना चाहिए और ऐसा करते समय रीढ़ की हड्डी को किसी भी प्रकार से मोड़ना नहीं चाहिए।

(छ) इस आसन को करते समय व्यक्ति को अपनी आंखें नाक के उग्र भाग पर टिका कर रखनी चाहिए।

लाभ: (क) यह आसन वीर्य रक्षा करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

(ख) जिस व्यक्ति को स्वप्नदोष नामक विकार हो, उसे इस आसन का अभ्यास करना चाहिए।

(ग) पुरूषों में यह शुक्रासन पुष्ट रखने में सहायता करता है।

(घ) महिलाओं में इस आसन को करने से उनका गर्भाशय पुष्ट हो पाता है।

(ङ) इस आसन का नियमित अभ्यास करने से मनुष्य की भुजाएं बलशाली तथा सुदृढ़ हो पाती है।

(च) यह आसन घुटनों तथा जांघों की मांसपेशियों को सुदृढ़ करने में बहुत सहायता करता है।

ध्यान देने योग्य बातें: इस आसन को सदैव इस प्रकार से किया जाना चाहिए कि दबाव केवल सीवन स्थान पर ही पड़े। कभी भी अंडकोष या उसके समीप की खाल दबनी नहीं चाहिए। स्त्रियों को भी इस आसन का अभ्यास करते समय अपनी जननेन्द्रियों को दबाव से बचाना चाहिए।

गरूड़ासन

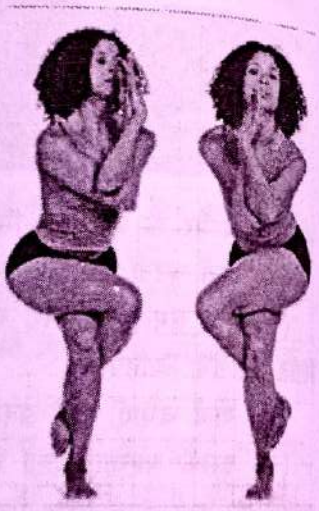

विधि : (क) इस आसन को करने के लिए व्यक्ति को बिलकुल सीधे खड़े हो जाना चाहिए।

(ख) इसके पश्चात् उसे अपने एक पैर को दूसरे पैर पर इस प्रकार से लपेट देना चाहिए जैसे पेड़ की बेले लिपट रही हो। इसी प्रकार उसे अपने दोनों हाथों को भी एक-दूसरे पर लपेट देना चाहिए, जो इस प्रकार से किया जाना चाहिए कि दोनों हाथों की हथेलियाँ एक-दूसरे के साथ जुड़ जाएं।

(ग) व्यक्ति को अपनी एक टांग को बिलकुल सीधा रखना चाहिए और दूसरी को उस पर लिपटा देना चाहिए।

(घ) इस मुद्रा में अधिक समय तक रहने का प्रयास करना चाहिए।

लाभः (क) इस आसन की सहायता से मनुष्य के हाथ तथा पैर शक्तिशाली तथा सुदृढ़ हो जाते है।

(ख) यह आसन घुटनों तथा पैर में किसी भी कारण से होने वाले दर्द को ठीक करने में सहायता करता है।

(ग) इस आसन से वृषण वृद्धि नाम रोग का उपचार भी किया जा सकता है।

ध्यान देने योग्य बातें: इस आसन को करते समय व्यक्ति को अपना एक पैर पूर्ण रूप से फर्श के साथ चिपकाकर रखना चाहिए अन्यथा वह गिर सकता है और क्षतिग्रस्त हो सकता है।

सर्पासन

इस प्रकार के आसन को करने से मनुष्य का शरीर बिलकुल सर्प की भांति ही प्रतीत होता है इसलिए इसे सर्पासन कहा जाता है।

विधिः (क) इस आसन को करने के लिए व्यक्ति को फर्श पर दरी बिछाकर उस पर उदर के बल बिलकुल सीधा लेट जाना चाहिए।

(ख) उसे अपने दोनों हाथों की हथेलियों को सीने के आस-पास ही रख लेना चाहिए। इस समय उसे सम्पूर्ण शरीर की मांसपेशियाँ बिलकुल ढ़ीली छोड़ देनी चाहिए।

(ग) माथा फर्श पर टिका देना चाहिए और पैरों को सामने की तरफ फैला देना चाहिए। फिर उन्हें पीछे की तरफ मोड़ने का प्रयास करना चाहिए।

(घ) सिर को हवा में ऊपर की तरफ उठाना चाहिए और ऐसा करते समय छाती फर्श पर भली प्रकार से लगी होनी चाहिए।

(ङ) इसके पश्चात् धीमी गति के साथ छाती को फर्श से ऊपर की तरफ उठाना चाहिए परन्तु इस समय नाभि से लेकर पैरों तक का भाग भूमि पर टिका रहने देना चाहिए।

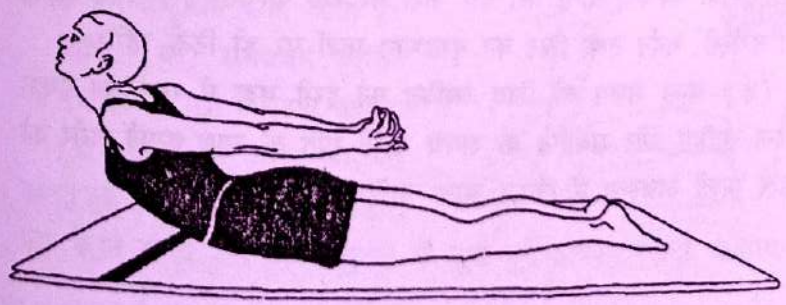

(च) इस समय व्यक्ति को श्वास लेना बंद कर देना चाहिए और कुछ समय के लिए इसी मुद्रा को बनाएं रखना चाहिए।

(छ) मुद्रा को समाप्त करने के लिए बाहर की तरफ श्वांस छोड़ते हुए सिर तथा छाती को नीचे की तरफ फर्श पर लेकर आना चाहिए।

लाभः (क) यह आसन आमाश्य की पेशियों पर दबाव डालता है जिससे इन भागों में रक्त का प्रसारण तेजी के साथ हो पाता है।

(ख) इस आसन की सहायता से व्यक्ति की रीढ़ की हड्डी लचील हो पाती है।

(ग) व्यक्ति को स्फूर्ति तथा आनन्द की अनुभूति हो पाती है।

(घ) यदि किसी व्यक्ति को स्वप्नदोष नामक रोग हो तो उसे इस आसन का अभ्यास अवश्य करना चाहिए।

(ङ) इस आसन की सहायता से व्यक्ति के गुर्दे तथा आंतें स्वस्थ्य रहती है।

सेतुबन्धासन

विधिः (क) इस आसन को करने के लिए व्यक्ति को अपनी पीठ के बल पर लेट जाना चाहिए।

(ख) थोड़े समय के पश्चात् उसे अपनी दोनों टांगे एक-दूसरे के साथ जोड़ देनी चाहिए और फिर उन्हें ऊपर की तरफ उठाने का प्रयास करना चाहिए।

(ग) दोनों हाथों की कोहनियों को जमीन पर भली प्रकार से टिका देना चाहिए और फिर पूरे शरीर को हाथों की सहायता से ऊपर उठाने का प्रयास करना चाहिए।

(घ) दोनों हाथों की सहायता से कमर को पकड़ने का प्रयास कीजिए और उसके पश्चात् दोनों पैरों को फर्श पर रख दीजिए। इस समय व्यक्ति की हथेली, गर्दन तथा सिर का पृष्ठभाग फर्श पर ही टिके रहेंगे।

(ङ) कुछ समय के लिए व्यक्ति को इसी मुद्रा में रहने का प्रयास करना चाहिए और समाप्ति के समय धीमी गति के साथ अपने शरीर को पहले वाली अवस्था में लेकर आना चाहिए।

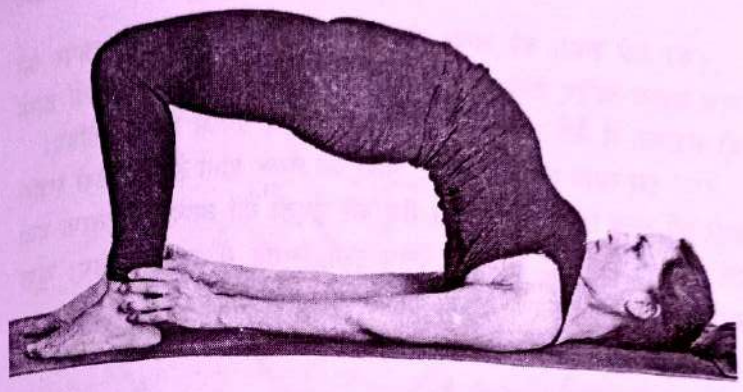

लाभः (क) इस आसन की सहायता से व्यक्ति के शरीर में शक्ति का विकास हो पाता है।

(ख) यह आसन उदर रोगों का निवारण करने में सहायता करता है।

(ग) इस आसन की सहायता से फेफड़ें तथा पसलियाँ प्रबल हो पाती है।

(घ) यह आसन श्वास रोग के निवारण के लिए भी सहायक होता है।

(ङ) इस आसन से मनुष्य के शरीर की मांसपेशियाँ प्रबल हो पाती है।

ध्यान देने योग्य बातेंः यह आसन आधा मिनट से तीन मिनट तक के लिए किया जा सकता है।

उष्ट्रासन

उष्ट्र या उठ को रेगिस्तान का जहाज कहा जाता है। इस आसन से मनुष्य का शरीर उष्ट्र की आकृति ग्रहण कर लेता है और यही कारण है कि इसे उष्ट्रासन कहा जाता है।

विधिः (क) सर्वप्रथम व्यक्ति को वज्रासन की मुद्रा में बैठना चाहिए।

(ख) घुटनों पर शरीर का भार डालते हुए उसे खड़े हो जाना चाहिए। ऐसा करते समय उसे अपने घुटनों में कुछ दूरी अवश्य रखनी चाहिए।

(ग) उसे श्वास को अन्दर लेते हुए अपने दोनों हाथों को ऊपर की तरफ उठाना चाहिए तथा पेट को आगे की तरफ निकालते हुए दोनों हाथों की सहायता से पैरों की ऐड़ियों को पकड़ने का प्रयास करना चाहिए।

(घ) इस समय व्यक्ति का सिर पीछे की तरफ होता है और उसे श्वांस बाहर की तरफ छोड़ते हुए अपनी रीढ़ की हड्डी को अन्दर की तरफ दबा देना चाहिए और कुछ समय के लिए इसी स्थिति में रहना चाहिए। कुछ समय के पश्चात् सामान्य स्थिति ग्रहण कर लेनी चाहिए।

लाभ : (क) इस आसन की सहायता से पेट के सभी अंगों की कार्यक्षमता विकसित हो जाती है।

(ख) यह आसन मानव शरीर में उपस्थित पसलियों को प्रबलता प्रदान करता है।

(ग) इस आसन से लीवर की शिथिलता दूर हो पाती है।

ध्यान देने योग्य बातें : इस आसन को प्रारम्भ में तीन मिनट की अवधि के लिए ही प्रयोग करना चाहिए।

कुक्कुटासन

विधि: (क) सर्वप्रथम व्यक्ति को पद्मासन की मुद्रा में बैठना चाहिए।

(ख) दाएं हाथ को दाई पिंडली तथा जांघ के मध्य में से निकालना चाहिए।

(ग) बाएं हाथ को बाईं पिंडली तथा जांघ के मध्य से निकालना चाहिए।

(घ) हाथों की हथेलियों को फर्श पर भली प्रकार से टिका दो तथा फिर उन्हें धीमी गति के साथ उठाओ।

(ङ) इस क्रिया को तीन या चार बार दोहराने का प्रयास करना चाहिए।

लाभ: (क) इस आसन की सहायता से मनुष्य के हाथ, कंधे तथा सीना प्रबल होते है।

(ख) इससे व्यक्ति अपने शरीर को संतुलित अवस्था में रख पाना सीख पाता है।

ध्यान देने योग्य बातें: इस आसन को आरम्भ में अधिकतम पांच सेंकेड के लिए ही किया जाना चाहिए परन्तु समय के साथ इसकी अवधि

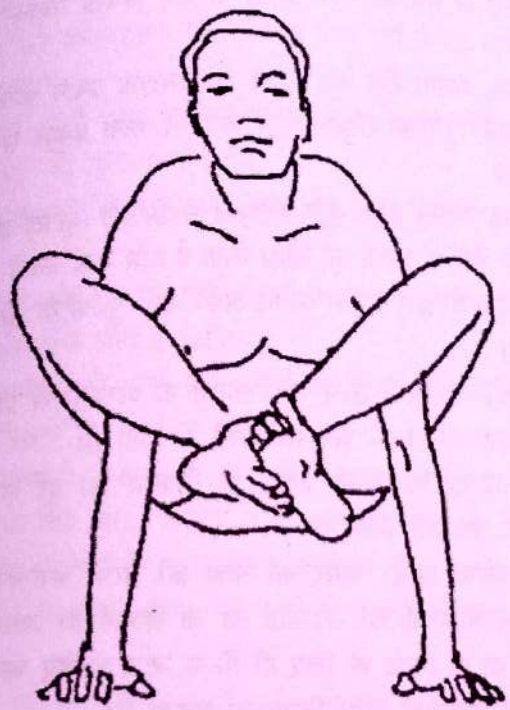

को पांच मिनट तक बढ़ाया जा सकता है।

स्वस्तिकासन

विधि: (क) इस आसन को करने के लिए फर्श पर दोनों पैरों को मोड़कर जांघ तथा पिंडलियों के बिलकुल मध्य में इस प्रकार से रखें कि पैरों के दोनों पंजे घुटनों के बिलकुल नीचे आ जाएं।

(ख) दोनों हाथों को घुटनों पर रखते हुए कमर को बिलकुल सीधा करके बैठ जाना चाहिए।

लाभ: (क) इस आसन को

करने से पैरों से संबंधित सभी प्रकार के रोग अथवा विकास दूर हो जाते हैं।

(ख) यह आसन रीढ़ की हड्डी को प्रबलता प्रदान करती है।

(ग) इससे रक्त का संचालन पूरे शरीर में भली प्रकार से हो पाता है।

कर्णपीड़ासन

विधि: यह आसन बहुत कुछ हलासन से मिलता-जुलता होता है परन्तु इसके अन्तर्गत पैरों के घुटनों को मोड़ा जाता है और उन्हें कानों के बहुत-ही समीप रखा जाता है। इस समय व्यक्ति अपने दोनों घुटनों के बीच में अपना सिर रखता है।

लाभ: (क) वह सभी लाभ जो हलासन के अभ्यास से प्राप्त होते हैं, उनकी प्राप्ति इस आसन के अभ्यास करने से होती है।

(ख) पेट से संबंधित सभी प्रकार के विकारों को दूर करने में यह आसन बहुत ही उपयोगी होता है।

ध्यान देने योग्य बातें: कमर को पीछे की तरफ धकेलने के लिए आरम्भिक चरणों में हाथों की सहायता ली जा सकती है। आरम्भ में इसे अधिकतम एक या दो मिनट के लिए ही किया जाना चाहिए परन्तु बाद में इसे आठ से दस मिनट के लिए किया जा सकता है।

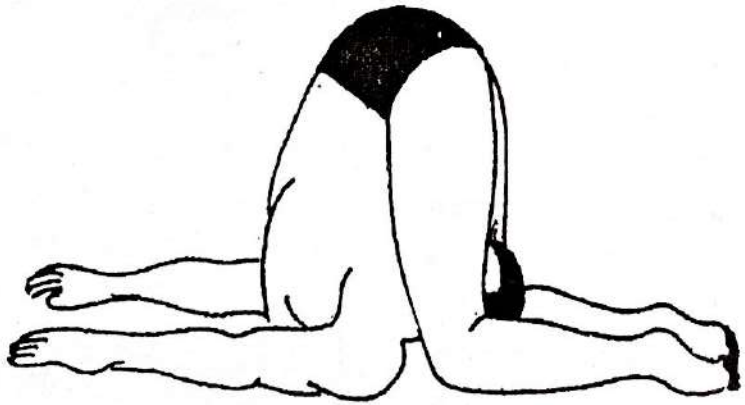

सुप्त वज्रासन

विधि: (क) इस आसन को करने के लिए व्यक्ति को अपनी टांगों को मोड़ देना चाहिए।

(ख) उसे अपने दोनों पैरों को इतना खोलना चाहिए कि उनमें कम से कम एक फुट की दूरी अवश्य हो।

(ग) पीछे की तरफ छुककर पीठ के बल लेटने का प्रयास करना चाहिए।

(घ) पीठ को फर्श से ऊपर उठाने का प्रयास करना चाहिए और सिर को पीठ की तरफ मोड़ना चाहिए।

(ङ) व्यक्ति की दोनों टांगें उसके हाथों पर होनी चाहिए।

(च) जितनी देर के लिए हो सके, इस स्थिति में रहना चाहिए।

(छ) सामान्य अवस्था में आने के लिए गर्दन को धीमी गति के साथ सीधी करके बैठ जाना चाहिए तथा टांगो को खोलकर सीधे लेट जाना चाहिए। इस समय शरीर को बिलकुल ढ़ीला छोड़ देना चाहिए।

लाभ: (क) इस आसन को करने से व्यक्ति की टांगे सुदृढ़ हो जाती है।

(ख) गले से संबंधित सभी प्रकार के रोग इसी आसन की सहायता से दूर होते हैं।

(ग) यह आसन आंखों की ज्योति को बढ़ाने में सहायता करता है।

(घ) श्वांस तथा दमें से संबंधित सभी प्रकार के विकार इस आसन की सहायता से ठीक हो जाते हैं।

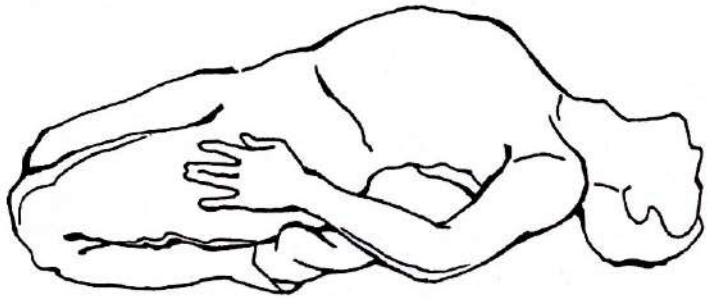

(ङ) उदर रोगों से निवारण प्रदान करने में यह आसन विशेष महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

(च) यदि कमर में किसी भी कारणवश दर्द हो तो इस आसन के अभ्यास से वह ठीक किया जा सकता है।

गुप्तासन

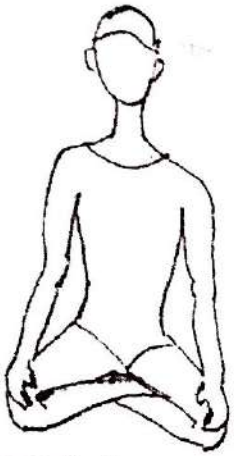

विधि: (क) इस आसन को करने के लिए सर्वप्रथम फर्श पर अपने बाएं पैर को मोड़कर बैठ जाना चाहिए। यह इस प्रकार से मोड़ा जाना चाहिए कि इसकी ऐड़ी गुर्दे के बहुत समीप पहुंच जाएं तथा उसे स्पर्श करने लगे।

(ख) इसके बाद नितम्ब को ऊपर की तरफ उठाना चाहिए तथा दाएं पैर को बाएं पैर की जांघ व पिंडली के मध्य में छुपाकर रखनी चाहिए।

(ग) दोनों हाथों को घुटनों पर रखते हुए कमर को सीधा करने का प्रयास करना चाहिए।

(घ) इस स्थिति में थोड़े समय के लिए रहना चाहिए जिसके पश्चात् धीमी गति के साथ सामान्य अवस्था प्राप्त कर लेनी चाहिए।

लाभ: (क) इस आसन का अभ्यास करने से व्यक्ति में वीर्य से संबंधित पाएं जाने वाले सभी विकारों का नाश हो जाता है।

(ख) यह उन व्यक्तियों के लिए विशेष लाभकारी होता है जिन्होंने ब्रह्मचर्य नियम का पालन कर रखा हो।

कूर्मासन

विधि: (क) सबसे पहले व्यक्ति को व्रजासन की मुद्रा ग्रहण कर लेनी चाहिए।

(ख) इसके पश्चात् उसे अपने हाथों की मुट्ठियों को बांधना चाहिए और दोनों कोहनियों को एक-दूसरे के साथ मिलाना चाहिए। इसके पश्चात् दोनों कोहनियों को नाभि पर टिका देना चाहिए।

(ग) फिर उसे अपनी कोहनियों को आगे की तरफ झुका देना चाहिए और ऐसा करते हुए नितम्ब को ऐड़ियों पर ही रखना चाहिए।

(घ) इस मुद्रा में अधिकतम समय के लिए रहना चाहिए।

लाभ: (क) यह आसन मनुष्य में एकाग्रता शक्ति का विकास करता है।

(ख) इस आसन की सहायता से घुटनों में किसी भी कारण से हो रहा दर्द ठीक हो जाता है।

(ग) यह वायु विकार को दूर करने में सहायता करता है।

(घ) इस आसन के द्वारा शरीर में उष्मा तथा ऊर्जा का विकास हो पाता है।

हृदयस्तंभासन

विधि: (क) सबसे पहले व्यक्ति को बिलकुल सीधे जमीन पर लेट जाना चाहिए और फिर हाथों को सिर की तरफ लम्बा करना चाहिए।

(ख) हाथों तथा पैरों के बीच कम से कम एक फुट की दूरी अवश्य होनी चाहिए। फिर दोनों पैरों तथा हाथों को एक फुट की ऊंचाई तक उठाना चाहिए।

(ग) आंखों को हृदय स्थल पर ही टिका कर रखनी चाहिए और धीमी गति के साथ हाथों तथा पैरों को नीचे रखकर धीरे से श्वास लेना चाहिए।

लाभ: (क) इस आसन की सहायता से मनुष्य का हृदय सुदृढ़ हो पाता है।

(ख) नियमित रूप से इसका अभ्यास करने से छाती, गर्दन तथा पेट से संबंधित रोगों का निवारण हो जाता है।

ध्यान देने योग्य बातें - इस आसन को कभी भी महिलाओं द्वारा गर्भास्था के दौरान नहीं किया जाना चाहिए।

स्थितऊर्ध्वपादविस्तृतासन

विधि: (क) इस आसन को करने के लिए व्यक्ति को टांगों को सीधा रखते हुए फर्श पर बैठना चाहिए।

(ख) अधिकतम दूरी तक दोनों टांगों को फैलाने का प्रयास करना

चाहिए।

(ग) इसके पश्चात् दोनों हाथों से दोनों पैरों के अंगूठों को पकड़ने का प्रयास करना चाहिए। ऐसा करते समय टांगों को भूमि से कम-से-कम डेढ़ फीट तक उठाया जा सकता है।

(घ) अंगूठों को पकड़ते समय व्यक्ति की टांगे तथा हाथ, दोनों बिलकुल सीधे होने चाहिए।

(ङ) जब तक हो सके, तब तक इस अवस्था में रहने का प्रयास करना चाहिए परन्तु जैसे ही व्यक्ति थकावट महसूस करने लगे तो उसे इसका अभ्यास करना छोड़ देना चाहिए।

लाभ: (क) यह आसन बाजुओं तथा टांगों में शक्ति प्रदान करने में सहायता करता है।

(ख) शरीर को इस आसन का अभ्यास करने से स्फूर्ति तथा ताकत प्राप्त होती है।

(ग) यह आसन पाचन क्रिया को ठीक कर देता है।

(घ) इस आसन की सहायता से व्यक्ति के पीठ, नाभि तथा पेट में किसी भी प्रकार का कोई रोग नहीं हो पाता।

ध्यान देने योग्त बातें: इस आसन को करते समय व्यक्ति को अपनी दोनों टांगों को अधिकतम दूरी तक खोल देना चाहिए और कभी भी अंगूठों को पकड़ते समय टांगों को मोड़ना नहीं चाहिए।

मूनमनासन

विधि: (क) इस आसन को करने के लिए सर्वप्रथम व्यक्ति को दोनों पैरों को विपरीत दिशा में रखते हुए बैठ जाना चाहिए।

(ख) इसके पश्चात् उसे अपने दोनों हाथों की सहायता से पैरों के अंगूठों को पकड़ने का प्रयास करना चाहिए।

(ग) शरीर को आगे की तरफ झुकाने का प्रयास करना चाहिए और उस समय तक झुकाते रहना चाहिए जब तक माथा फर्श से स्पर्श न कर लें।

लाभ: (क) यह आसन सभी प्रकार के गुप्त रोगों को नष्ट करने में सहायता प्रदान करता है।

(ख) इस आसन की सहायता से शरीर में जमा हुई अतिरिक्त चर्बी को कम किया जा सकता है।

(ग) इस आसन के निरन्तर अभ्यास से रक्त परिसंचरण की क्रिया सही प्रकार से हो पाती है।

पादोगुष्ठासन

विधि: (क) सबसे पहले जमीन पर पैरों के निचले भागों पर शरीर का भार डालकर भली प्रकार से बैठ जाना चाहिए।

(ख) इसके पश्चात् व्यक्ति को अपने बाएं पैर की ऐड़ी उठानी चाहिए और पंजे के बल बैठ जाना चाहिए।

(ग) दाहिने पांव को ऊपर की तरफ उठाकर घुटने से मोड़ देना चाहिए और बाएं पांव के ऊपर रखें दोनों हाथों की सहायता से नमस्कार की मुद्रा निर्मित की जानी चाहिए।

लाभ: (क) यह आसन मन की एकाग्र शक्ति को विकसित करने में विशेष महत्वपूर्ण होता है।

(ख) इस आसन से वीर्य संबंधी सभी प्रकार के विकारों का निवारण किया जा सकता है।

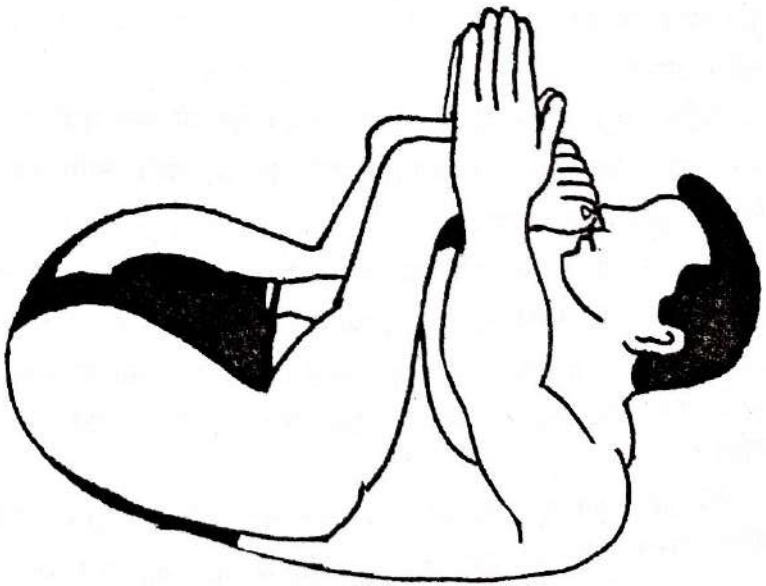

ब्रह्मचर्यासन

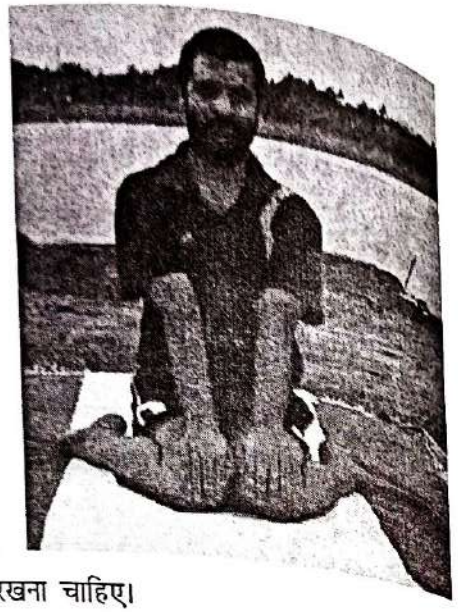

विधि: (क) सर्वप्रथम व्यक्ति को अपने दोनों पांव घुटनों से पीछे की तरफ मोड़ते हुए बैठ जाना चाहिए।

(ख) पांवों को जंघा से दूर ही रखना चाहिए और उन्हें इस प्रकार से फैलाना चाहिए कि उसकी ऐड़ी तथा पंजे फर्श को साथ स्पर्श करे।

(ग) इसके पश्चात् दोनों हाथों को घुटनों पर टिकाना चाहिए और ऐसा करते समय आंखों को बिलकुल सीधा रखना चाहिए।

लाभ: (क) यह आसन मन की एकाग्र शक्ति विकसित करने में सहायता करता है।

(ख) इस आसन का अभ्यास करने से घुटनों में किसी भी कारण से होने वाला दर्द ठीक हो जाता है।

नाभि आसन

विधि: (क) आरम्भ में व्यक्ति को अपने पेट के बल फर्श पर लेट जाना चाहिए। इस समय उसे अपनी कपाल नासिक, छाती, नाभि तथा पैर बिलकुल सीधे रखने चाहिए।

(ख) उसे अपने दोनों हाथों को आगे की तरफ ले जाना चाहिए और शरीर को ऊपर की तरफ खींचकर लम्बा करने का प्रयत्न करना चाहिए।

(ग) दोनों पैरों तथा हाथों के बीच कम से कम दो फुट की दूरी अवश्य रखनी चाहिए और इन्हें कम से कम एक फुट की ऊंचाई तक उठाना चाहिए।

(घ) धीमी गति के साथ पैरों तथा हाथों को नीचे की तरफ लाना चाहिए और इस समय उसे श्वास भी बहुत धीरे से बाहर की तरफ छोड़ने

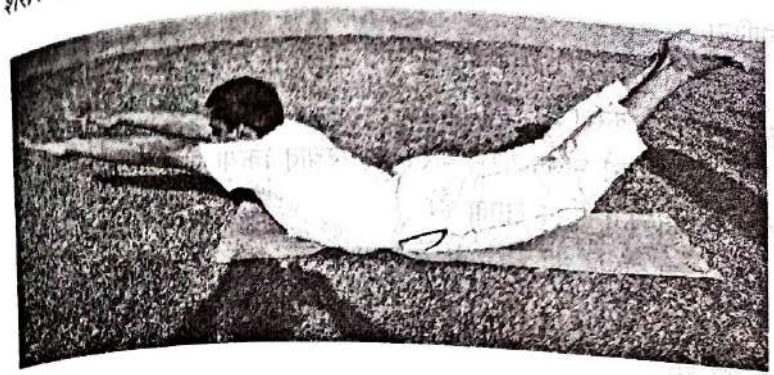

चाहिए।

लाभ: (क) इस आसन से व्यक्ति की भोजन को पचाने की क्षमता का विकास हो पाता है।

(ख) इससे मनुष्य की नाभि शक्तिशाली हो पाती है जिससे उसका शरीर विभिन्न प्रकार के मस्तिष्क संबंधी रोगों से बच पाता है।

(ग) पेट पर जमा हुई अतिरिक्त चर्बी इस आसन की सहायता से कम की जा सकती है।

(घ) इस आसन को यदि कम आयु में ही प्रयोग किया जाएं तो शरीर की लम्बाई को बढ़ाया जा सकता है।

पादतलसंयुक्त मूर्द्धास्पर्शासन

विधि: (क) इस आसन को करने के लिए व्यक्ति को फर्श पर बिलकुल सीधे बैठ जाना चाहिए।

(ख) उसे अपनी दोनों टांगों को सामने की तरफ सीधे सटाकर रखना चाहिए।

(ग) उसे अपने दोनों हाथों की सहायता से दोनों पैरों की अंगुलियों को पकड़ने का प्रयास करना चाहिए।

(घ) श्वांस को बाहर छोड़ते हुए उसे दोनों पैरों के निचले भागों को एक-दूसरे के साथ जोड़ना चाहिए और सिर के आगे वाले भाग के साथ स्पर्श करना चाहिए।

(ङ) कुछ समय के पश्चात् इस मुद्रा में रहने के पश्चात् धीमी गति के साथ पैरों को नीचे लेकर आना चाहिए और टांगों को सीधा कर देना

चाहिए।

लाभ: (क) यह आसन पेट से संबंधित सभी रोगों को ठीक करने में सहायता प्रदान करता है।

(ख) यदि इसे भोजन ग्रहण करने के पश्चात् किया जाएं तो उसे हजम होने में बहुत कम समय लगता है।

(ग) इस आसन की सहायता से वायु विकार दूर हो जाते हैं।

(घ) यह आसन उन व्यक्तियों को अवश्य करना चाहिए जिन्हें गठिए का रोग हो।

ध्यान देने योग्य बातें: इस आसन को करते समय व्यक्ति को अपनी आंखें दोनों पांवों के ऐड़ी के भाग के नीचे से सामने ही रखनी चाहिए और उसे क्रिया करते समय कभी भी न ही श्वास लेने चाहिए और न ही छोड़ने चाहिए।

उत्कटासन

विधि: (क) सर्वप्रथम फर्श पर बिलकुल सीधे खड़े हो जाएं। इस समय दोनों पैरों के बीच कम से कम एक फुट का अंतर अवश्य होना चाहिए।

(ख) इसके पश्चात् हाथों को कमर पर रखना चाहिए तथा शरीर को नीचे की तरफ धीमी गति के साथ झुकाते हुए ऐसी स्थिति ग्रहण करनी चाहिए जैसे किसी कुर्सी पर बैठने के समय ली जाती है।

(ग) इस समय व्यक्ति को इस प्रकार की मुद्रा ग्रहण करनी चाहिए कि उसके शरीर का सम्पूर्ण भार टांगों के घुटनों के नीचे पांवों तक रहे।

(घ) जब तक हो सके, इस स्थिति में रहने का प्रयास करना चाहिए और उसके पश्चात् धीमी गति के साथ श्वास को बाहर की तरफ छोड़ना चाहिए।

लाभ: (क) यह आसन टांगों को मजबूती तथा बलता प्रदान करता है।

(ख) इसका अभ्यास करने से मेरूदंड लचीली हो पाती है।

(ग) इस आसन का अभ्यास करने वाले व्यक्ति के पैरों में सूजन नहीं आती।

(घ) यह आसन घुटनों में होने वाले सभी प्रकार के दर्द से निजाद दिलाने में सहायक होता है।

(ङ) इस आसन की सहायता से पेट साफ रहता है।

ध्यान देने योग्य बातें: इस आसन को करते समय व्यक्ति को इस प्रकार से बैठना चाहिए जिससे उसके शरीर का सम्पूर्ण भार पैर के पंजों पर रहे तथा उसे अपने पैर की एड़ियाँ थोड़ी सी ऊपर की तरफ उठाकर रखनी चाहिए।

चंद्रनमस्कारासन

विधि: (क) इस आसन को करने के लिए व्यक्ति को अपने दोनों पैर एक-दूसरे से मिलाकर खड़े होना चाहिए।

(ख) अन्दर की तरफ श्वांस भरकर उसे अपने अंगूठों को एक-दूसरे के साथ स्पर्श कराते हुए अपना शरीर ऊपर की तरफ खींचना चाहिए।

(ग) धीमी गति के साथ उसे अपनी कमर को मोड़ना चाहिए और सिर

तथा हाथों को भी धीरे से पीछे की तरफ ले जाना चाहिए।

(घ) ऐसा करते समय व्यक्ति को अपनी आंखे पीछे की तरफ रखने का प्रयास करना चाहिए।

(ङ) जितनी देर तक हो सकें इस स्थिति को बनाए रखना चाहिए और उसके पश्चात् शरीर को सीधा करके हाथों को नीचे ले आना चाहिए। श्वास को बाहर की तरफ छोड़ते हुए शरीर को सामान्य अवस्था में ले आना चाहिए।

लाभः (क) यह आसन शरीर को तंदरूस्ती तथा स्फूर्ति प्रदान करता है।

(ख) इस आसन की सहायता से व्यक्ति का शरीर स्वस्थ तथा सुन्दर हो जाता है।

(ग) इससे पाचनक्रिया सही प्रकार से हो पाती है।

(घ) नेत्रों से संबंधित कई रोगों को दूर करने में यह आसन विशेष भूमिका निभाता है।

शयनद्विपादनासाग्रस्पर्शासन

विधिः (क) इस आसन को करने के लिए व्यक्ति को फर्श पर लेट जाना चाहिए।

(ख) उसे अपने दोनों पैरों को पेट की तरफ लेकर आना चाहिए और उनके निचले हिस्सों को एक-दूसरे से मिला देना चाहिए।

(ग) इसके पश्चात् दोनों हाथों को मिलाकर दोनों पैरों को पकड़ने का प्रयास करना चाहिए। इसके पश्चात् उनकी सहायता से नाक को छूना चाहिए। इस समय व्यक्ति को अपना सिर भूमि से ऊपर उठा लेना चाहिए।

(घ) दोनों हाथों को नमस्कार की मुद्रा में रखना चाहिए तथा इस समय आंखों को आसमान की तरफ अर्थात् ऊपर की तरफ रखना चाहिए।

(ङ) थोड़े समय के लिए इस मुद्रा में रहने का प्रयास करना चाहिए।

लाभः (क) यह आसन व्यक्ति की पीठ को मजबूत करता है तथा कमर को पतला कर देता है।

(ख) यह आसन पेट पर चढ़ी हुई अतिरिक्त चर्बी को हटाने में सहायता करता है।

(ग) इस आसन की सहायता से हृदय मजबूत बन पाता है।

(घ) यह आसन व्यक्ति के विचारों को भी शुद्ध कर देता है तथा इससे बुद्धि तीव्र हो जाती है।

ध्रुवासन

विधिः (क) इस आसन को करने के लिए सबसे पहले भूमि पर व्यक्ति को बिलकुल सीधे खड़े हो जाना चाहिए।

(ख) इसके पश्चात् उसे अपनी दाहिनी टांग को घुटने से मोड़ देना चाहिए और अपने पैर को बांई टांग के मूल स्थान में लगाना चाहिए।

(ग) इसके बाद उसे श्वास अंदर की तरफ ले लेना चाहिए तथा श्वांसों को रोकर दोनों हाथ जोड़कर हृदय के समीप टिका देने चाहिए।

(घ) आंखों को सामान्य स्थिति में ही रखना चाहिए।

(ङ) श्वास को रोककर जितनी देर तक हो सके, इस मुद्रा में रहना चाहिए और कुछ समय के पश्चात् हाथों को छोड़ देना चाहिए और टांगों को नीचे की तरफ लाते हुए श्वांस को बाहर की तरफ छोड़ देना चाहिए।

लाभः (क) यह आसन मन की चंचलता को दूर करने में सहायता प्रदान करता है।

(ख) इससे मन को शांति तथा तन को स्फूर्ति प्राप्त होती है।

(ग) इस आसन की सहायता से व्यक्ति की टांगें बलवान तथा मजबूत हो पाती है।

प्राणायाम

प्राणायाम में संस्कृत के दो शब्द संयुक्त हैं- प्राण और आयाम। प्राण का अर्थ- जीवन, जीवनी शक्ति या जीवन तत्त्व। आयाम का अर्थ- जीवनी शक्ति या जीवन-तत्त्व का विकास तथा नियंत्रण। मूलः प्राणायाम श्वास-क्रिया के अभ्यास का एक रूप है।

प्राणायाम में संस्कृत के दो शब्द संयुक्त हैं- प्राण और आयाम। प्राण का अर्थ- जीवन, जीवनी शक्ति या जीवन तत्त्व। आयाम का अर्थ- जीवनी शक्ति या जीवन-तत्त्व का विकास तथा नियंत्रण। मूलः प्राणायाम श्वास-क्रिया के अभ्यास का एक रूप है। किसी को आश्चर्य हो सकता है यदि ये केवल श्वास-क्रिया का अभ्यास है तो इसे जीवनी शक्ति का विकास तथा नियंत्रण

जैसे प्रशंसा-सूचक शब्दों से क्यों महिमा-पंडित किया गया है? इस प्रश्न का उत्तर इसके सिद्धान्त तथा कुछ खास वैज्ञानिकों के तथ्यों में मिल सकता है, जिनपर यह पद्धति आधारित है। यदि आप एक सरल प्रश्न करें- कौन सर्वाधिक महत्वपूर्ण एवं जीवन-दायक वस्तु है, जिससे प्राणी जीवित रहते है? और स्वयं उनका उत्तर देने की चेष्टा करे। कोई व्यक्ति भोजन के बिना बहुत दिनों तक जीवित रह सकता है, जल के बिना कुछ घंटों तक या कुछ दिनों तक, किन्तु वायु के बिना वह कुछ मिनटों से अधिक मुश्किल से जी सकता है।

1. उदर श्वसन

यह एक अत्यंत शक्तिशाली क्रिया है। सामान्यत: हम लोगों की श्वांस-प्रश्वांस क्रिया हल्की और खोखली होती है। चिन्तायुक्त अशांत मन, भावानात्मक उलझनें एवं जटिल दमित मनोग्रथियाँ हमारी श्वसन क्रिया को दीर्घ, गम्भीर और लययुक्त नहीं रहने देती। वैज्ञानिक खोजों से मन: स्थिति एवं श्वसन स्थिति से गहरा अर्न्तसंबंध पाया गया है जिसे योगी जन हजारों साल पहले से समझते आये हैं। मन जब क्रोध, क्षोभ जैसे भावात्मन उद्वेगों द्वारा उद्वेगों द्वारा आवेशित होता है तो श्वसन क्रिया तीव्र और खोखली हो जाती है और मन जब शांत, स्थिर और सौम्य स्थिति में रहता है तो श्वास क्रिया स्वत: धीमी, दीर्घ और गम्भीर हो जाती है।

मन:स्थिति को सीधे नियंत्रित करना दुष्कर है लेकिन श्वसन-क्रिया को नियंत्रित कर हम मन:स्थिति को भी उपरोक्ष रूप से ही सही नियंत्रित कर सकते है। इसी आधारभूत सिद्धांत पर प्राणायाम की विभिन्न विधियों का उद्‌भव एवं विकास किया गया। वस्तुत: यौगिक प्राणायाम एक नैसर्गिक श्वसन क्रिया है जिसे हम अबोध शिशु की निद्रा की स्थिति में स्वत: ही होते हुए पाते हैं। जैसे-जैसे शिशु बढ़ता जाता है उसकी कृत्रिम दिनचर्या, परिवेशगत प्रभावों के प्रति उसकी प्रतिक्रिया एवं भावात्मक उलझनों का परिचालित उसके मनोभाव श्वसन क्रिया को तीव्र छोटा और खोखला बनाते हैं। यौगिक श्वास क्रिया अपनी नैसर्गिक स्थिति को प्राप्त करने का प्रयास है।

यदि इस क्रिया को ठीक ढंग से नियमित अभ्यास किया जाये तो बुत

सी मनोशारीरिक समस्याएं, जिनका कोई स्पष्ट निदान नहीं है, स्वत: ही तिरोहित होने लगती है।

विधि

श्वास की स्थिति में चित्त लेट जाएं। आंखें बंद कर शरीर को शिथिल कर ले। दीर्घ पूरक करे साथ ही सम्पूर्ण शरीर में अधिक से अधिक तनाव पैदा करे। क्षमतानुसार श्वांस को भीतर रोके और शरीर के तनाव को अधिकतम सीमा तक बढ़ाए। पुन: एकाएक श्वांस निकल दे साथ ही सम्पूर्ण शरीर को भी एकाएक शिथिल कर ले। श्वांस निकालते समय श्वांस रूक-रूक कर बाहर नहीं निकलना चाहिए वरन् उसे तीव्र गति से तैयार हो जाएगा। अन्तिम अवस्था में श्वासन में ही आंखें बंद कर लेटे रहे। धीरे-धीरे श्वांस को अधिक-से-अधिक समय तक भीतर लेना शुरू करे, साथ ही पेट को इस प्रकार फैलाते जाएं जैसे पेट में बैलून की तरह हवा भर रहे हो। अधिकतम सीमा तक श्वांस भीतर लेते जाएं एवं पेट में हवा भरने की तरह पेट को फुलाते जाएं। जब पेट पूरी तरह फूल जाए और यह समझ में जा जाएं कि अब और अधिक श्वांस अन्दर नहीं ली जा सकती है, तो उस स्थिति में 3 से 4 सैकेंड तक रूके रहे।

पुन: धीरे-धीरे श्वांस बाहर निकालना शुरू करे एवं पेट को पिचकाते जाएं, मानो पेट की हवा पहले निकल रही है। अधिकतम सीमा तक श्वांस को बाहर निकालते रहे तथा साथ ही पेट को पिचकाते जाएं। इस स्थिति में भी आप 3-4 सैकेंड तक रूके रहे और पुन: पहले की तरह श्वांस भीतर लेना शुरू करे और पेट को फुलाते जाएं। इस क्रिया को बार-बार करें।

लाभ

(क) मस्तिष्क में उत्सर्जित होने वाली विद्युत् तरंगों की आवृति काफी कम हो जाती है लेकिन उनका वेग बढ़ जाता है, जिससे मन शांत, स्थिर और आनन्दयुक्त बनता है। सृजनात्मक संभावनाओं के द्वार स्वत: खुलने लगते है। भय, आंशका और असुरक्षा के भाव दूर होने लगते है।

(ख) फेफड़ों के अनखुले कोश भी खुलकर स्वस्थ और सक्रिय भूमिका निभाने लगते है जिससे रक्त की शुद्धि तेजी से होती है। उसके कोश और तुंतु आजीवन लचीले बने रहते है।

(ग) अन्त: स्त्रावी ग्रंथियों के स्त्रावों में संतुलन पैदा होकर शरीर, मन और भावनाएं नियंत्रित होने लगती है।

(घ) मणिपुर चक्र या नाभि केन्द्र के पास प्राण एवं अपान का घर्षण तीव्र होने से प्राण शक्ति की वृद्धि होती है। नाभिकेन्द्र शरीर के गुरूत्वाकर्षण का केन्द्रीय बिंदु है। यह शक्ति और अग्नि का उत्पादक केन्द है। जापानी जैन पद्धति के अनुसार हमारे अस्तित्व की अनुभूति इसी केन्द्र से होती है।

(ङ) इस क्रिया में श्वसन गति कम होती है, लेकिन उसके दीर्घ होने और उदरपेशी के 3 से. मी. अधिक उठने से आक्सीजन ग्रहण करने की क्षमता तिगुनी हो जाती है जो शरीर के समस्त कोशों को नवजीन प्रदान कर स्वस्थ और दीर्घजीवी बनाती है।

(च) आहार ग्रहण करने से 15-20 मिनट पहले 11 आवृति तक इस क्रिया को करने के गैस्ट्रिक, बदहजमी और भूख की कमी इत्यादि बहुत से पेट के विकार दूर होते हैं।

(छ) यह क्रिया हृदय के प्राकृतिक ताल और लय को बनाए रखती है।

(झ) यह क्रिया श्वसन गति को प्रति मिनट 16-17 से 6-8 तक आसानी से कम कर देती है जिसेस हृदय और स्नायु संस्थान के दबाव या तनाव कम हो जाते हैं। इसलिए यह क्रिया उच्च रक्तचाप और कई प्रकार के हृदय रोगों में अत्यन्त गुणकारी है।

2. नाड़ी शोधन प्राणायाम

इस प्राणायाम से शरीर की सूक्ष्म-से-सूक्ष्म नस नाड़ियों में प्राण अवरोधक तत्व छंटकर समूचा स्नायु मंडल शुद्ध हो जाता है। इसलिए इसे नाड़ी शोधन प्राणायाम कहा जाता है। इस प्राणायाम का महत्व इस बात से समझा जा सकता है कि हिन्दू धर्म में करीब-करीब हर पूजापाठ और क्रिया कांड की पद्धति में इस प्राणायाम की सरलतम विधि का प्रयोग किया जाता रहा है और करीब-करीब सभी पुजारी और पंडित पूरा प्रारम्भ करते समय इस विधि का कुछ प्रयोग करते हैं। इस प्राणायाम को प्राथमिक अभ्यास के रूप में माना जाता है जिससे शरीर अन्य अभ्यासों को करने के योग्य बनता है। इस तथ्य के बावजूद एक अतयंत शक्तिशाली और स्वास्थ्यप्रद अभ्यास है। वस्तुत: यह प्राणायाम योगशास्त्र की बुनियाद है।

विधि

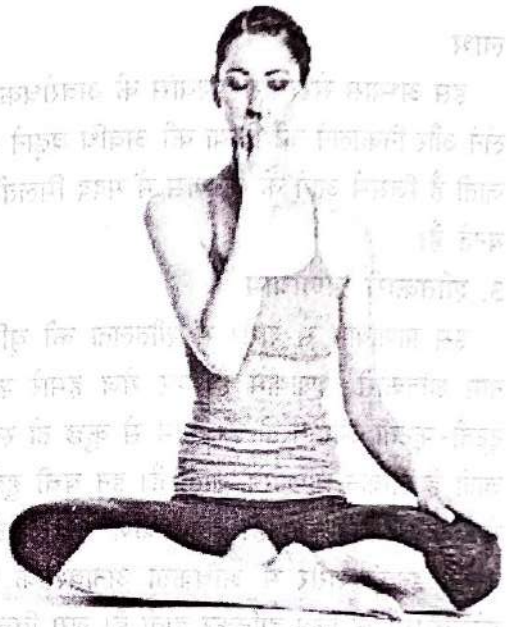

इस प्राणायाम के अभ्यास की कई अवस्थाएँ है। जो व्यक्ति योग के अभ्यास को प्रारम्भ करने जा रहे हो वे प्रारम्भिक अवस्था से ही अभ्यास प्रारम्भ करे। जो व्यक्ति पहले से कुछ अभ्यास करते आ रहे हो वे उच्चतर अवस्था का अभ्यास कर सकते है। यहां इसी प्राणायाम की उन्हीं विधियों का विस्तृत वर्ण किया जा रहा है जिसे सभी व्यक्ति निरापद भाव से अभ्यास कर सकते हैं। उच्च अभ्यास शीर्षक के अन्तर्गत कुछ उच्चतर विधियों का संकेत भी दिया गया है जिसे मात्र स्वस्थ व्यक्ति कर सकते है।

विधि

पद्मासन, सुखासन, सिद्धासन तथा सिद्धयोनि आसन में बैठे। मेरूदंड, गर्दन एवं सिर सीधा एवं स्थिर रखे। पूरे अभ्यास काल में आंखें बंद, शरीर सीधा पर शिथिल रहना चाहिए। बायां हाथ बाएं घुटने पर रखे। दाहिने हाथ के अंगूठे को दाईं नाक ओर अनामिका और मध्यमिका को भूमध्य के पास आज्ञा चक्र पर स्पर्श करते हुए रख दे। बाईं नाक से धीरे-धीरे 10 आवृत्ति श्वांस अन्दर ले और निकाल दे। श्वांस लेने और छोड़ने की अवधि को लम्बा करने का प्रत्यन करे। श्वांस लेने और छोड़ने की क्रिया को लय युक्त भी बनाने का प्रयत्न करे तथा श्वांस-प्रश्वास की आवाज नहीं होनी चाहिए। अब अनामिका उंगली से बाईं। नाक को बंद कर ले और दाईं नाक से 10 आवृत्ति पहले तरीके से ही श्वांस ले और निकाले।

लाभ

इस अभ्यास से श्वांस-प्रश्वांस के अवरोधक तत्व दूर हो जाते हैं। श्वांस लेने और निकालने की क्रिया की अवधि बढ़ाने से फेफड़ों की शक्ति बढ़ती जाती है जिससे आगे के अभ्यास में मदद मिलती है। फेफड़ों के तंतु लचीले बनते है।

3. शीतकारी प्राणायाम

इस प्राणायाम से शरीर में शीतलता की वृद्धि होती है इसलिए इसका नाम शीतकारी प्राणायाम है। हर रोज हमारे शरीर में करोड़ों कोशिकाएं टूटती-फूटती और मरती हैं। इनमें से कुछ तो स्वत: शरीर से बाहर निकल जाती है लेकिन कुछ रह जाती है। इन बची हुई कोशिकाओं के कचरे में रोग कारक विष होते हैं। इनके कण सख्त होते हैं और आसानी से नहीं घुलते। इनकी शरीर में अधिकता अनावश्यक गर्मी करती है जो स्वस्थ कोशिकाओं के लिए हानिकर होती है। जरा विज्ञान के अनुसार दीर्घ स्वस्थ जीवन और अक्षय यौवन के लिए कोशिकाओं को शीतल रखना एक महत्वपूर्ण साधन है। शायद इन तथ्यों के संकेत हजारों वर्ष पहले योगियों

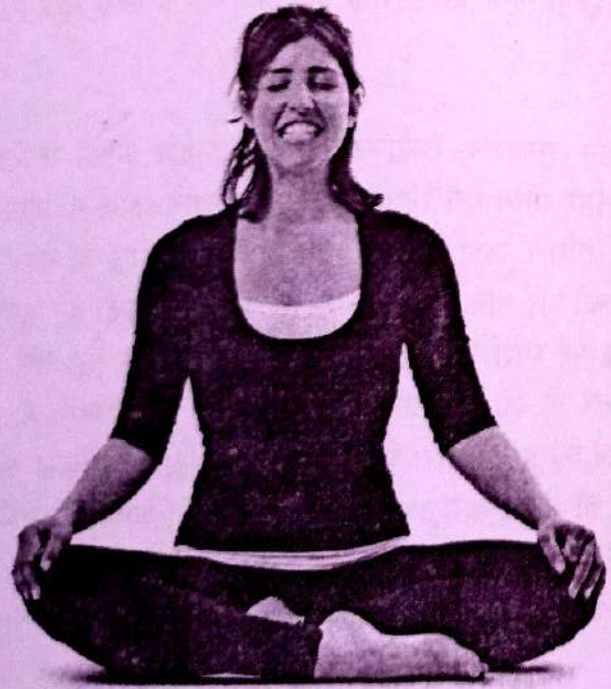

को भी मालूम थे, ऐसा इस क्रिया से होने वाले लाभों के वर्णन से मालूम होता है।

विधि

किसी ध्यान के आसन में बैठे या खड़ा रहे। इस बात का ध्यान रखें कि मेरूदण्ड, गर्दन और सिर सीधा रहे। आंखें बंद रखे। शरीर सीध पर शिथिल रहना चाहिए। ऊपर के दांतों को नीचे के दांतों पर अच्छी तरह जमा दे। ओठों को अधिक-से-अधिक फैलाएं जिससे दांतों की पंक्ति अधिक-से-अधि क बाहर दिखाई पड़े। इस स्थिति में धीरे-धीरे दांतों को भींचकर मुंह से ही सीत्कार करते हुए लय के साथ दीर्घ श्वांस ले। श्वांस पूरी तरह से ले लेने के बाद आठों को सामान्य बना ले। जब तक श्वांस को आसानी से भीतर रोक सके तो रोके रहे। श्वांस का अन्दर न रोक सके तो नाक से श्वांस को धीरे-धीरे लय के साथ बाहर निकाल दे। यह एक पूरी क्रिया हुई इसे पुन: करे। प्रारम्भ में 11 बार। ग्रीष्मकाल में ज्यादा करे। प्रात: काल की अपेक्षा संध्या में करना ज्यादा लाभदायक है। उच्च रक्तचाप एवं कुष्ट रोग में अधिक-से-अधिक करे। श्वांस अन्दर लेते समय और निकालते समय जीभ को मोड़कर अगर ऊपरी तालु में सटाकर रखा जाए तो ज्यादा लाभ करता है। इसके अतिरिक्त क्रिया को खेचरी मुद्रा कहते है, जिसे मुद्रा का अभ्यास में देखा जा सकता है।

लाभ

(क) ग्रीष्मकाल में वायु मंडल के प्रभाव से शरीर को मुक्त रखने की क्षमता बढ़ती है।

(ख) रक्त विकास दूर करता है। चर्म रोग में लाभप्रद है।

(ग) मुंहासें, झाई और झुर्रियों को दूर कर चेहरे को क्रांतियुक्त और सौमय बनाता है।

(घ) दांतों, मसूड़ों और मुंह के भीतर-बाहर की त्वचा के रोगों को दूर करता है।

(ङ) भूख, प्यास की कम करता है लेकिन शरीर स्वस्थ रहता है। आहार के प्रति लोलुपता कम होती है। शरीर में पित्त और अम्ल की अधिकता से उत्पन्न दोषों का शमन करता है।

9

आराम तथा ध्यान मुद्रा का शरीर के विभिन्न तन्त्रों पर प्रभाव

(Influences of Relaxtive, Meditative Posture on Various System of the Body)

योग एक विशिष्ट प्रकार का विज्ञान है जो पदार्थ, जीव तथा चेतना को एक साथ लेकर चलता है तथा विज्ञान और आध्यात्म की खाई पर बांध का कार्य करता है। योग मनुष्य की गम्भीरता का विज्ञान है, मनुष्य की चेतना के विकास का विज्ञान है तथा मनुष्य की सम्भावनाओं का विज्ञान है। **योग हृदय-श्वसन क्षमता में सुधार करता है तथा हृदय को स्वस्थ बनाता है।**

हृदय एक कड़ा तथा मांसपेशियों से बना पंप है, जिसका काम लगातार 70-75 बार प्रति मिनट की औसत चाल से रक्त-धमनियों में रक्त फेंकना है। हृदय इस रक्त-संचार को चालू रखता हैं क्योंकि यह शरीर के सभी भागों से शिराओं के द्वारा अपने कक्षों में रक्त पाता है तथा धमनियों के द्वारा पुनः उसे शरीर के भागों में भेज देता है। यह बहुत ही जटिल क्रिया है जो कई व्यक्तियां में कभी-कभी रूक जाती है।

जब रक्त-संचालन संस्थान का कोई भाग जरूरत के हिसाब से रक्त नहीं पाता तब वह क्षतिग्रस्त हो जाता है। यह क्षति हृदय में हो सकती है या दूसरे भागों में जैसे- फेफड़ों, वृक्को, मस्तिष्क या अन्य अंगों में भी हो सकती है। हृदय में इसकी क्रिया की रूकावट के कारण हृदय-रोग भी होता है जिसे सामान्यतः दिल का दौरा भी कहते है।

चिकित्सात्मक योग के द्वारा हृदय-रक्तवह-संस्थान के सम्बद्ध जिन रोगों की चिकित्सा हो सकती है, वे है- एथेरोस्लेरासिं, कॉरोनरी ऑम्बॉरुसिस, जीर्णता वाला हृदय राग तथा अधिक तनाव के रोग। अब हम इन रोगों का संक्षेप में वर्णन करे-

1. ***एथेरास्रोसिस***- धमनियों की भीतरी दीवारें चर्बीदार पदार्थों के

क्रमश: जमा होने से मोटे हो जाती हैं। ये क्रमिक जमाव धमनियों की भीतरी दीवारों पर तहों का रूप ले लेते हैं, इसके फलस्वरूप, रक्त-प्रवाह में रूकावट पैदा होती है।

2. कॉरोनरी थ्राम्बॉसिस- हृदय की किसी धमनी या उसकी शाखाओं में अचानक रूकावट आ जाती है, तब हृदय को मिलने वाले रक्त पर आंशिक या पूर्ण रूप से असर पड़ता हौ। पहले से ही जो धमनी संकरी है, उसमें खून के थक्के जमते जाएं तो अचानक रूकावट आती है।

3. जीर्णता वाला हृदय-रोग- यह रक्त-नलिकाओं के क्रमश: सड़ने-गलने से उत्पन्न होता है। यह कहा जाता है कि किसी भी रूप में तम्बाकू के अत्यधिक सेवन से रक्त-नलिकाओं में जीर्णता उत्पन्न होती है जीर्णता वाला रोग प्राय: अधेड़ उम्र तथा अधिक उम्र के लोगों में होता है। इस स्थिति में, हृदय की मांसपेशियां काम करती ही रहती हैं, किन्तु उनमें इतनी ताकत नहीं होती कि जरूरी स्वस्थ क्रियाओं को निबाह सकें।

4. अत्यधिक तनाव वाला हृदय-रोग- किसी व्यक्ति में लगातार उच्च रक्तचाप रहने से यह रोग होता है। रक्तचाप के लगातार बहुत ऊंचा रहने से हृदय की मांसपेशियों पर भार बहुत अधिक बढ़ जाता है और पूरे रक्तवह-संस्थान की भी यही दशा हो जाती है। इस अत्यधिक भार से तन्तु टूट-फूट जाते हैं, रक्त की आपूर्ति कम हो जाती है। कभी-कभी तो मस्तिष्क में रक्त की आपूर्ति इतनी कम हो जाती है कि किसी एक ओर या दोनों ओर शरीर में लकवा मार देता है। अब यह सामान्य रूप से माना जा चुका है कि हृदय रक्तवह-संस्थान के रोगों का प्रधान कारण मन: शरीरगत तथ्यों से सम्बन्ध है। भार और तनाव से उत्पन्न बीमारी को आजकल "साइको-सोमेटिक" कहते हैं।

सबसे अधिक प्रचचित तनाव और भार घबराहट के कारण होता है, जो स्वयं भय, चिन्ता, पूर्वकल्पना, तनाव और बेचैनी, क्रोध, डर, निराशा अवसाद तथा ऐसी ही अन्य भावनाओं के कारण होती है। योग में ऐसा कहा जाता है कि मन शरीर को नियंत्रित, शासित तथा सक्रिय करता है। इस अर्थ में शरीर मन का खिलौना है। तब ऐसा होता है कि मन का भार डालने वाली चीजें शरीर पर भी भार डालने लगती हैं। आधुनिक युग के अनेक रोग जैसे- हृदय के राग, अत्यधिक तनाव, दमा इत्यादि प्राय: इस मानसिक भार

या तनाव से ही संबंध हैं। इन्हें हम मेडिकल शब्दावली में मन: शरीगगत के कारण कहते हैं।

5. उच्च रक्तचाप- किसी सामान्य और स्वस्थ व्यक्ति में रक्तचाप 126 सिस्टोलिक और 80 डायस्टोलिक रहता है किन्तु जब धमनियों या रक्तवह-संस्थान में विकृति आ जाती है, तब सिस्टोलिक दबाव बहुत अधिक बढ़ जाता है जिसके साथ कभी-कभी डायस्टोलिक भी बढ़ता है।

6. चिकित्सा की योग-पद्धति- इस बात पर जोर देने की जरूरत नहीं कि चिकित्सात्मक योग दिल के दौरे या बहुत अधिक उच्च रक्तचाप के संकट में फंसे हुए मरीजों को ईलाज नहीं करता। चिकित्सात्मक योग का अभ्यास तभी करना चाहिए जब व्यक्ति संकटकालीन स्थिति में न हों। भारतीय योग-संस्थान में इन रोगों के ईलाज के दौरान यह पाया गया कि हृदय रोगों के मरीज योगाभ्यास के दो-तीन महीनों में ही अपना स्वाभाविक स्वास्थ्य पा चुके हैं इसके अलावा, एक सामान्य स्वास्थ्य वापस पा जाने पर रोगी बिना किसी शिकायत के अच्छा स्वास्थ्य बनाए जा रहे हैं। इसी प्रकार, उच्च रक्तचाप के मरीजों में यह पाया गया है कि मरीज यदि हमारे निर्देशों पर चलते रहे तो एक-दो महीनों में ही इनका रक्तवह-संस्थान सामान्य हो गया है। यह कहना महत्वपूर्ण होगा कि चिकित्सा की योग-पद्धति हृदय-रोगों के लिए भी वही है जो उच्च रक्तचाप के लिए है। इस कित्सा के तीन चरण है- 1. कुछ सिद्धान्तों और परामर्शों का पालन, 2. उचित आहार लेना तथा, 3. योग का अभ्यास। पहले हम मुख्य सिद्धान्तों और परामर्शों को बतलाएं।

(क) सिद्धान्त तथा परामर्श- उन्हें सिगरेट पीना तथा किसी भी रूप में तम्बाकू का प्रयोग करके चाय कॉफी लेना भी छोड़ देना चाहिए। वे शराब पीना भी बंद कर दें। घी, मक्खन, मलाई, अंडा, मांस तथा अत्यधिक चिकनाई वाले खाद्य पदार्थ भी वे न ले। गर्म मसाले, आचार, चटनी, लाल मिर्च तथा अधिक नमक को प्रयोग बंद कर दे। सदा अति-भोजन से बचे। रात में देर तक काम करना या जगते रहना बंद करे।

मुख्य परामर्श तो यह है कि आराम से रहे और अपने को चिन्ता, घबराहट, तनाव या बेचैनी से बचाएं। यद्यपि हर व्यक्ति के लिए हर परिस्थति में आराम करना सरल नहीं है, फिर भी व्यक्ति, समाज तथा

प्रकृति के विषय में उचित समझ रखने से ऐसा किया जा सकता है। आपको यह सलाह है कि तनाव पैदा करने वाली इन समस्याओं पर विजय पाने के लिए आत्मशक्ति बढ़ने के लिए योग को ठीक से पढ़े। इन सुझावों के साथ, हृदय रोगों तथा उच्च रक्तचाप रागियों के लिए आहार सूची दी जाती है-

(ख) आहार सूची

1. सुबह का जलपान- (क) संतरे का रस या किसी फल का रस एक कप या मीठा संतरा या मौसमी एक, (ख) ताजा सेब या कोई फल आम या लीची- एक या इच्छानुसार, (ग) दो दिनों का अंकुरित चना चौथाई कप, (घ) हरी सब्जियों के साथ गेंहू की रोटी या टोस्ट-इच्छानुसार, (ङ) दूध मलाई रहित एक कप।

(ख) दिन और रात का भोजन- (क) सलाद का मिश्रण। इन्हें सादा भी ले सकते है। एक कप, सब्जी-सूप एक कप, (ख) चपाती इच्छानुसार, (ग) दाल-मूंग, मसूर, चना या हरी मटर, (घ) साग, (ङ) हरी सब्जियां इच्छानुसार, मछली एक दिन छोड़कर दो टुकड़े।

(ग) शाम का जलपान- (क) कोई ताजा फल-इच्छानुसार, (ख) नमकीन बिस्कुट या चने की घुघनी इच्छानुसार। ध्यान देने की मुख्य बात यह है कि दैनिक आहार का प्रधान भाग सलाद, ताजे फलों और हरी सब्जियों का हो। भोज्य-पदार्थों को तेल में बिना मसाला दिए या थोड़ा मसाला देकर तैयार करना चाहिए।

7. योगाभ्यास- हृदय-रोगों तथा उच्च रक्तचाप के मरीजो को नीचे दिए गए निर्देशों के अनुसार कई चरणों में योग का अभ्यास करना चाहिए।

प्रथम चरण- यह तीन हफ्तों तक चलेगा। इस चरण में सिर्फ शवासन के अभ्यास की जरूरत है। एक महत्वपूर्ण परामर्श यह होगा कि शीघ्रता में इसे न करे। धैर्य के साथ इसे अच्छी तरह करे। शवासन करने के समय प्रसन्न रहे।

8. दैनिक अभ्यास- शवासन का अभ्यास प्रतिदिन दो-तीन बार होगा। एक बैठक में इसे 30-40 मिनट तक करना चाहिए। इसे करने के लिए अच्छा तथा अनुकूल समय है- प्रातःकाल दोपहर के बाद तथा सांकाल। विचार की मुख्य बात है कि शवासन करने के समय पेट खाली रहे, भोजन से भरा न हो।

लाभ- यद्यपि शवासन के लाभों का उल्लेख पहले भी किया जा चुका है, फिर भी यहां कुछ शब्द जोड़ना आवश्यक है। अनुभवों के आधार पर यह सुझाया गया है कि दो-तीन हफ्तों तक रक्तचाप के रोगियों पर बहुत प्रभाव डालता है। स्नायुओं तथा आन्तरिक अवयवों को शुद्ध करके यह रक्तवह-संस्थान की गड़बड़ियों को दूर कर देता है। धमनियों पर सुखद प्रभाव डालकर उन्हें सामान्य बनाकर यह उच्च रक्तचाप को कम करके धीरे-धीरे सामान्य बना देता है।

द्वितीय चरण- इस चरण के योग का अभ्यास करने से पहले अभ्यासी को प्रथम चरण पूरा करना चाहिए। प्रथम चरण के दौरान प्रतिदिन दो-तीन बार शवासन करने बाद इस क्रम से करना चाहए-

1. पवनमुक्त आसन- इसका विस्तृत वर्णन पहले भी किया जा चुका है। अपने पर बिना भार दिए हुए इसे करे। जहां तक आराम से हो सके, वहीं तक करे, प्रतिदिन चार-छह दौर पूरा करे। उत्तानपाद आसन में आरंभ में कुछ ही क्षणों, के लिए पैर ऊपर रखे। धीरे-धीरे चार से छह सैंकेंड तक पैर ऊपर रखने लगे। सिर्फ छह बार दैनिक अभ्यास करे।

2. शवासन- जब दूसरे आसन किए जा रहे हो, तब शवासन अन्त में करना चाहए। शवासन के अभ्यास की विधि प्रथम चरण-जैसी है। योगाभ्यास के बाद किए जाने वाले शवासन की अवधि चाहे, तो घटा सकते हैं। 15 से 30 मिनट तक का अभ्यास काफी होगाौ द्वितीय चरण के दौरान शवासन का अभ्यास अलग से भी करें।

तृतीय चरण- इस चरण में और आगे भी योग का अभ्यास इस क्रम से होना चाहिए- प्राणायाम, इसके अभ्यास के बाद सूर्य नमस्कार आसन, संतुलन आसन, पवनमुक्त आसन, उत्तानपाद आसन तथा शवासन।

योग श्वसन-प्रणाली से सम्बन्धित रोगों की रोकथाम करता है तथा श्वसन तंत्र को स्वस्थ बनाता है।

श्वास या दमा

यह रोग पेट में खराबी यानी पाचन तंत्र ठीक से काम नहीं करता तभी होता है। खाया हुआ भोजन जब भली प्रकार से नहीं पचता तो पक्वाशय में विकृत रस पैदा होकर पेट की उष्णता से ऊपर उठता है और श्वास-प्रणाली में आकर एकत्रित हो जाता है। इससे श्वास-प्रणाली रूक जाती है। श्वास

जब श्वास-प्रणाली द्वारा ऊपर उठना चाहता है तो श्वास-प्रणाली में एकत्रित हुआ कफ उसे ऊपर उठने में बाधा डालता है, इसीलिए श्वास उखड़ जाता है। श्वास के उखड़ जाने का नाम ही दमा कहलाता है।

इसके लक्षणों में प्रमुख है–श्वास का उखड़ जाना, सारे शरीर में व्याकुलता का होना इत्यादि।

दमा की चिकित्सा के लिए सर्वप्रथम श्वास-प्रणाली को साफ करने का प्रयत्न करना चाहिए। अत: पहले एक-दो दिन उपवास रखकर फिर तीन दिन फलों के रस पर रहे। फिर चौथे दिन फलों के 1/2 हिस्सा चौकर मिलाकर खीमर उठे हुए आटे की मोटी रोटी खूब सेककर लौकी, मूली, पालक, परवल, पपीता आदि के साथ खाएँ। श्वास वाले व्यक्ति को तम्बाकू कभी नहीं पीना चाहिए। नींबू के रस में शहद मिलाकर पिएँ। उपवास के दिनों में बस्ती या एनिमा और वस्त्र-धोती अवश्य करनी चाहिए। वस्त्र-धोती तो जब तक रोग ठीक न हो प्रतिदिन नियमपूर्वक सुबह करना चाहिए, क्योंकि दमा रोग के लिए वस्त्र-धोती बहुत-ही लाभप्रद होता है।

योग जोड़ों (Joints) में होने वाले विकारों में लाभप्रद है।

सन्धिशोथ जोड़ों में होने वाला रोग है। इस रोग से पीड़ित मनुष्य को प्रभावित जोड़ों में जलन का अनुभव, भंयकर वेदना तथा पीड़ा होती है। जोड़ों में सूजन, लाली, कड़ापन तथा गर्मी आ जती है। सन्धिशोध के कई प्रकार हैं जिनमें अधिक प्रचलित हैं- रियूमेटायड अर्थराइटस, गाउट तथा ऑस्टियों अर्थराइटस।

सन्धिशोथ के इन सभी प्रकारों का मूल कारण बतलाना कठिन है क्योंकि इसके लिए कई कारण हैं। उदाहरण के लिए, यह उचित आहार के अभाव में, उचित व्यायाम के अभाव में, आरोग्य-सम्बन्धी सावधानी न रखने से, दुर्बल स्वास्थ्य के कारण या ऐसे ही कारण से हो सकता है। हमरे देश में लाखों लोग इस कष्टप्रद, टेढ़े तथा अपंग कर देने वाले रोग से पीड़ित हैं। यह सभी उम्र के स्त्री-पुरूषों को होता है। इस रोग का सर्वाधिक निराशाजनक पक्ष यह है कि पुराना हो जाने पर यह दवा से आसानी से नहीं जाता।

इस रोग के ईलाज के लिए पूरे संसार में यह सामान्य व्यवहार है कि रोगी को दवा देने के साथ कुछ शारीरिक व्यायाम करते है क्योंकि अभी तक

चिकित्सात्मक योग का ठीक ज्ञान मेडिकल प्रेक्टिस करने वालों को नहीं है, इसलिए वे सन्धिशोथ के ईलाज में इसका उपयोग नहीं करते। अपने संस्थान में सन्धिशोथ के रोगियों का ईलाज करने के क्रम में यह पाया गया है कि कुछ चुने हुए आसनों का नियमित अभ्यास करने से साधारण तरह का रोग दो महीने के भीतर ही ठीक हो गया है। पुराने रोग में, ईलाज करने तथा स्वाभाविक स्वास्थ्य वापस लाने में चार-पांच महीने या इससे अधिक भी लग सकते हैं। योग द्वारा चिकित्सा का सर्वाधिक स्मरणीय पक्ष यह है कि बिना किसी दवा का प्रयोग किए ही यह रोग को स्थायी रूप से दूर कर देता है। अब हम चिकित्सा की योग-पद्धति समझाएंगे।

चिकित्सा- सन्धिशोथ या आमवात के रोगियों को तीन काम करने है- (क) चुने हुए योगासनों का नियमित अभ्यास, (ख) उचित आहार लेना, तथा (ग) आरोग्य-सम्बन्धी सावधानी रखना। इन पक्षों का पूरा वर्णन इस प्रकार है-

(क) योग के आसन- सन्धिशोथ के रोगियों को संतुलन आसन, त्रिकोण आसन, वीरासन, गोमुख आसन, वृक्षासन, सेतुबन्ध आसन, सिद्धासन, नटराज आसन तथा शवासन करने की सलाह दी जाती है। इन आसनों के नियमित अभ्यास से किसी भी प्रकार का सन्धिशोथ बिना किसी दवा के प्रयोग से ठीक हो जाता है। जो लोग दवा खाने के आदी हो, वे दो-तीन सप्ताह योग का अभ्यास करने के बाद सभी दवाएं बन्द कर दे।

(ख) उचित आहार- सन्धिशोथ या आमवात के रोगियों के लिए उचित आहार का अर्थ है-लाभदायक चीजें खाना तथा हानिकारक चीजें छोड़ देना। इस दृष्टि से केला तथा दही लेना छोड़ दें। जो लोग धूम्रपान करते हों या किसी रूप में तम्बाकू लेते हों, वे इसे या तो बंद कर दें या मात्रा बहुत कम कर दें। चौबीस घंटों में दो प्याले से अधिक चाय या कॉफी न लें।

योग स्वायत्त तंत्रिका प्रणाली को संतुलित करता है।

प्राय: स्वायत्त तंत्रिका प्रणाली के दो अंग होते हैं: सिमपेथेटिक तंत्रिका तंत्र तथा पैरासिमपेथेटिक तंत्रिका तंत्र। यद्यपि कुछ चुनिंदा अलग-अलग आसन तथा प्राणायाम अभ्यास द्वारा सिमपेथेटिक अथवा पैरासिमपेथेटिक तंत्रिका तंत्र पर प्रभाव डाला जा सकता है किन्तु योग अभ्यास का संपूर्ण

प्रभाव पैरासिमपेथेटिक प्रभुत्व स्थापित करना है। वेमपती और टेलीस (2002) ने स्वायत्त चर (Autonomic Variables) पर योग आधारित निर्देशित शिथिलीकरण पर मूल्यांकन किया और पाया कि हृदय-दर की कम आवृत्ति घटक की शक्ति परिवर्तनशीलता स्पेक्ट्रम के साथ घट रही है, जबकि उच्च आवृत्ति घटक बढ़ते है तथा परिणामस्वरूप एक घटी हुई अनुकूल गतिविधि सुझाते है।

विषय LF/HF > 0.5 के आधारभूत अनुपात के साथ निर्देशित शिथिलीकरण के पश्चात् अनुपात में एक महत्वपूर्ण ह्रास दर्शाते हैं, जबकि < or = 0.5 के अनुपात के साथ विषय आधारभूत अनुपात पर ऐसा कोई परिवर्तन नहीं दर्शाते है। परिणाम बताते है कि योग आधारित शिथिलीकरण गतिविधि के पश्चात् अनुकूल गतिविधि घटती है।

10

बंध तथा मुद्राओं के प्रकार

(Types of Bandhas and Mudras)

यौगिक बंध

मूलतः बंध तीन ही है। जालंधर बंध, उड्डियान बंध और मूल बंध। इन तीनों को अलग-अलग करने की प्रक्रिया बताई जा चुकी है। कुछ काल अभ्यास के बाद इन तीनों बंधों को एक साथ भी किया जा सकता है। इससे लाभ तो तीनों बंधों का मिलता है साथ ही साथ भी समय भी कम लगता है। वज्रोली मुद्रा है। पर इस मुद्रा को महाबंध को साथ भी किया जा सकता है। वस्तुतः मूल बंध या उड्डियान बंध लगाने पर वज्रोली मुद्रा कुछ न कुछ स्वतः ही लग जाती है। सभी बंधों के करने का लाभ प्राप्त होता है।

विधि - ध्यान के किसी भी आसन में बैठे। सिद्धासन या सिद्धयोनि आसन उत्तम है। दोनों हथेलियां घुटनों पर जमा दे। आंखें बंद कर ले। श्वांस को पूरी तरह से बाहर निकाल कर बाहर रोके रहे। क्रमानुसार जालंधर बंध, उड्डियान बंध और वज्रोली मुद्रा तथा मूल बंध लगाएं। जब तक श्वांस को बाहर रोक सके इस स्थिति को बनाए रखे। जब श्वांस नहीं रोक सके तो क्रमानुसार मूल बंध, वज्रोली मुद्रा, उड्डियान बंध और जालंधर बंध शिथिल कर दे। श्वांस को अब भीतर लें। फिर तेजी से चलते हुए श्वांस-प्रश्वांस का अनुभव करे। श्वांस-प्रश्वांस सामानय होने पर पुनः इस क्रिया को करे।

लाभ

सभी बंधों को करने का लाभ प्राप्त होता है।

उड्डियान बंध

उड्डियान का मतलब उड़ना या ऊपर उठना है। इस क्रिया में पेट की मांसपेशियों का भीतर सांकचन कर उदर पेशी को अधिक-से-अधिक ऊपर उठाया जाता है।

विधि - अन्य बंधों में बाए किसी भी आसन में बैठे। हथेलियों को घुटनों पर जमाएं। श्वांस को अधिक-से-अधिक पूरी तरह निकाल कर उसे बाहर ही रोके रखे। पेट की मांसपेशियों का अधिक-से-अधिक संकोच कर उन्हें मेरूदंड से स्पर्श कराने का प्रयत्न करे, साथ ही उदर पेशी को अधि

क-से-अधिक ऊपर उठाएं। श्वांस बाहर ही रोक कर इस स्थिति में लाएं। श्वांस को भीतर ले। तेज हुई श्वसन क्रिया पर सतत् ध्यान दे। धीरे-धीरे वह सामान्य हो जाएगी। पुनः इस क्रिया को दोहराएं।

नाभि पर आंकुचन से उत्पन्न लहरों का अनुभव करना चाहिए। इस क्रिया को खड़ा होकर, दोनों हथेलियों की जांघों पर रखकर और धड़ का कुछ आगे झुका कर भी किया जा सकता है। बिलकुल खाली पेट में ही यह क्रिया की जानी चाहिए। बिना श्वांस को पूरी तरह से बाहर निकाले यह क्रिया संभव नहीं है।

लाभ- (क) पेट की चर्बी कम होती है। प्रसव क बाद शिथिल आंतरिक अंग एवं उदर पेशियों में पुनः कसाव पैदा हो जाता है जिससे उनकी अस्वस्थता और कुरूपता दूर होती है। इसलिए महिलाओं के स्वास्थ्य और सौंदर्य को यह क्रिया निखारती है।

(ख) इस क्रिया से कटि प्रदेश, प्रजनन अंग, गर्भाशय और डिंवाशय के स्नायु सक्रिय सतेज और लचीले बनते हैं जो गर्भ धारण, विकास और प्रसव को निरापद बनाते हैं।

(ग) उदर पेशी अधिक-से-अधिक ऊपर उठने से हृदय एवं फेफड़ों पर अत्यधिक दाब पैदा होता है जिससे उनकी अच्छी मालिश होती है।

(घ) इस क्रिया से अशांत, अस्थिरता और चिंता से त्रस्त मन शांत और स्थिर होने लगता है।

(ङ) उपवृक्क ग्रंथि के हार्मोन के स्त्राव को संतुलित बनाता है जिससे धैर्य एवं स्थिरता की वृद्धि होती है और तनाव के कारण दूर होते हैं।

(च) नाभि केन्द्र शरीर के गुरूत्वाकर्षण का केन्द्र है। इस क्रिया द्वारा नाभि केन्द्र सक्रिय होता है। योग की भाषा में इस केन्द्र को मणिपुर चक्र कहते है। यह केन्द्र ऊर्जा का उत्पादक है। अपने अस्तित्व का चरम बोध

इसी केन्द्र से होता है। शक्ति और अधिकार की भावना की वृद्धि होती है।

(छ) आंतों की आंकुचन क्रिया में सुधार होता है जिससे कब्ज दूर होता है। इस क्रिया द्वारा पाचन शक्ति को प्रभावित करने वाले सभी अंग जैसे- यकृत, पैक्रियास, गुर्दे, तिल्ली और अमाशय इत्यादि सक्रिय एवं सतेज होते है, इसलिए इन अंगों के सभी विकारों में यह क्रिया फायदा पहुंचाती है।

अश्विनी मुद्रा

घोड़ा मल त्याग करने के बाद इस अभ्यास को स्वतः कुछ देर तक करता रहता है, इसी से इस क्रिया का नाम अश्विनी मुद्रा पड़ा।

विधि- पद्मासन, सिद्धासन, उर्द्धपद्मासन, या सुखासन में बैठे। महिलाएं सिद्धयोनि आसन में बैठकर करे। दोनों हथेलियों को दोनों घुटनों पर रखे तथा ज्ञान मुद्रा में चिनमुद्रा की स्थिति बनाए। आंखें बंदकर शरीर को सीधा शिथिल बनाएं। गुर्दा द्वार की मांसपेशियों का संकोचन कर ऊपर खींचने का प्रयत्न करे। एक सैकंड इस स्थिति में रहकर उन मांसपेशियों को शिथिल कर दे। इस प्रकार बार-बार संकोच और शिथिल करे। संकोचन और शिथिलन से गुर्दा स्थान में उत्पन्न अनुभूतियों पर ध्यान दे।

लाभ - (क) यह क्रिया इतनी सरल और सहज है कि इसे कुछ अभ्यास के बाद दिनभर जब इच्छा हो किया जा सकता है। आज के व्यस्त जीवन में अन्य कामों को करते हुए भी इस क्रिया को किया जा सकता है। चलते-फिरते, बात करते या कुर्सी पर बैठी हुई स्थिति में भी इस क्रिया को किया जा सकता है। स्नायु संबंधी बहुत से रोगों में इस क्रिया के अभ्यास से लाभ मिलती है।

(ख) शरीर का निर्माण पांच तत्वों से हुआ है। सबसे स्थूल पृथ्वी तत्व इस क्रिया द्वारा सक्रिय एवं शुद्ध होता है। इस क्रिया द्वारा अन्य तत्वों के शुद्ध होने का मार्ग प्रशस्त होता है।

(ग) बड़ी आंत की निष्क्रियता दूर होती है जिसेस कब्ज और अपचन दूर होता है।

(घ) गर्भाशयच्युति और गर्भपात की प्रवणता दूर होती है, इसलिए महिलाओं के भी उपयुक्त है। मल द्वार के सभी प्रकार के दोष जैसें बवासीर, कांच, भगंदर और जलन इस अभ्यास से दूर होते हैं।

(ङ) स्त्री-पुरूष के प्रजनन अंगों एवं उनसे संबंधित स्नायुओं की

अनावश्यक उत्तेजना और शिथिलता का यह क्रिया दूर करती है जिससे स्तम्भन शक्ति बढ़ती है।

(च) उदासी, सुस्ती, निराशा और अवसाद के भाव दूर होते हैं। स्नायु दौर्बल्य में बहुत ही लाभप्रद है। अपान वायु के प्रवास को उर्ध्वमुखी बनाकर एंव प्राण-वायु के घर्षण पैदाकर यह क्रिया पाचन क्रिया को सुधारती है तथा शरीर में शक्ति और ओज की वृद्धि करती है।

मूल बंध

विधि- अश्विनी मुद्रा में बताएं गए किसी आसन में बैठें। इस क्रिया के लिए पुरूष सिद्धासन और महिलाएं सिद्धयोनि आसन में बैठे तो ज्यादा लाभदायक रहेगा। दोनों हथेलियों को घुटनों पर जमाये या ज्ञानमुद्रा या चिनमुद्रा लगाए। आंखें बंद कर मन को मल द्वारा और मूत्र द्वार के मध्य स्थान पर केन्द्रित करें। शरीर सीधा पर शिथिल रखे। धीरे-धीरे पर कुछ तेजी से लययुक्त गम्भीर श्वांस लेकर रोक रखे। मल द्वार और मूत्र द्वार के मध्य स्थान, जसे मूलाधार कहते है, का संकोचन कर उसे अधिक-से-अधिक ऊपर की ओर खींचे। जब तक श्वांस को भीतर रोक सकें इस स्थिति में रहें। जब श्वांस अन्दर न रोक सके तब मूलाधार के संकोचन को छोड़कर शिथिल कर दें। इस क्रिया को प्रारम्भ में 10 बार करें।

लाभ- (क) इस क्रिया के साथ जालन्धर बंध भी कर सकते है। इससे अधिक लाभ प्राप्त होगा। वज्रासन में बैठकर दोनों मुड़े पैरों की दूरी इतना बढ़ाएं कि नितंब पैरों पर न रहकर जमीन पर इस प्रकार लगे कि गुर्दा स्थान और उससे किंचित ऊपर का मूलाधार स्थान जमीन से स्पर्श करता रहे। इस स्थिति में यह अभ्यास और अधिक प्रभावशाली होगा।

(ख) इस क्रिया के मात्र मूलाधार का ही संकोचन होना चाहिए

लेकिन लिंगमूल और मलद्वार का भी कुछ न कुछ संकोचन हो जाता है।

(ग) अश्विनी मुद्रा में वर्णित सभी लाभ इस मुद्रा से प्राप्त होते है। कब्ज दूर होता है ओर पाचन शक्ति बढ़ती है।

(घ) मूलाधार चक्र योगशास्त्रानुसार कुण्डिनी का स्थान माना जाता है। यह अनन्त प्राण शक्ति का स्त्रोत होता है। इस क्रिया के द्वारा शक्ति, उतसाह एवं आनन्द की वृद्धि होती है।

(ङ) निम्न रक्तचाप में इस क्रिया में लाभ प्राप्त होता है तथा मल द्वार के सभी रोगों में लाभप्रद होने का साथ-साथ यह बहुत से स्नायु रोगों में भी लाभप्रद सिद्ध होता है।

(च) मूल बंध का अभ्यास श्वांस पर बिना कोई ध्यान दिए भी किया जा सकता है। इस प्रकार यह क्रिया दिन भर व्यवस्तता में भी की जा सकती है।

जालंधर बंध

विधि-पद्मासन, सिद्धासन, सुखासन या किसी भी आसन में इस प्रकार बैठे कि भरसक दोनों घुटने जमीन से स्पर्श करे। दोनों हाथों पर इस प्रकार जमाएं कि घुटने जमीन से और सट जाएं एवं पूरा शरीर सीधा और सजग हो जाए। आंखें बंद की रीढ़ की हड्डी सीधी पर सम्पूर्ण शरीर अधिक-से-अधिक शिथिल कर दे। गहरी सांस लेकर भीतर रोक ले। सिर को सामने इतना झुकाएं कि ठुड्डी छाती के ऊपरी हिस्से से अच्छी तरह स्पर्श करने लगे। ध्यान दे कि मेरूदंड न झुके। दोनों हथेलियों से घुटनों पर बल लगाकर दोनों कंधों को कुछ ऊपर उठाकर रखने से इस बंध की स्थिति अच्छी बनती है। जब तक श्वांस आसानी से अंदर रोक सके। इस स्थिति में रहे। हाथों को शिथिल कर, कंधों को शिथिल कर सिर को ऊपर उठाएं, फिर श्वांस को धीरे-धीरे लय के साथ श्वास बाहर निकाल दे। श्वास-प्रश्वास सामान्य हो जाने तक श्वास-प्रश्वास की सजगता के साथ अनुभव करे।

फिर इस क्रिया को दोहराएं। इस क्रिया को दस बार तक कर सकते हैं। जल्दबाजी में इस अभ्यास को न करे। श्वास लेते और छोड़ते समय श्वास की आवाज नहीं होनी चाहिए। दोनों हाथ, कंधे शिथिलकर गर्दन को सीधी कर और सिर को ऊपर उठाकर ही श्वास ले या छोड़े।

लाभ- (क) थायरॉयड एवं पराथॉरॉयड ग्रंथियों को क्रियाशील बनाकर उनके हार्मोन के स्त्राव को संतुलित करता है, जिससे शरीर की चयअपचय क्रिया ठीक रहती है और शक्ति, स्फूर्ति, उत्साह एवं युवावस्था अधिक दिनों तक कायम रहती है।

(ख) गर्दन की नसों से होकर मस्तिष्क की तरफ प्रवाहित होने वाले रक्त के प्रवाह को प्रभावित कर मस्तिष्क विद्युत्-तरंगों को संतुलित करता है।

(ग) योग की भाषा में विशुद्धि चक्र सक्रिय होता है जिससे आकाश तत्व शुद्ध होकर शरीर को शुद्ध करता है। हृदय की बढ़ी हुई धड़कन होती है।

(घ) गर्दन की स्नायुओं एवं पेशियों की अच्छी मालिश होती है, जिससे स्नयु एवं पेशियां लचीली बनती हैं।

(ङ) इस अभ्यास को खड़ा होकर, दोनों हथेलियों को घुटनों पर रखते हुए धड़ को कुछ आगे की तरफ झुकाकर भी किया जा सकता है। श्वास को बाहर निकाल कर भी इस क्रिया को किया जा सकता है।

(च) यह क्रिया मन की प्रसुप्त शक्ति को जगाने के लिए अद्वितीय है। मन शांत, सौम्य, एकाग्र और संतुलित होता है। इस क्रिया की चरम स्थिति में श्वास-प्रश्वास स्वत: रूक जाती है जो मस्तिष्क में उठने वाले अनचाहे अनियंत्रित विचारों के प्रवाह को हठात् रोक देती है। स्नायु संस्थान सबल बनता है।

अग्निसार क्रिया

अग्नि को प्रदीप्त करने को कारण इसे अग्निसार क्रिया कहते हैं। प्रदीप्त अग्नि शरीर के अंदर के सभी विकारों को नष्ट करती है। इसलिए इस क्रिया को अग्निसार कहते हैं।

विधि संख्या-१

वज्रासन में इस प्रकार बैठे कि दोनों घुटनों की तरफ थोड़ा झुके। मुंह खोलकर जीभ को बाहर निकाले रहे। तेजी से उदर को संकोच एवं विस्तार

श्वास-प्रश्वास के साथ इस प्रकार करे कि श्वास लेते समय उदर का विस्तार हो और प्रश्वास के समय उदर का संकोच हो। उदर का संकोच-विस्तार श्वास-प्रश्वास के साथ लय एवं ताल युक्त बनाने का प्रयत्न करे। मुंह खोलकर जीभ बाहर निकाल कर कुत्ते की तरह हांफते हुए ही श्वास-प्रश्वास करना चाहिए। 20-25 श्वांस-प्रश्वांस के बाद तब तक विश्राम करे जब तक श्वास-प्रश्वास सामान्य न हो जाएं नाभि केन्द्र पर आंकुचन और शिथिलन से उत्पन्न लहरों का अनुभव करना चाहिए। कम-से-कम इस क्रिया को 3 आवृत्ति करनी चाहिए। कुछ दिनों के बाद आवृत्ति बढ़ा सकते है।

विधि संख्या-2

पहले अभ्यास की तरह ही दोनों घुटनों को फैलाकर वज्रासन में बैठे। श्वांस को पूरी तरह से बाहर निकाल कर उसे बाहर ही रोक दे। जालंधर बंध लगाएं। जब तक श्वास को बाहर रोक सके तब तक उदर की पेशियों का संचालन करते रहे। जब श्वांस बाहर नहीं रोक सके तब उदर की पेशियों का संचलन रोक कर श्वांस ले। श्वास-प्रश्वास जब तक सामान्य न हो जाए तब तक श्वास-प्रश्वास पर ध्यान दे। श्वास-प्रश्वास सामान्य होने जाने पर पुन: इस क्रिया को करे। प्रारम्भ में कम-से-कम तीन आवृत्ति करे। बाद में अधिक कर सकते है।

लाभ- (क) उदर पेशी के लययुक्त आकुंचन एवं प्रसार से फेफडों एवं हृदय की पेशियों की अच्छी मालिश हो जाती है जिससे वे अंग स्वस्थ और मजबूत होते हैं।

(ख) गुर्दो के ऊपर स्थित ग्रंथि के स्त्राव को संतुलित कर मन को शांत एवें धैर्य युक्त बनाता है। शरीर स्थित पंच तत्वों में से अग्नि तत्व शुद्ध होकर शरीर के तापक्रम को संतुलित बनाता है एवं कफ के अधिक बनने की प्रवृत्ति को रोकता है।

(ग) पेट के अंदर के पाचन संबंधी सभी अंग सक्रिय और सतेज बनकर पाचन शक्ति को सुधारते है। मधुमेह, अपचन, कृमि और गैस्ट्रिक रोग में लाभप्रद है। आंतों की आंकुचन क्रिया में सुधार होता है, जिससे कब्ज दूर होता है। मणिपुर चक्र सक्रिय होकर शरीर में शक्ति और ओज की वृद्धि होती है।

(घ) गर्भाशय, डिम्बाशय और गर्भाशय नलिकाएं सक्रिय, सतेज और लचीली बनती है। प्रजनन अंग प्रभावित होते हैं। खाली पेट में यह क्रिया की

फिर इस क्रिया को दोहराएं। इस क्रिया को दस बार तक कर सकते हैं। जल्दबाजी में इस अभ्यास को न करे। श्वास लेते और छोड़ते समय श्वास की आवाज नहीं होनी चाहिए। दोनों हाथ, कंधे शिथिलकर गर्दन को सीधी कर और सिर को ऊपर उठाकर ही श्वास ले या छोड़े।

लाभ- (क) थायरॉयड एवं पराथॉरॉयड ग्रंथियों को क्रियाशील बनाकर उनके हार्मोन के स्त्राव को संतुलित करता है, जिससे शरीर की चयअपचय क्रिया ठीक रहती है और शक्ति, स्फूर्ति, उत्साह एवं युवावस्था अधिक दिनों तक कायम रहती है।

(ख) गर्दन की नसों से होकर मस्तिष्क की तरफ प्रवाहित होने वाले रक्त के प्रवाह को प्रभावित कर मस्तिष्क विद्युत्-तरंगों को संतुलित करता है।

(ग) योग की भाषा में विशुद्धि चक्र सक्रिय होता है जिससे आकाश तत्व शुद्ध होकर शरीर को शुद्ध करता है। हृदय की बढ़ी हुई धड़कन होती है।

(घ) गर्दन की स्नायुओं एवं पेशियों की अच्छी मालिश होती है, जिससे स्नयु एवं पेशियां लचीली बनती हैं।

(ङ) इस अभ्यास को खड़ा होकर, दोनों हथेलियों को घुटनों पर रखते हुए धड़ को कुछ आगे की तरफ झुकाकर भी किया जा सकता है। श्वास को बाहर निकाल कर भी इस क्रिया को किया जा सकता है।

(च) यह क्रिया मन की प्रसुप्त शक्ति को जगाने के लिए अद्वितीय है। मन शांत, सौम्य, एकाग्र और संतुलित होता है। इस क्रिया की चरम स्थिति में श्वास-प्रश्वास स्वत: रूक जाती है जो मस्तिष्क में उठने वाले अनचाहे अनियंत्रित विचारों के प्रवाह को हठात् रोक देती है। स्नायु संस्थान सबल बनता है।

अग्निसार क्रिया

अग्नि को प्रदीप्त करने को कारण इसे अग्निसार क्रिया कहते हैं। प्रदीप्त अग्नि शरीर के अंदर के सभी विकारों को नष्ट करती है। इसलिए इस क्रिया को अग्निसार कहते हैं।

विधि संख्या-१

वज्रासन में इस प्रकार बैठे कि दोनों घुटनों की तरफ थोड़ा झुके। मुंह खोलकर जीभ को बाहर निकाले रहे। तेजी से उदर को संकोच एवं विस्तार

श्वास-प्रश्वास के साथ इस प्रकार करे कि श्वास लेते समय उदर का विस्तार हो और प्रश्वास के समय उदर का संकोच हो। उदर का संकोच-विस्तार श्वास-प्रश्वास के साथ लय एवं ताल युक्त बनाने का प्रयत्न करे। मुंह खोलकर जीभ बाहर निकाल कर कुत्ते की तरह हांफते हुए ही श्वास-प्रश्वास करना चाहिए। 20-25 श्वांस-प्रश्वांस के बाद तब तक विश्राम करे जब तक श्वास-प्रश्वास सामान्य न हो जाएं नाभि केन्द्र पर आंकुचन और शिथिलन से उत्पन्न लहरों का अनुभव करना चाहिए। कम-से-कम इस क्रिया को 3 आवृत्ति करनी चाहिए। कुछ दिनों के बाद आवृत्ति बढ़ा सकते है।

विधि संख्या-2

पहले अभ्यास की तरह ही दोनों घुटनों को फैलाकर वज्रासन में बैठे। श्वांस को पूरी तरह से बाहर निकाल कर उसे बाहर ही रोक दे। जालंधर बंध लगाएं। जब तक श्वास को बाहर रोक सके तब तक उदर की पेशियों का संचालन करते रहे। जब श्वांस बाहर नहीं रोक सके तब उदर की पेशियों का संचलन रोक कर श्वांस ले। श्वास-प्रश्वास जब तक सामान्य न हो जाए तब तक श्वास-प्रश्वास पर ध्यान दे। श्वास-प्रश्वास सामान्य होने जाने पर पुन: इस क्रिया को करे। प्रारम्भ में कम-से-कम तीन आवृत्ति करे। बाद में अधिक कर सकते है।

लाभ- (क) उदर पेशी के लययुक्त आकुंचन एवं प्रसार से फेफडों एवं हृदय की पेशियों की अच्छी मालिश हो जाती है जिससे वे अंग स्वस्थ और मजबूत होते हैं।

(ख) गुर्दों के ऊपर स्थित ग्रंथि के स्त्राव को संतुलित कर मन को शांत एवें धैर्य युक्त बनाता है। शरीर स्थित पंच तत्वों में से अग्नि तत्व शुद्ध होकर शरीर के तापक्रम को संतुलित बनाता है एवं कफ के अधिक बनने की प्रवृत्ति को रोकता है।

(ग) पेट के अंदर के पाचन संबंधी सभी अंग सक्रिय और सतेज बनकर पाचन शक्ति को सुधारते है। मधुमेह, अपचन, कृमि और गैस्ट्रिक रोग में लाभप्रद है। आंतों की आंकुचन क्रिया में सुधार होता है, जिससे कब्ज दूर होता है। मणिपुर चक्र सक्रिय होकर शरीर में शक्ति और ओज की वृद्धि होती है।

(घ) गर्भाशय, डिम्बाशय और गर्भाशय नलिकाएं सक्रिय, सतेज और लचीली बनती है। प्रजनन अंग प्रभावित होते हैं। खाली पेट में यह क्रिया की

जानी चाहिए। भोजन के कम-से-कम 4-5 घंटे बाद करना चाहिए।

(ङ) हृदय रोग, उच्च रक्तचाप, चक्कर, मस्तिष्क के आंतरिक दबाव एवं पेट के अल्सर रोग में योग्य निर्देशन में ही करना चाहिए।

यौगिक मुद्रा

मुद्रा एक ऐसी अनोखी विधि है जो एक तरफ शरीर को स्वस्थ बनाती है तो दूसरी तरफ चेतना को जटिल मनोग्रंथियों से मुक्त कर उच्चतर आयाम देती है। मुद्राएं शरीरस्थ किसी विशेष चक्र या अन्त: स्रावी ग्रंथि को उत्तेजित करती है, स्वैच्छिक संस्थान को नियंत्रित करती है और इस प्रकार मन: स्थिति को प्रभावित कर सूक्ष्म शरीर पर गहरा प्रभाव डालती है। जिस प्रकार आसन अन्नमय कोष को विशेषकर प्रभावित करता है, उसी प्रकार मुद्रा मनोमय कोष को विशेषकर प्रभावित करती है। लेकिन इसका यह अभिप्राय कभी नहीं होता कि ये अलग-अलग योग विधियां अन्य कोषों को बिलकुल ही प्रभावित नहीं करती। वस्तुत: योग की सभी क्रियाएं व्यक्तित्व के सभी पहलु को प्रभावित करती है। हां उनके प्रभाव का कोई क्षेत्र प्रधान और कोई गौण होता है। शरीर और चेतना की विशेष स्थिति को 'मुद्रा' कहते हैं। शास्त्रीय नृत्य और नाट्यशास्त्र में मुद्रा के प्रयोग का काफी विस्तार है। लेकिन योगशास्त्र में वर्णित मुद्राएं भिन्न प्रकार की होती है। मुद्राएं बहुत सी प्राणायाम के साथ भी जिनका संयोजन से हो सकता है। यही नहीं कुछ मुद्राओं का अभ्यास तो कहीं भी और कभी भी किया जा सकता है।

चिन्तामुद्रा

विधि- ज्ञान मुद्रा की ही तरह है। अंतर सिर्फ इतना है कि दोनों घुटनों पर हथेलियां ऊपर की ओर रहेगी।

लाभ- ज्ञान मुद्रा के समान ही लाभकारी भी है। इस क्रिया से भी ध्यान करने में मदद मिलती है। मस्तिष्क प्रभावित होता है।

खेचरी मुद्रा

योग शास्त्र में इस क्रिया का महत्वपूर्ण स्थान है। आकाश गमन करने वालो योगियों और सिद्धों की वर्चाएं भी की जाती है। कहा जाता है कि इस क्रिया से आकान गमन की क्षमता प्राप्त करने में मदद मिलती है। जो भी हो इतना निश्चित है कि इस क्रिया के अभ्यास से चेतना की गति उर्ध्वमुखी होती है। खेचरी अर्थात् आकाश-गमन इस क्रिया के नाम की ध्वनि होता है। शास्त्रों में बहुत-से कथन प्रतीकात्मक है। उनके शब्दिक अर्थ को नहीं बल्कि उनके भाव को ग्रहण करना चाहिए।

विधि-

यह विधि अत्यन्त सरल है, पर उसकी पूर्ण कुशलता में समय लगता है। दूसरी विधि जटिल है जिसे आध्यात्मिक गुरू के निर्देशन में ही सीखा जा सकता है। ध्यान के किसी भी आसन में बैठ जाएं। मुंह को बंद कर ऊपर और नीचे के दांतों को सटाकर शिथिल कर दे। आंखें बंद रहेगी। जिह्वा के आगे वाले भाग को उठाते हुए पीछे तालु मूल की ओर अधिक-से-अधिक ऊपर ले जाकर उसे स्पर्श करते रहे। पूरा ध्यान देकर और अधिक प्रयास कर के जिह्वा के अग्र भाग को अधिक-से-अधिक पीछे ले जाकर तालु मूल स्पर्श करते रहे एवं स्पर्श का अनुभव करते रहे। इसी स्थिति में देर तक स्थिर रहने का प्रयास करे। श्वांस-प्रश्वांस सामान्य ढंग से चलती रहेगी। आरम्भ में जिह्वा में कुछ तनाव जैसा प्रतीत होता है। ऐसी स्थिति में जिह्वा को सामान्य कर शिथिल कर दे और पुन: तालु मूल की तरफ ले जाएं। लार ज्यादा बनने पर उसे निगल जाएं। वह लाभदायक है। इस विधि को अधिक-से-अधिक समय तक किया जा सकता है। कुछ दिनों के अभ्यास के बाद दिन में अधिक-से-अधिक समय तक कर सकते है। इस स्थिति में उज्ज्यी प्राणायाम कर सकते है। लेटकर या सोते समय यह क्रिया न करे। इस मुद्रा के साथ सहज श्वांस-प्रश्वांस के प्रति सजगता बनाए रखना या अन्य ध्यान की क्रियाएं करना लाभप्रद है।

लाभ-

(क) इस विधि से वीर्य स्खलन रूकता है तथा उच्च रक्तचाप, हृदय रोग, मस्तिष्का का आंतरिक दाब जैसे तनाव कम होते है।

(ख) इस क्रिया के अभ्यास से श्वांस-प्रश्वांस की गति धीमी और गम्भीर बनती है जिससे मन स्वत: शांत और स्थिर होने लगता है।

(ग) इस क्रिया के दीर्घ अभ्यास से स्वर मधुर बनता है इसलिए यह संगीत साधकों के लिए उपयुक्त है। इस क्रिया के साथ उज्जयी प्राणायाम अधिक लाभकारी है।

(घ) भूख और प्यास कम लगती है पर शरीर स्वस्थ रहता है। आहार के प्रति लोलुपता कम होती है।

(ङ) शरीर की अनावश्यक गर्मी दूर होती है और शरीर के तंतुओं के क्षय होने की गति रूकती हैं जिससे युवावस्था अधिक दिनों तक बनी रहती हैं।

(च) लार की वृद्धि का पाचन शक्ति को बढ़ाती है। ऊपर के तालु प्रदेश में स्थित सूक्ष्म स्नायुओं को उठोरित कर मस्तिष्क को शांत ओर स्थिर करती है।

अपान मुद्रा

विधि- ध्यान करने वाले किसी भी आसन में बैठ जाएं। हाथों को घुटनों पर इस प्रकार रखे कि मध्यमा एवं अनामिका उंगलियां अंगूठे से स्पर्श करती रहे। अन्य दो उंगलियां सीधी रहेगी। चलते-फिरते या बैठे रहने पर भी इसका अभ्यास किया जा सकता है।

लाभ-

नाभि से नीचे के भाग में स्थित प्राण को अपान कहते हैं। इस मुद्रा से अपान वायु शुद्ध और सक्रिय होती है अतः शरीर से मल निष्कासन क्रिया ठीक से होती है। ऐसी मान्यता है इस क्रिया से अधिक समय तक अभ्यास करने से शरीर के अंदर के विकार आसानी से बाहर निकलते है। मल-मूत्र और पसीना संबंधी रोगों में लाभ होता है।

ज्ञान मुद्रा

विधि- पद्मासन, सिद्धयोनि आसन या सिद्धासन में बैठे। दोनों हथलियों को घुटनों पर इस प्रकार रखे कि हथेली नीचे की ओर रहे। आंखें बंद कर ले। अब दोनों हाथों की तर्जनी को इस प्रकार मोड़े कि उसका स्पर्श अंगूठे के आधार पर यानी पहली रेखा से नीचे हो। शेष तीन उंगलियों को इस प्रकार सीधा फैलाकर रखे कि वे आपस में एक-दूसरे से स्पर्श न करे। अधिक समय तक इस क्रिया को कर सकते है। कुछ लोगों की मान्यता है कि दोनों उंगलियों के नाखून के निचले हिस्से का आपस में स्पर्श होना चाहिए।

लाभ- (क) इस मुद्रा की स्थिति में बैठकर ध्यान करने से मन को स्थिर और अन्तर्मुख करने में मदद मिलती है। चेतना का चेतना प्रवाह स्वतः अन्दर की तरफ होने लगता है।

(ख) प्राण के प्रवाह को उचित दिशा प्रदान कर उसके निरर्थक क्षय को रोकना इस मुद्रा का लक्ष्य है। वास्तव में यह मुद्रा शांत और स्थिर मनः स्थिति का प्रतीक भी है। अंत में इस क्रिया द्वारा अव्यवस्थित मनोदशा में पद्मासन, सिद्धयोनि आसन या सिद्धासन के साथ यह मुद्रा शीर्ष लाभकारी सिद्ध होगी।

भुजंगिनी मुद्रा

विधि- ऐसा माना जाता है कि सर्प मुंह से श्वांस लेकर निगल जाता है। इसी आधार पर इस मुद्रा का उद्भव हुआ है। किसी भी स्थिति में बैठे या सीधे खड़ा रहे पर मेरूदंड, गर्दन और सिर सीधा रहना चाहिए। आंखें बंद कर पूरे शरीर को शिथिल कर दे। ऊपर और नीचे के दांतों को आपस में भंचकर मुंह से ही श्वांस को बार-बार अंदर लेकर निगल लिया करे। मुंह से ली हुई श्वास फेफड़ों में न जाकर निगलते हुए मुंह से भीतर पेट में जानी चाहिए। श्वांस छोड़ने की इच्छा हो तो नाक से ही श्वांस को निकाले। मुंह से निगलते हुए पेट में श्वांस को इतना भरे कि पेट में हल्का-हल्का तनाव मालूम होने लगे। कुछ देर पेट में वायु को रोक कर बार-बार डकार लेकर श्वांस बाहर निकाले जब तक पेट का तनाव कम न हो जाएं। इस क्रिया को पुनः दोहराएं। शंख प्रक्षालन और कुंजल के बाद विशेष लाभकारी है। किसी-किसी को कुंजल की अपेक्षा इस मुद्रा से ज्यादा लाभ होता है।

लाभ- (क) पाचन शक्ति में वृद्धि होती है, अर्थात् पाचन प्रदीप्त होती है।

(ख) शरीर के आंतरिक महत्वपूर्ण अंगों के तंतुओं की टूट-फूट को रोक कर उन्हें तरो-ताजा बनाए रखने में इस क्रिया से बहुत मदद मिलती है जिससे वे अंग सक्रिय और स्वस्थ बने रहते है।

(ग) सम्पूर्ण स्नायु संस्थान को शीतलता प्रदान कर शक्ति और स्फूर्ति की वृद्धि करता है।

(घ) मसूड़े और मुंह की भीतरी श्वास के रोगों में लाभप्रद है तथा गैस्ट्रिक, अपचन और अल्सर इत्यादि रोगों में अत्यंत लाभप्रद है।

(ङ) मुहांसा और झुर्रियों को दूसरे चेहरे की कांति को बढ़ाता है।

वज्रोली मुद्रा

वज्र नामक नाड़ी से संबंधित क्रिया होने से इसे वज्रोली क्रिया कहते है। वज्रोली मुद्रा को योग की एक अनुपम देन है। मानव व्यक्तित्व के सभी आयामों पर उसके गुप्तांगों की बनावट और उसकी क्षमता का प्रगट या अप्रगट रूप से सबसे अधिक प्रभाव पड़ता है। कामशक्ति की न्यूनता और अधिकता दोनों ही व्यक्तितव को असंतुलित बनाने का कारण बनती है। आज के मनोविज्ञान हो या योगशास्त्र दोनों का सबसे ज्यादा ध्यान कामेच्छा, कामशक्ति और कामक्रीड़ा से संबंधित जटिल मनोग्रंथियों के विरेचलन की तरफ है। योगशास्त्र को तो कामशक्ति से उदात्तीकरण की एक प्रक्रिया के

रूप में समझा जा सकता है। वज्रोली मुद्रा इसी काम शक्ति की स्थूल और सूक्ष्क तरंगों को नियंत्रित, संतुलित और परिमार्जित करने का एक अप्रतिम साधन है। इसका उद्देश्य उच्च स्नायविक शक्ति को विकसित करना है। साथ ही यह क्रिया जननेन्द्रिय की अनेक तरह से बीमारियों को दूर करने में पूर्णयता समर्थ है।

विधि- किसी भी ध्यान के आसन में बैठे। सिद्धासन अति लाभकर है। मेंरूदंड को सीधा रखते हुए आंखे बंद और शरीर को शिथिल रखे। निचले उदर का संकोच करते हुए मूत्र प्रणाली और प्रजनन अंगों को पीठ की तरफ कुछ ऊपर उठाते हुए आंकुचन करे। कुछ सैकंड इस आकुंचन की स्थिति में रहकर फिर आंकुचन को शिथिल कर दे। पुनः आकुंचन की स्थिति और शिथिलन क्रिया बार-बार करे। आकुंचन से उत्पन्न लहरों को अनुभव करते रहना चाहिए। श्वांस लेकर भीतर रोकर या श्वांस निकाल कर और बाहर ही रोक कार आकुंचन देर तक किया जा सकता है। प्रारम्भ में 25-30 बार करे। बाद में कभी भी किसी भी स्थिति में अधिक-से-अधिक करे।

लाभ- (क) इस क्रिया के अभ्यास से मूत्र मार्ग में किसी रोग का संक्रमण नहीं हो पाता है। यह क्रिया भोजन के प्रति लोलुपता को कम करती है।

(ख) अंडकोषों की सक्रियता बढ़ जाती है जिससे स्वस्थ शुक्र का निर्माण अधिक होता है।

(ग) पौरूष ग्रंथि के विकार दूर होते है। इस क्रिया को गृहस्थ साधन परिवार नियोजन के साधन के रूप में प्रयोग कर सकते है।

(घ) यह क्रिया स्थूल कामशक्ति को परिष्कृत कर ओज शक्ति और मेधाशक्ति को बढ़ाता है। जननेन्द्रिय की अस्वाभाविक उत्तेजना और शिथिलता इस क्रिया से दूर होती है। कामशक्ति को प्रभावित करने वाले स्नायुओं और पेशियों में रक्त, प्राण और चेतना का प्रवाह बढ़ जाने से वह नियंत्रित और पुष्ट होती है। स्वप्नदोष, शीघ्रपतन, प्रमेह, बहुमूत्र इत्यादि रोग दूर होकर स्तम्भनशक्ति बढ़ती है। ब्रह्मचर्य पालन करने में मदद मिलती है।

शाम्भवी मुद्रा

दोनों भौहासें के मध्य के स्थान को योग की भाषा में आज्ञा चक्र कहते है। इसे शिव नेत्र तीसरा नेत्र शाम्भवी चक्र और रूद्र ग्रंथि भी कहते है। चिकित्सा विज्ञान के अनुसार पिनियल ग्रंथि इसी स्थान पर है। इसे गुरू चक्र और ज्ञान चक्र भी कहा जाता है। योगमतानुसार इड़ा नाड़ी और पिंगला नाड़ी

यहीं पर एक दूसरे से मिलती है। इन सभी कारणों से दोनों भौंहों के मध्य आज्ञा चक्र का योग शास्त्र में अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। यह मुद्रा इसी चक्र को सक्रिय करने का विशिष्ट साधन है।

विधि- ध्यान के किसी आसन में बैठे पर मेरूदंड सीधा रहे। हथेलियों को घुटनो पर जमा दे या ज्ञानमुद्रा अथवा चिनमुद्रा की स्थिति में कर ले। सिर स्थिर और सीधा रहना चाहिए। आंखों की पुतलियों को ऊपर उठाकर दोनों भौंहों के बीच में लगातार अपलक देखते रहे। इस बात की सजगता रखे कि आप लगातार देख रहे है। आंखों के थक जाने पर या अत्यधिक तनाव अनुभव होने पर आंखों बंद कर शिथिलि कर दे। बंद आंखों से ही आंखों के सामने फैले अंधकार में लगातार देखते रहे। बंद आंखों से भी धीमा-धीमा प्रकाश जैसा दिखाई पड़ेगा। करीब एक मिनट तक इस स्थिति में रहकर पुनः आंखों को खोलकर दोनों भौंहों के बची में लगातार देखते रहे। करीब एक मिनट तक इस स्थिति में रहकर पुनः आंखों को खोलकर दोनों भौहों के बीच में लगातार देखते रहे। थक जाने पर पुनः बंद आंखों से ही अंधेरे में देखने का प्रयास करे।

लाभ- (क) मन शांत, स्थिर और एकाग्र होता है। इसलिए सभी प्रकार के मनोशारीरिक रोगों में लाभ करता है। मानसिक तनाव और थकान दूर होती है। स्मरणशक्ति विकसित होती है। विद्यार्थियों एवं बौद्धिक काम करने वालों के लिए अमृत तुल्य है। अध्यात्मिक दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण मुदा है।

(ख) अनिद्रा रोग में अत्यंत लाभदायक है।

(ग) नेत्रों के विकास दूर होते हैं और दृष्टि में सम्मोहन शक्ति बढ़ती है। आंखें सुंदर और आकर्षक बनती हैं जिससे व्यक्तित्व में निखार आता है।

सूर्य मुद्रा

*विधि-*ध्यान की किसी भी स्थिति में बैठे। अनामिका को मोड़कर उसके बीच के दोनों जोड़ों के ऊपर वाले भाग को अंगूठे से दबाकर रखना है। अन्य उंगलियां सीधी रहेगी। जिन्हें इसकी आवश्यकता हो वे चलते फिरते और बैठते समय भी इसका प्रयोग कर सकते है।

लाभ- मनोभावों को स्थिर करने के अतिरिक्त ऐसी मान्यता है कि शरीर की स्थूलता कम करता है।

11
क्रियाओं के प्रकार
(Type of Kriyas)

सूत्र नेती

नेती कई प्रकार की होती है, किन्तु नेतियों में सर्वश्रेष्ठ स्थान जल नेती और सूत्र नेती को ही प्राप्त है, सूत्रनेती के मुकाबले जल नेती करनी सरल है, परन्तु हम लगातार अभ्यास से सूत्र नेती भी सरलतापूर्वक कर सकते हैं, हमें जल नेती से पहले सूत्रनेती करनी चाहिए।

विधि - एक लोटे में थोड़ा गुनगुना पानी लें एक सूत्र नेती ले जिसके ऊपर का भाग मोम से बना हुआ हो नीचे के भाग के धागे अलग-अलग करें और फिर सूत्र के निचले भाग को गुनगुने पानी में भिगोंये याद रहे ऊपर का मोम वाला हिस्सा न भीगे कागासन में बैठ जाएं मोम वाले हिस्से को धीरे-धीरे नाक के किसी एक छिद्र में डालें थोड़ी देर में ऊपर का मोम वाला हिस्सा गले में आ जाएगा अब सूत्र के गले वाले हिस्से को बायें हाथ से बहुत आराम-आराम से खींचे और अब नीचे के हिस्से को बायें हाथ से पकड़ें अब सूत्र को दोनों हाथों से धर्षण करें 7 से 8 बार घर्षण करने के बाद सूत्र को मुहँ से निकाल दें। फिर सूत्र को नीचे के हिस्से को गर्म पानी से व मोम वाले ऊपर के हिस्से को ठण्डे पानी से धोयें अन्यथा हम सूत्र को यदि साफ करके नहीं रखेंगे तो उसमें कफ लगा रह जाएंगा। इसी प्रकार नेती को दूसरे छिद्र में डालें और सूत्र नेति का पूर्ण आनन्द प्राप्त करें।

यदि किसी के नाक के छिद्र से रक्त आता है, या घर्षण करने से ज्यादा जलन होती है, तो डरें नहीं नाक के छिद्र में शुद्ध घी एक-दो बूंद डाल लें और नाक से लम्बे-लम्बे श्वांस लें। रात को सोते समय नाक के दोनों छिद्रों में शुद्ध घी एक-दो बूंद डाल कर सोयें इससे आपको सूत्र नेती करते समय नाक से न तो रक्त आयेगा और नाक से नेती करने में किसी प्रकार कि कोई तकलीफ नहीं होगी।

लाभ - सूत्र नेती करने से कफ नहीं होता व कपाल की शुद्धि होती है, गले की खराश दूर होती है, गले में टांसिल कभी नहीं होता, कान बहने की

बीमारी से दूर रहते है। आवाज में मधुरता आती है, सूत्र नेती के नियमित अभ्यास से हम जुकाम, सिर दर्द जैसी बीमारियों से दूर रहते है।

उपकरण

लोटा टोंटी वाला, सूत्र नेती।

जल नेती

विधि- एक लोटा लें टोंटी लगा हुआ उसमें गुनगुना पानी भर लें और थोड़ा-सा नमक डाल लें नमक को गर्म पानी में अच्छी तरह से घोल लें, कागासन में बैठ जाएं गर्दन आगे की ओर थोड़ी झुका लें, अब नाक के छिद्र में लोटे की टोंटी लगाए यदि बायें छिद्र में लगाएं तो बाएं हाथ से लोटा पकड़ें यदि दायें छिद्र में लगाएं तो दायें हाथ से लोटा पकड़ें मुहँ खुला रखें व मुहँ से ही श्वांस लें। लोटे को उसकी तली से पकड़ें ताकि ऊपर को उठानें में कोई तकलीफ न हो नाक के छिद्र में लोटा लगा कर धीरे-धीरे ऊपर को करें आप देखेंगे कि लोटे का सारा पानी दूसरे छिद्र से निकल जाएंगा।

लाभ - जल नेती करने से नाक के दोनों छिद्रों की सफाई बहुत अच्छी तरह से होती है, कपाल को साफ करने में सहायक है।

जल नेती के करने के बाद भस्त्रिका प्राणायाम जरूर करें सीधे खड़े होकर कमर से थोड़ा आगे की ओर झुका लें गर्दन को दायें-बायें, ऊपर-नीचे करके नाक से श्वांस बाहर फेंकें। ऐसा करने से नाक के दोनों छिद्र पूर्ण रूप से साफ हो जाएगी। यदि जल नेती के बाद आप ऐसा नहीं करते तो नाक के छिद्रों में थोड़ा जल रह जाएगा। और उससे आपको जुकाम हो सकता है।

उपकरण

गुनगुना जल, लोटा टोंटी वाला, नमक।

वस्त्र धौती

तीन इंच चौड़ा व पाँच से सात इंच लम्बा एक मलमल का कपड़ा नमक मिले हुए गुनगुने पानी में रख दें जिससे पट्टी पूरी तरह भीग जाएं व अंदर निगलने में आसानी हो जाएं और आसानी से निगलना चाहते हो तो पट्टी को दूध में भिगो करे रखें जब कागासन में बैठ जाएं पट्टी को धीरे-धीरे मुहँ से निगलें व कुछ देर बाद पट्टी को बाहर निकालें यदि

12
योग में मौलिक, प्रायोगिक तथा क्रिया अनुसंधान
(Basic, Applied and Action Research in Yoga)

योग के क्षेत्र में बहुत प्रयोग हुए है। जितने गुरू उतने नये प्रयोग। इन नये प्रयोगों से क्रमशः ध्यान की विधियाँ परिष्कृत और सहज हो गई है। पांताजलि का अष्टंगयोग योग का प्रसिद्ध रूप है, पर आज उसके पीछे पड़ने की कोई आवश्यकता नहीं। अब तो बना प्राणायाम, बंध, आसन और कठिन तप के बड़े आराम से ध्यान करने की पद्धतियाँ विकसित हो गई है। आज के व्यस्त युग में तथा बौद्धिक युग में प्राचीन कर्मकाण्डयुक्त, तपस्या-परक, साधन व्यर्थ हो गये हैं। अब तो थोड़ी समझ हो, रूचि हो, तो बड़े आराम से समर्थ गुरू ध्यान में उतार देता है। आपको पता भी न चलेगा और आप हँसते-गाते ध्यानी हो जायेंगे, पर इसके लिए बोधवान गुरू चाहिए। आजकल ध्यान में उतरे हुए साधक हर स्थान में उपलब्ध हैं। इनसे ध्यान सीखा जा सकता है और बाद में और प्रगति के लिए गुरूओं से सम्पर्क किया जा सकता है। अब तो बड़े नगरों में ध्यान-केन्द्र भी खुल चुके हैं, वहां से सहयोग लिया जा सकता है।

निर्विचार होने के लिए

मन का निर्विचार करने के लिए ध्यान करना अनिवार्य है। ध्यान करने से क्रमशः विचार क्षीण होते-होते समाप्त हो जाते है। थोड़ी भी देर की शून्यता आंतरिक शक्ति को जगा देती है। प्राण वायु, सुष्मना पथ से ऊपर उठने लगती है। चक्रों पर चोट मारने लगती है। चक्र-बिन्दु अनुभव में आने लगते हैं, जिससे मन को शांति और आनन्द की अनुभूति होने लगती है। इन चक्र-केन्द्रों में इतना आनन्द छिपा है कि मन बाहर के लक्ष्यों को छोड़कर इनमें रमने का अभ्यासी हो जाता है। मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अनाहत, विशुद्ध आज्ञा तथा सहस्त्राट चक्रों के पूर्णतः विकसित हो जाने पर

समाधि फलित होती है। आदमी ब्रह्मपद का अधिकारी बन जाता है। वह स्थितप्रज्ञ हो जाता है, आत्मा में ही अनवरत रमता रहता है। उसे अखण्ड आनन्त और शांति प्राप्त हो जाती है जो जीवन का उद्देश्य है।

ध्यान के विविध प्रकार- ध्यान की प्रक्रिया किसी तरंगित गुरू या बोध वान गुरू से सीखनी चाहिए। तरंगित व्यक्ति दूसरों को तरंगति करने की सामर्थ्य रखता है। वह साधक के आंतरिक क्षेत्र में गति पैदा कर देता है जिसे शक्तिपा कहते हैं। स्पर्श कर, आंख से, संकल्प से वह शिष्य के अन्दर गति पैदा कर देता है, फिर शिष्य को आंतरिक विकास में बड़ी सुविधा होती है। समर्थ गुरू दूर स्थित शिष्यों को भी अपनी तरंगित करता रहता है, जिससे शिष्य को बड़ी जल्दी सफलता मिलती है। गुरू कृपा इस को कहते है। इसके लिए शिष्य को गुरू से पूरी तरह हार्दिक सम्बन्ध बनाये रखना चाहिए अर्थात् उनके प्रति श्रद्धाभाव बनाये रखना चाहिए।

ध्यान, मंत्र के साथ, चित्र के साथ और शून्य के साथ किया जाता है। कुछ लोग मंत्र-जाप द्वारा, कुछ लोग इष्ट की मूर्ति के ध्यान द्वारा, कुछ नाम-जाप के द्वारा ध्यान में प्रवेश करते है। सुविधा और संस्कार देखकर गुरू ऐसे ध्यानों की व्यवस्था करता है। पर ध्यान का शुद्ध रूप है कि बिना किसी आवलंबन मन एकाग्र न हो तो श्वांस के आने-जाने, संगी या बाहर के श्व को क्रमशः देखना-सुनना चाहिए। ध्यानी को गहरी श्वांस लेकर ध्यान प्रारम्भ करना चाहिए। फिर सहज श्वांस लेनी चाहिए। किसी विशेषज्ञ गुरू से दीक्षा लेकर ध्यान करना चाहिए, स्वयं से प्रयास करने वालों को कठिनाई होती है।

आसन और प्राणायाम को हम अकारण बहुत महत्व देते हैं। आसनों से योग साधना का कोई सरोकार नहीं है। ये पुराने साधन थे, जब योग स्थूल-साधनाओं, कृत्रिम साधनाओं को स्वीकार कर चलता था। योग का सम्बन्ध सीधे मन से है। यह एक मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है, शारीरिक नहीं। आसन बनाये गये थे, चक्रों के गति देने के लिए। इसका प्रभाव पड़ता है, पर इससे हानियां भी हैं। एक तो यह कृत्रिम साधन है, दूसरे कष्ट साध्य। चक्रों को गति देने का सबसे सरल ढंग है नृत्य, ट्विस्ट करना, खेलना। चलने, उठने, बैठने, सबसे नाड़ी- जालों में खिंचाव, तनाव, गति आती है। आसन माने शरीर जिसे मुद्रा में रहना पसंद करे, उस मुद्रा में उसे रखो।

इससे मन शरीर के चक्कर में रहकर आंतरिक चक्रों पर एकाग्र रहेगा, अन्यथा वह आसनों के दबाव के प्रति सजग और एकाग्र रहेगा। इसी प्रकार प्राणायाम है। यह भी श्वांस की अस्वाभाविक प्रक्रिया है। इससे भी लाभ और हानि दोनों होते है। थोड़े से लाभ के पीछे हानि कौन चाहेगा? फिर आज किसको फुरसत है कि नाक दबाता बैठा रहे। आसनों तथा प्राणायाम से रोगों से छुटकारा मिलता है, शरीर स्वस्थ रहता है और आंशिक रूप से ध्यान में भी सहयोग मिलता है। बहुत-सी ऐसी संस्थायें हैं जो योग के नाम पर आसनों का व्यापार कर रहे हैं। डॉक्टर बन गये हैं, जिन्हें कोई विशेष व्याधि हो, वे भले ही इस चक्कर में पड़ें, वैसे योग या ध्यान से इनका विशेष सरोकार नहीं हैं बल्कि अस्वाभाविक होन के कारण ये अवरोध अधिक उत्पन्न करते है।

योग के आयाम का विस्तार- पहले योग मूलतः स्वयं से स्वयं की संतुष्टि को ही सब कुछ मानता था। आत्मा को रमा करो, बाहर से संसर्ग न करो, नहीं तो बाहर न जाने कब तुम्हें भ्रष्ट कर दे। इस भय से योगी एकांत की तलाश करते थे, समाज से सरोकार नहीं रखते थे। भगवान् कृष्ण ने योग को कर्म से जोड़ने का स्तुत्य प्रयास किया। उन्होंने कहा मुझे स्मरण कर युद्ध कर। मुझे माने अपने आत्म-केन्द्र का स्मरण और कर्म एक साथ करो। वास्तव मे हमारा ध्यान अन्दर भी जाता है, बाहर भी। हमें बाहर के कर्म-जगत से डरना नहीं चाहिए। बाहर से प्रत्येक कर्म में पूर्ण एकाग्रता और तल्लीनता वही परिणाम लाती है जो आन्तरिक केन्द्र की एकाग्रता और तल्लीनता लाती हैं। आगे चलकर भगवान् महावीर ने तथा इस युग में जे. कृष्णमूर्ति भगवान् रजनीश, महिर्ष महेश आदि ने ध्यान को पूरी जीवन-चर्या से जोड़ने का प्रयास किया। इन सबका कहना है कि हर क्रिया को एकाग्रता, सृजगता, जागरूकता से करने, से उससे जुड़ने से ध्यान का आनन्द आयेगा। कहीं भी जुड़ों, सब योग है, सब आनन्दयुक्त है। इस प्रकार आज योग जीवन को खंडित न कर अखण्ड रूप स्वीकार कर सर्वत्र परमात्मा की छवि और छाप का आनन्द लेने को कहता है।

योग पूर्णतः असाम्प्रदायिक है- योग न किसी देश का है, न धर्म या जाति या सम्प्रदाय का है। यह आंतरिक साधना है। ध्यान एक विज्ञान है, योग एक विज्ञान है। इसका सम्बन्ध रूढ़िवादिता से नहीं जोड़ना चाहिए। यह

धर्म का विश्वसनीय रूप है। धर्मों और सयम्प्रदायों को योग के मंच पर एक किया जा सकता है। आधुनिक युग की धर्म की साधना का यही वैज्ञानिक, सरल, सुगम और उपयोगी रूप है।

योग उपदेश नहीं, उपचार है- योग साधना में चित्त को शून्य, मौन करना होता है, इसलिए इसका सम्बन्ध शास्त्र, प्रवचन, उपदेश, कर्मकाण्ड आदि से नहीं है। योग साधक इससे जितना बचके रहेगा, उसे उतनी सफलता मिलेगी। योग में, करके जानने की प्रक्रिया अपनाता है। करते जाओ स्वयं जानते जाओ। इससे बाह्य विधि-विधान अवरोध उत्पन्न करते है। सबको छोड़कर शांत बैठने का अभ्यासी मन क्यों इन कचड़ों को अपने अन्दर इकठ्ठा करेगा? कहा तो यहां तक गया है कि ध्यान के पथ पर यदि कोई चित्रवत् परमात्मा भी आता है तो उसे हटा दो। योग मानता है कि जिसे ईश्वर कहते है, वह अनुभूति है, न कि किसी देवी-देवता, गुरू या कल्पित ईश्वर का रूप। ये सब हमारे अवचेतन मन में छिपे रूप हैं, जो ध्यान के समय दिखाई पड़ते है। ध्यान है शून्य आकाश का पा लोना। हमारे मन में जब कुछ नहीं होता, तब मन घुल जाता है, इस सअमन स्थिति में आत्मा झलक जाती है।

अपने से जुड़ने की कला- योग स्वयं को जुड़ने के लिए सबसे पहले आदमी को उसके सीमित-सम्बन्धों से विरत करने का उपदेश करता है। बिना सम्बन्धों के सांसारिक कार्य सम्पादित नहीं हो सकते, इसलिए योग कहता है कि कर्त्तव्य-पालन करो, पर मोह न करो, आसक्त न हो। योग की यह महत्वपूर्ण कुंजी है व्यवहार करो, पर स्मृति, कल्पना, विचार में किसी को न पकड़ो। काम से कम और जैराम। कर्तव्य से नहीं चूकना हैं, नहीं तो मन में अंकित ग्लानियुक्त हो जायेगा और अपराधी भाव से भर जायेगा। मन को कैमरे की तरह न प्रयोग करो, वह दर्पणवत रहे। जो भी देखो उसकी फोटो मन में अंकित न हो। दर्पण, जब तक वस्तु सामने रहती है, तब तक उसकी छवि अंकित किये रहता है, वस्तु हटी, कि दर्पण स्वच्छ। ऐसा चित हो जाये तो सफलता तुरन्त मिल जाये। चित का शून्य होना ही सत्य में प्रवेश कर जाता है। इसी में साधकों को काफी समय लग जाता है। आसक्ति या मोह के जाल से निकलना बड़ा कठिन है, परसंस्कारी, समझदार इसमें शीघ्र सफलता भी प्राप्त कर लेते हैं।

13

यौगिक अभ्यास तथा शारीरिक व्यायामों में अन्तर

(Difference Between Yogic Practices and Physical Exercises)

किसी भी एक क्रिया को बार-बार करने का नाम व्यायाम है। जैसे दण्ड निकालना, उठक-बैठक करना आदि। जबकि योगासन में स्थिरता और सुखपूर्वक कुछ समय तक रहना सम्भव है।

व्यायाम में झटका लगना अनिवार्य होता है। जोड़ों में विकार आ सकता है। सदा ही झटके सहने वाला शरीर कभी किसी झटके के आगे झुक भी सकता है। इससे शरीर के जोड़ों के रखलित हो जाने का अन्देश बना रहता हे। जबकि योगासन की सभी क्रियाएं धीरे-धीरे की जाती है। इससे हमारे शरीर की स्नायु तथा मांसपेशियां लचीली बनती है। शरीर का प्रत्येक अंग सुरक्षित स्थिति में रहता है।

नियमित व्यायाम से हाथ, पांव, जांघें, कमर, सब बलशाली होते हैं। जबकि योगासन करने से पेट की अनैच्छिक मांसपेशियाँ प्रभावित होती हैं। यह योगासनों की विशेषता भी है।

व्यायाम एक कठिन कार्य है। परिश्रम वाला है। इसके करने से शरीर अच्छी खुराक की उम्मीद रखता है। यदि बलवर्द्धक भोजन न किया जा तो व्यायाम करने वाला पहलवान या कोई भी, अपने शरीर की धातुओं को क्षति पहुंचता हैं व्यायाम से होने वाला लाभ भी हानि में परिवर्तित हो जाता है। जबकि योगासन करने वाला व्यक्ति साधारण भोजन पर भी सुगमता से निर्भर रह सकता है। उसके शरीर की धातुओं को कोई नुकसान नहीं होता।

व्यायाम करने वाले व्यक्ति के नाड़ी तन्त्र में आवेग बढ़ जाता है। शक्तिवान हो जाने के कारण मन में रजोगुण की प्रधानता हो जाती हे। थोड़ा अहं भी तंग करने वाला हो जाता है। यह व्यायाम का हानिकारक पक्ष है। जबकि योगासन करने से, सबसे बड़ा लाभ यह होता है कि मन शान्त रहता

है। एकाग्रता में वृद्धि होती है। अहं वाली कोई बात नहीं उभरती। बल्कि मनुष्य बुराईयों से बचा रहता है। कोई बुरी आदत परेशान नहीं किया करती।

यदि शरीर खूब मजबूत न हो तो व्यायाम करना ही कठिन हो जाता है। बल्कि किया नहीं जा सकता, काफी शक्ति लगानी पड़ती है, खर्च करनी पड़ती हैं जबकि योगासन करने के लिए ढंग चाहिए, विधि चाहिए और शरीर में कम ताकत होने पर भी योगासन सफलतापूर्वक किए जा सकते हैं। इनसे लाभ अधिक होता है।

योगासन करने से शरीर में स्फूर्ति आती हैं, जबकि व्यायाम करने के पश्चात् शरीर थकावट महसूस करता है, पसीना-पसीना हो जाता है। आराम करने की आवश्यकता महसूस होती है।

छोटी आयु में कठिन व्यायाम करने से कद बढ़ने में रूकावटें पड़ती है। क्योंकि मांसपेशियों मजबूत हो जाती है। जो कद में रूकावट डालती है। जबकि मांसपेशियों मजबूत हो जाती है। जो कद में रूकावट डालती है। जबकि छोटी आयु में भी सरल योगासन करना शरीर में कोई रूकावट पैदा नहीं करता। इनसे शरीर के प्रत्येक अंग में विकास होता है।

14

भारत और विदेश में योग शिक्षा केन्द्र

(Yoga Education Centers in India and Abroad)

भारत में योग केन्द्रों की सूची

1. मोरारजी देसाई राष्ट्रीय योग इंस्टीट्यूट
   68, अशोक रोड़, गोल डाकखाने के निकट, नई दिल्ली-110001
   दूरभाष: 011-23730417
2. परमार्थ निकेतन आश्रम
   स्वर्ग आश्रम पोस्ट ऑफिस, ऋषिकेश, उत्तराखण्ड-249304
3. योग संस्थान
   श्री योगेन्द्र मार्ग, प्रभात कॉलोनी, सांताक्रूज (पूर्व),
   मुम्बई-400055. दूरभाष: 022-26122185
4. रामामणि आयंगर मेमोरियल योग संस्थान
   1107 बी/1, हरे कृष्णा मंदिर रोड़, मॉडल कॉलोनी,
   शिवाजी नगर, पूना, महाराष्ट्र- 411016
   दूरभाष: 020-24656134
5. अष्टांग योग अनुसंधान संस्थान
   8वीं क्रॉस रोड़, वाणी विला मौहल्ला, मैसूर,
   कर्नाटक-570002. मोबाईल- 0-9880185500
6. कृष्णामचार्य योग मंदिरम
   न्यू नम्बर 31 (पुराना नम्बर 13), चौथी क्रॉस गली,
   राम कृष्ण नगर, मण्डावेली, चैन्नई-600028
7. शिवानन्द योग वेदांत धनवंतरी आश्रम
   नेईयर बांध पोस्ट ऑफिस,
   तिरूवनंतापुरम जिला (त्रिवेन्द्रम)
   केरल-695572
8. बिहार योग विद्यालय
   गंगा दर्शन फोर्ट, मुंगेर, बिहार-811201
9. ब्रह्मकुमारी केन्द्र
   शांतिवन कॉम्पलेक्स,

   पोस्ट बॉक्स नम्बर-1, अबू रोड़,
   राजस्थान-307510
10. फूल चट्टी आश्रम
    नीलकांत मंदिर रोड़,
    पलीयाल गांव, उत्तराखण्ड-249302
11. योग निकेतन आश्रम
    मुनी की रेती, शिवानन्द नगर पोस्ट ऑफिस,
    ऋषिकेश, उत्तराखण्ड-249192
12. आंतरिक योग संस्थान
    139/86, पश्चिमी समबंदम रोड़,
    आर.एस. पुरम, कोयम्बटूर, तमिलनाडु- 641002
13. ईशा योग केन्द्र
    15, गोविन्दस्वामी नायडु लेआउट, सिंहानल्लुर,
    कोयम्बटूर, तमिलनाडु-641005
14. अमृतापुरी आश्रम
    माता अमृतानन्दामायी मठ, अमृतापुरी पोस्ट ऑफिस,
    कोल्लम, केरल-690525
15. ईशा विश्व विद्यालयम
    ईशालायम लेन, कादाकमपाली रोड़, अनेयारा,
    तिरूवनंतपुरम, केरल-695029

विदेशों में योग केन्द्रों की सूची

उत्तरी अमेरिका, कनाडा और मेक्सिको

1. योग क्लब
   ओटावा, कनाडा
   दूरभाष: (613) 228-9235
   ई-मेल- info@clubyoga.ca
2. रेनबो किड्स योग
   दूरभाष (अमेरिका): (646) 797-3226
   ई-मेल: info@rainbowkidsyoga.net
3. विन्निपेग योग केन्द्र
   915, ग्रॉसवेनर ऐविन्यू, विन्निपेग,
   मैनिटोबा R3M 0M5
   दूरभाष: (204) 222-योग